जो अपनी स्वर्गीया जननीके ही समान
निष्कपट और साधु-चरित्र था
जिसने ज्ञानकी विविध शाखाओंका
विशाल अध्ययन और मनन किया था
जो शीघ्र ही भारती माताके चरणोंमें
अनेक भेंट चढ़ानेके मनसूबे बाँध रहा था
परन्तु जिसे दैवने अकालमें ही उठा लिया,
अपने उसी एकमात्र पुत्र

स्व० हेमचन्द्रको

मुद्रण-कथा

सन् १९०५ में जब मैंने स्वर्गीय गुरुजी (पं० पन्नालालजी बाकलीवाल) की आज्ञा और अनुरोधसे बनारसीविलासका सम्पादन संशोधन किया और उसके प्रारंभमें कविवर बनारसीदासजीका विस्तृत परिचय लिखा, तब उसकी बड़ी प्रशंसा हुई और स्व० आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी जैसे विद्वानोंने उसकी लम्बी लम्बी समालोचनायें लिखीं। कविवरका उक्त परिचय एक तरहसे इस 'अर्धकथानक' का ही गद्यानुवाद था। उसे पढ़कर और उसके बीच बीचमें 'अर्धकथानक' के जो पद्य उद्धृत किये गये थे, उनपर मुग्ध होकर कई मित्रोंने अनुरोध किया कि यह मूल ग्रन्थ भी ज्योंका त्यों प्रकाशित हो जाना चाहिए, अनुवादकी अपेक्षा मूलका मूल्य बहुत अधिक है।

मुझे भी यह बात ठीक जँची और मैंने उसी समय इसके प्रकाशित करनेका निश्चय कर लिया परन्तु यह निश्चय कार्यरूपमें प्रायः ३८ वर्षके बाद परिणत हो रहा है और पाठक यह जानकर तो और भी आश्चर्य करेंगे कि इसकी प्रेस-कापी मैंने अपने सहयोगी देवरीनिवासी पं० शिवसहाय चतुर्वेदीजीसे सन् १९१२-१३ के लगभग तैयार करा ली थी, फिर भी यह ३० वर्ष तक प्रेसमें न जा सकी।

गत वर्ष अप्रैलमें इसी तरह वर्षोंसे पड़े हुए 'जैन साहित्य और इतिहास' के कामसे निवृत्त ही था और आगे हाथ इस पुस्तकसे भी निबटनेकी सोच ही रहा था कि अचानक ता० १ मईको मुझपर ऐसा वज्रपात हुआ जिसकी कभी कल्पना भी न की थी। मेरे एकमात्र सुयोग्य और विद्वान् पुत्र हेमचन्द्रका पालीगाँवमें देहान्त हो गया और उसके साथ ही मेरे सारे संकल्प और सारी आशायें धूलमें मिल गईं। इस पुस्तकके छपानेकी चर्चा करनेपर स्व० हेमचन्द्रने पालीगाँवमें ही कहा था कि "दादा, जी तो तुम्हें कभी अवकाश मिलनेका नहीं, इसे प्रकाशित करनेका एक ही उपाय है और वह यह कि मूल पुस्तकको ज्यों-की-त्यों प्रेसमें दे दिया जाए। ऐसा करनेसे यह कभी न कभी पूरी हो ही जाएगी।"

लगभग चार महीने बाद शोक और उद्वेग कुछ कम हुआ, तब अपने प्रिय पुत्रकी उक्त सलाहके अनुसार पूर्वोक्त प्रेस-कापी प्रेसमें दे दी गई और

उसके चार फार्म २०-२५ दिनमें छप भी गये। उसके बाद शब्द-कोष, परिशिष्ट आदि तैयार किए जाने लगे और उनके भी दो फार्म फरवरीके प्रारंभ तक छप गये। परन्तु अचानक उसी समय लगभग चार महीनेके लिए मुझे बम्बई छोड़नी पड़ी और इतने समयके लिए फिर यह काम बन्द पड़ा रहा।

यद्यपि मानसिक उद्वेग, अनुत्साह और शरीरकी शिथिलताके कारण पुस्तकका सम्पादन जैसा मैं चाहता था वैसा न हो सका। परन्तु सन्तोष यही है कि पुस्तक किसी न किसी प्रकार पूरी हो गई और इतने छपनेके समयके बाद भी मेरी एक इच्छा पूरी हो गई। त्रुटियोंके लिए विद्वान् पाठक मेरी वर्तमान अवस्थाका खयाल करके क्षमा कर ही देंगे।

पुस्तकके अन्तमें शब्दकोश, नामसूची आदिके जो १२ परिशिष्ट जोड़े गये हैं वे इस पुस्तकका ठीक ठीक मर्म समझनेके लिए आवश्यक हैं। इन परिशिष्टोंमें नं. १-७, ८ प्रायः वही हैं जो बनारसीविलासकी भूमिकामें दिए गये थे और जिन्हें जोधपुरके स्व. इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजीने मेरे अनुरोधसे लिख दिये थे।

अपने स्नेही मित्र प्रो. हीरालालजी जैनका मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने 'अर्धकथानककी भाषा' पर विचार करके पुस्तककी उपयोगिताको बढ़ा दिया है।

तीन प्रतियोंके आधारसे इस पुस्तकका सम्पादन संशोधन किया गया है—

अ—भूलेश्वर (बम्बई) के पंचायती मन्दिरकी प्रति जो वि. सं. १८४९ की लिखी हुई है। यह प्रति अन्य प्रतियोंकी अपेक्षा शुद्ध है और प्रेस-कापी इसीपरसे तैयार कराई थी।

ब—जैनमन्दिर धरमपुरा देहलीकी प्रति, जो आषाढ़ बदी ७ सं. १९ २ की लिखी हुई है।

स—बैदवाड़ा, देहलीके मन्दिरकी प्रति। लिपिकाल नहीं दिया है और यह बहुत ही अशुद्ध है। इसमें सब मिलाकर ६६२ पद्य ही हैं, ११९, ५५९-६१, ६२२, ६२१, ६६५ और ६७१ नम्बरके ११ पद्य नहीं हैं।

पिछली दोनों प्रतियाँ देहलीके बाबू पन्नालालजी जैनकी कृपासे प्राप्त हुई थीं जिसके लिए मैं उनका अतिशय कृतज्ञ हूँ।

१५ मई १९४१ —नाथूराम प्रेमी

द्वितीय संस्करण

पहली बार जिन तीन हस्तलिखित प्रतियोंके आधारसे अर्ध-कथानकके मूल-पाठका संशोधन किया गया था उनके सिवाय अबकी बार नीचे लिखी दो प्रतियोंका उपयोग और भी किया गया है—

अ—एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ताके ग्रन्थसंग्रहकी ७१७६ नम्बरकी, बिना लेखनतिथिकी प्रति जो बाबू छोटेलालजी जैनकी कृपासे प्राप्त हुई है।

ई—स्याद्वादविद्यालय बनारसकी सं. १९४८ की लिखी हुई प्रति। लेखक, अमीचन्द श्रावक। यह प्रति पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने भेजनेकी कृपा की है।

पहली बार जो ११ पृष्ठोंकी भूमिका थी वह अबकी बार विस्तृत लिखी गई है और अब उसकी पृ. सं. ९४ हो गई है। इसी तरह अन्तके परिशिष्ट ४ की जगह अब ७९ पृष्ठके हो गये हैं और उनमें बहुतसे नये तथ्य प्रकाशमें आये हैं। 'शब्दकोष' पहले पद्योंके क्रमसे था, अबकी बार वह वर्णानुक्रमसे कर दिया गया है और उसका संशोधन हिन्दीभाषाके सुप्रसिद्ध विद्वान् डा. वासुदेवशरणजी अग्रवालसे करा लिया है। उन्हींकी सूचनाके अनुसार नाटक समयसार तथा बनारसीविलासकी समस्त रचनाओंका परिचय भी दे दिया है।

माननीय डा. मोतीचन्द्रजीका मैं अतिशय कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस मध्यकालीन अन्यतम व्यापारी और प्रमुख साहित्यिकके सच्चे और रोचक आत्म-चरितपर अपना वक्तव्य लिख देनेकी कृपा की है।

मेरे कृपालु मित्र पं. बनारसीदासजी चतुर्वेदीने अपने हिन्दीका प्रथम आत्म-चरित लेखको कुछ संशोधित और परिवर्धित कर दिया है और डा. हीरालालजी जैनने 'आत्मकथाकी भाषा' में द्वितीय संस्करणकी विशेषताओंका अंश और जोड़ दिया है।

अध्यात्ममतके विरोधमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके म० धर्मवर्धन और ज्ञानसारके तथा दिगम्बर सम्प्रदायके प० बखतराम आदि तीन चार लेखकोंके ग्रन्थ मिले हैं जो अध्यात्ममतको ही 'तेरापथ' कहते हैं। भूमिकामें उनकी विस्तृत चर्चा कर दी गई है और उससे इस निश्चय पर पहुँचा जा सकता है कि अध्यात्ममत ही सं० १७०२ के कुछ पहले 'तेरापन्थ' कहलाने लगा था।

जिन जिन सज्जनोंके पत्रों या ग्रन्थोंसे सहायता ली गई है उनका यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है। सबसे अधिक सहायता बीकानेरके श्री अगरचन्दजी नाहटासे मिली है जिनकी प्राचीन ग्रन्थोंकी जानकारी अद्भुत है और जिनके निजी संग्रहमें कई हजार ग्रन्थोंकी हस्तलिखित प्रतियाँ हैं।

जयपुरके पं० कस्तूरचन्दजी शास्त्री एम. ए. ने भी जो राजस्थानके शास्त्र-भण्डारोंकी ग्रन्थसूचियाँ तैयार कर रहे हैं—समय समय पर अनेक ग्रन्थ और उनके उद्धरण भेज कर बहुत सहायता की है। इसके लिए उक्त दोनों सज्जनोंका विशेष रूपसे आभारी हूँ।

दो ढाई वर्षसे शय्याशायी हूँ, अस्वस्थ हूँ। इसी अवस्थामें इसका सम्पादन हुआ है। इसलिए इसमें अशुद्धियों और स्खलनाओंकी कमी नहीं होगी। फिर भी मुझे सन्तोष है कि यह काम किसी तरह पूरा हो गया और अब पाठकोंके हाथोंमें जा रहा है।

२९-९-५७]

नाथूराम प्रेमी

विषय-सूची

परिशिष्ट

पूरी पृष्ठसंख्या—८+४४+२८+५६+१५२=२८८

शुद्धिपत्र और संशोधन

भूमिका

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१	२१	वि सं १६५७	वि सं १७५७
४६	९	गुजराती	राजस्थानी
४६	१	१७५७	१७७१
४७	२	गुजराती	राजस्थानी
८४	२१	एक वर्ष (१) मागम	एक अर्थ मागा अर्थात् सं १६ मो १६ १

पृष्ठ ४९ और ५१ में तेरापंथकी उत्पत्तिका समय जो पं० बखतरामजीके मिथ्यात्वखंडनके आधारपर सं १७७१ बतलाकर लिखा है, वह गलत है। मि खं की वह पंक्ति शुद्ध रूपमें इस प्रकार है—

सत्रहसत व सिहोत्तरे शाख, मत चाल्यो ऐसें अघ नाख।

यहाँ सिहोत्तरेका अर्थ तिह = तीन, उत्तरे = ऊपर करनेसे १७ ३ ही होता है और यह समय भ नरेन्द्रकीर्तिके समयके साथ संगत हो जाता है।

परिशिष्ट

८९	११	वि सं १६८४	वि सं १६८
९१	१९	सं १७७२	सं १७९२
९५	७	सं १९१६	सं १८२६
८	१	उपाध्याय [illegible]	[illegible] ([illegible])

होकर अनेकोंका काम है और इस दृष्टिसे जातक कथाओं, जैन कथाओं तथा वृहत् कथा और उससे निकले कथासाहित्यमें हम अनेक भारतीयोंके आत्मचरितोंका संकलन देख सकते हैं, पर ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे हम यह नहीं कह सकते कि कहानियोंको रूप देनेवाले वे आत्मचरित किसी विशेष व्यक्तिके थे अथवा नहीं।

आत्मचरित-साहित्यके इतिहासमें बौद्ध साहित्यके 'थेर गाथा' और 'थेरी गाथा' के नाम सबसे पहले आते हैं। थेरगाथा खुद्दकनिकायका आठवाँ अध्याय है जिसमें बुद्धकालीन अनेक बौद्ध भिक्षुओंने अपने जीवनवृत्त और अपनी नई पाई हुई आत्मस्वतंत्रताका छन्दोबद्ध वर्णन किया है। उसी तरह खुद्दकनिकायके नवें अध्यायमें भिक्षुणियोंके छन्दोबद्ध आत्मचरित हैं। इन आत्मचरितोंमें एक नवीनता है और आत्मनिवेदन करनेका एक नया ढंग, फिर भी ये आत्मचरित इतने छोटे हैं कि जीवनके अनुभवोंकी उनमें थोड़ी-सी ही झलक मिलती है।

संस्कृत साहित्यमें आत्मचरित लिखनेकी शैलीका क्यों विस्तार हुआ यह कहना संभव नहीं। यों तो कथासाहित्यका आधार वास्तविक घटनाओंपर ही अवलंबित है पर आत्मचरितकी श्रेणीमें तो बाणभट्टकृत हर्षचरित ही आता है। बाणभट्टके अनुसार हर्षचरित आख्यायिका है जिसमें ऐतिहासिक आधार होना चाहिए। आख्यायिकाके अनुरूप हर्षचरितमें हर्ष (६०६-६४८) की जीवन-सम्बन्धी घटनाओंका वर्णन है जिनमें कुछ बाणद्वारा स्वयं अनुभूत और कुछ सुनी सुनाई हैं। पर ग्रंथके आरंभमें बाणने अपने आत्मचरितके कुछ पहलुओंका वर्णन किया है जिससे उनके देशांतरभ्रमण सम्बन्धोंकी जानकारी प्राप्त करनेकी उत्सुकता तथा विभ्रमशीली बुद्धिका पता चलता है। हर्षचरितमें इतिहास, साहित्य और आत्मचरितका कुछ ऐसा अपूर्व मेल है कि जिसका जोड़ साहित्यमें नहीं मिलता। प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें केवल हर्षचरित ही एक ऐसा ग्रंथ है जिससे हमें एक महान् साहित्यकारके परिवार, बन्धुबान्धवों, इष्टमित्रों तथा जीवनके और पहलुओंका पता चलता है।

आत्मचरित और इतिहासके अपूर्व सम्मिश्रणका पता हमें बिल्हणकृत 'विक्रमांकदेवचरित' से चलता है। बिल्हण प्रकृतिसे ही घुमक्कड़ थे। कश्मीरके राजा

कल्याणके युगमें उनकी घुमक्कड़ी शुरू हुई और उन्होंने मथुरा, कन्नौज, और डाहलकी यात्रा की तथा कुछ दिनोंतक डाहलके कर्ण अनहिलवाड़के कर्णदेव त्रैलोक्यमल्ल (१ ६४–११२७) तथा कल्याणके विक्रमादित्य छठे (१ ७६–११२७) के यहाँ रहे तथा सन् १ ८ में विक्रमांकदेवचरितकी रचना की। उनके प्रथम ग्रन्थ तो इतिहास हैं पर रह रहकर हम कविकी आत्मकथाकी, जिसमें कोरी सीधी बातें सुनाना भी आ जाता है झलक पाते हैं।

मुसलमानोंके उत्तर भारतमें अधिकार पानेके बाद फारसीमें एक ऐसे साहित्यका सृजन हुआ जिसमें इतिहास और आत्मकथाका मेल है। ऐसे साहित्यकारोंमें अमीर खुसरोका नाम अग्रणी है। खुसरो (१२५५–७२५ ई) कवि, सिपाही, संगीतज्ञ और सूफी थे। उनका प्रभाव जनसाधारणमें इतना पड़ा कि उनके बादके कवियोंके नामतक लोग भूल गए। उन्होंने अपने जीवनमें सात सुलतानोंके राज्य देखे उनमेंसे कइयोंके साथ वह चढ़ाइयोंपर गए और पांच सुलतानोंकी सेवामें ओहदेदार रहे। अपने जीवनमें उन्होंने अनेक उतार चढ़ाव देखे, सुलतानोंकी विलासिता और ऐश्वर्य देखा तथा तत्कालीन दुर्घटनाओं-पर आँसू बहाए। अपने दीवानोंके दीबाचोंमें खुसरोने खुलकर अपनी रामकहानी कही है और उनकी ऐतिहासिक मसनवियोंमें भी आँखों देखी अनेक घटनाओंका जिक्र है। ऐजाज खुसरवीमें उनके पत्रोंका संग्रह है जिनसे मध्यकालीन जीवनके अनेक छोटे छोटे अंगोंपर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। यह सच है कि खुसरोने कोई अलगसे अपना आत्मचरित नहीं लिखा, पर दीवानोंके दीबाचों और ऐतिहासिक मसनवियोंमें उसने अपनी रामकहानी इतनी छोड़ दी है कि उसके आधारपर ही मध्यकालके इस महान पुरुषका पूरा आँखों देखा चित्र खड़ा हो जाता है।

मुसलमान बादशाहोंमें तो आत्मचरित लिखनेकी परिपाटी ही चल पड़ी थी और इसमें संदेह नहीं कि बाबर और जहाँगीरके आत्मचरितोंमें उस मनुष्यताका दर्शन और आसपासकी दुनियाका विवरण मिलता है जिसका पता मध्यकालीन साहित्यमें कम ही दिखलाई पड़ता है। मध्य एशियाने हमें तैमूरलंग, बाबर, हैदर और अबुल गाज़ीके आत्मचरित दिए हैं। फारसके शाह तहमास्पका आत्म-चरित हमें आकर्षित करता है, तथा भारतके गुलबदन बेगम और जहाँगीरके आत्मचरित प्रसिद्ध हैं।

एक असफल व्यापारीकी आत्मकथा

श्री प्रेमीजी द्वारा संपादित अर्धकथानकका पहला संस्करण पढ़नेका अवसर मिला तो मैं उस ग्रंथसे अतीव प्रभावित हुआ। उसका कारण यह था कि बनारसीदासने साहित्यके उस अंगको जिसे हम आत्मकथा कहते हैं और जिसका प्रयोग सारे प्राचीन भारतीय साहित्यमें बहुत सीमित रूपसे हुआ है केवल अपनाया ही नहीं उसे एक बहुत निखरा हुआ रूप दिया। प्राचीन भारतीय साहित्यका उद्देश्य स्वार्थ न होकर परमार्थ था जिसमें भिन्न भिन्न व्यक्तियोंकी अनुभूतियाँ मिल कर अनुभूतिका रूप ग्रहण कर लेती थीं और यही अनुभूतियाँ एकीभूत होकर भारतीय जीवन और संस्कृतिका वह रूप निर्माण करती थीं जिसके बाहर निकल कर स्वानुभवसे विचार करना और नवीन दिशाकी ओर संकेत देना कुछ दुष्कर हो जाता था। इसके यह माने नहीं होते कि भारतीय संस्कृतिमें नवीन विचार धाराओंकी कमी थी। समयान्तरमें अनेक विचारधाराएँ इस देशमें प्रस्फुटित हुईं पर वे सब अनेक विचारोंके होते हुए भी भारतीय संस्कृतिकी वृहद् अनुभूतिका एक अंग बनकर रह गईं। प्राचीनताके प्रति भारतीय जनका इतना बड़ा व्यामोह देखकर ही कालिदासने पुराणमेत्येव हि साधु सर्वम् का उपदेश किया तथा प्रसिद्ध जैन तार्किक सिद्धसेन दिवाकरने स्वतन्त्र रूपसे उस बातकी पुष्टि की, पर फल कुछ विशेष न निकला।

समष्टि और व्यष्टिको लेकर साहित्य निर्माण करनेकी भारतीय भावनाका फल यह हुआ कि जीवनकी अनेक अनुभूतियाँ जिन्हें लेखक अपने ढंगसे व्यक्त कर सकते थे समष्टिमें मिल गईं और अनेक अनुभवोंके आधार साहित्यका और विशेष-कर कथा-साहित्यका एक समष्टिगत रूप खड़ा होता गया जिसके निर्माणमें एकका हाथ न होकर बहुतोंका हाथ दीख पड़ता है। पर भारतीय तत्त्वचिन्तनका उद्देश्य परलोकप्राप्ति था तथा जीवनसंबंधी दूसरे विषय जैसे इतिहास सामाजिक व्यवस्था व्यापार, सैर, कुतूहल इत्यादि गौण ही रह गए। भारतीय कथासाहित्यका अध्ययन करनेसे इस बातका पता चलता है कि उसमें जीवन समाज, लौकिक धर्म, व्यापार इत्यादि संबंधी ऐसी सामग्री मिलती है जिसका इकट्ठा करना एकका काम न

बादशाहोंके इन आत्मचरितोंकी अपनी विशेषता है। मध्यकालीन इतिहास प्रशंसात्मक है और वहाँ प्रशंसाकी आवश्यकता नहीं भी होती वहाँ भी केवल अपने मालिककी दुनियाकी नजरोंसे बचाकर ऐसा चित्र खींचते हैं जिससे विदित व्यक्ति अपनी असलियत खो बैठता है। पर बादशाहोंकी दूसरी बात थी। उन्हें न चकाचौंध होनेकी आवश्यकता थी न किसीसे डरनेकी, और इसीलिए उन्होंने अपने समसामयिकोंकी निर्मम होकर धज्जियाँ उड़ाई हैं और उनकी कमजोरियोंको हमारे सामने रखा है। पर उनमें भी मनुष्यसुलभ कमजोरी मिलती है। यही कारण है कि वे अपनी कमजोरियाँ छिपाते हैं। पर जहाँगीरके आत्मचरितमें हमें उसकी कमजोरियाँ भी दीख पड़ती हैं जिन्हें पढ़ने पर हमें एक ऐसे मनुष्यका दर्शन होता है जिसमें भले, बुरे और एक काम-पारखीका सम्मिश्रण था। शिकार करके जानेपर वह नरहत्या कर सकता था पर साथ ही साथ वह न्यायका भी प्रेमी था। शिकारी होते हुए भी वह पशु-पक्षियोंका प्रेमी था तथा फूलोंसे उसे विशेष प्रेम था। बाबरका हृदय बराबर मध्य एशियाके लिए छटपटाता था और भारतीय वस्तुओंके लिए उसके मनमें आदरभावकी कमी थी पर जहाँगीर वास्तवमें भारतीय था। भारतीय पुष्प, फल, पशु और पक्षी उसके मनको लुभा लेते थे और उसके अनुसार भारतीय आमके सामने मध्य एशियाके फलोंकी कोई हस्ती न थी।

अकबरयुगीन इतिहासमें मुल्ला बदायूनीके 'मुंतखब उत् तवारीख' का भी अपना स्थान है। इसमें इतिहास और आत्मचरितका अच्छा मेल है। मुल्ला थे तो धर्मोंके प्रति सहनशील अकबरके नौकर पर थे वे कट्टर मुसलमान। रह रहकर वे हिन्दुओंको कोसते हैं और ऐसी घटनाओंका वर्णन करते हैं जिनके बारेमें पढ़ कर हँसी रोके नहीं रुकती। अकबरके दीन इलाही को वे कुफ्र मानते थे। सामने कहनेकी हिम्मत तो थी नहीं, पर मौका मिलने पर वे उसकी हँसी उड़ानेसे चूकते न थे। दीन इलाही चलते ही कुछ लोग विश्वाससे और बहुत-से बादशाहकी खुशामदसे उसमें आ घुसे। बदायूनी (मुंतखब, भा. २ पृ. ४१८-४१९ की हाय अनूदित) ने इस सम्बन्धकी एक मजेदार घटनाका उल्लेख किया है। बनारसके एक मौजी मुसलमान शेखजादा १   ४ हि. में दीन इलाहीमें शामिल हो गए। उन्होंने अपनी दाढ़ी और सिर सफाचट करा दिए तथा [illegible] कृपासे बादशाहकी

सेनामें जा घुसे। आदमी बड़े पुरके थे, किसी तरह बनारसके करोड़ी बन गए और दरबार छोड़ दिया। बदायूनीके अनुसार आप एक वेश्यापर फिदा थे। आगरेसे रवाना होनेके पहले आपने उसे काफी रकम दी और एक सरपरस्त भी मुकर्रर कर दिया। जब परगनोंके दारोगाने बादशाह अकबरसे इस बातकी शिकायत की, तो गोसाइम बनारससे पकड़ मँगाए गए। इसके बाद उनपर क्या गुजरी मालूम क्या नहीं। पर बनारसी हथकंडे दिखलाकर निकल भागे होंगे, इसमें सन्देह नहीं। ऐसी ही मजेदार बातोंसे बदायूनीकी तवारीख भरी पड़ी है जो उनके आत्मचरितके अंग हैं, इतिहाससे उनका सम्बन्ध नहीं।

पर बनारसीदासका आत्मचरित उपर्युक्त आत्मचरितोंसे निराला है। उसमें न तो बाबरनामाका सूक्ष्म चित्रण है न जिसमस्ती खुशामद। शायद फारसी उन्होंने पढ़ी नहीं थी, इसलिए बाबर इत्यादिकी उनके आत्मचरितोंमें वर्णित बादशाही आन बान शानका उसमें पता नहीं चलता। बनारसीदास एक अध्यात्मी और व्यापारी थे। इन दोनोंका क्या संयोग पर काफी अध्यात्मसे तो रोटी चलनेकी नहीं थी, व्यापार करना जरूरी था पर उनके आत्मचरितसे पता चलता है कि वे कच्चे व्यापारी थे। समय समय पर उनकी व्यापारिक बुद्धि ऊपर उठनेकी कोशिश करती थी, पर उनके अंतरमानसमें अध्यात्मकी बहती धारा उसे दबा देती थी। पर वे थे आदमी जीवटके, और जीवनकी कठिनाइयोंसे वे हँसकर मिलनेको सदा तैयार रहते थे। अगर उनके ऐसा कोई दूसरा ज्ञानी उस युगमें अपना आत्मचरित लिखता तो वह आत्मज्ञान और हिदायतोंसे इतना बोझिल हो उठता कि लोग उसकी पूजा करते पढ़ते नहीं। एक सच्ची आत्मकथाकी विशेषता है आत्मप्रकाशन, आत्मगोपन नहीं। बनारसीदासने अपनी कमजोरियाँ उघेड़ कर सामने रख दी हैं और उनपर खुद हँसे हैं और दूसरोंको हँसाया है। अंध विश्वासोंकी, जिनके वे खुद शिकार हुए थे, उन्होंने खूब ही खुलकर हँसी उड़ाई है। १७ वीं सदीके व्यापारकी चलन कैसी थी, लेन देन कैसे होता था, कारबार चलानेमें किन किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था इन सब बातोंपर अर्ध कथानकसे जितना प्रकाश पड़ता है उतना किसी दूसरे ग्रन्थसे नहीं। यात्राके समय अनेक विपत्तियोंका सामना करते हुए भी बनारसीदास अपने हँसोड़ स्वभावको भूले नहीं और आफतोंमें भी उन्होंने हास्यकी सामग्री पाई। बनारसीदास अध्यात्मी और व्यापारी दोनों थे,

इसलिए यह सोचा जा सकता है कि उनमें कठोरता अधिक मात्रामें रही होगी पर उनके आत्मचरितसे यह बात साफ झलकती है कि मृदुता उनमें कूट कूट कर भरी थी। अकबरकी मृत्युके समाचारसे उनका बेहोश होकर गिर पड़ना तथा अपने मित्र नरोत्तमकी मृत्युसे मर्माहत हो उठना उनकी कोमलता और भावुकताके द्योतक हैं। आत्मचरितमें पारिवारिक सम्बन्धों और रीति-रिवाजोंका भी खासा वर्णन है। भाषा भी उन्होंने विषयके अनुरूप चुनी है और धर्मके दम्भाडम्बर और आडम्बरोंसे उसे बोझिल होनेसे बचाया है। उनकी भाषा अपनी स्वाभाविक गतिसे बढ़ती है और उसका पैनापन सीधा वार करता है। वे जो बात कहते हैं सीधी सादी भाषामें जिसे लोग समझ सकें। पर यह भाषा इतनी मँजी, अर्थगर्भ और मुहाविरेदार है कि पढ़नेवालेको आनंद मिलता है। उसमें अनेक पारिभाषिक शब्द भी हैं जिन्हें समझनेमें अब कठिनाई पड़ सकती है पर १७ वीं सदीमें तो वह भाषा व्यापारियोंमें प्रचलित रही होगी इसमें संदेह नहीं। थोड़े से शब्दोंमें एक चित्र खींच देना उनकी भाषाकी विशेषता है। अर्थके विस्तारका तो अर्धकथानकमें पता ही नहीं चलता। इसमें संदेह नहीं कि भाषा, भाव, सहृदयता और उपयोगी विवरणोंसे भरा अर्धकथानक न केवल हिन्दी साहित्यका ही वरन् भारतीय साहित्यका एक अनूठा रत्न है। बनारसीदासकी आत्मकथाका संबंध उच्चवर्गोंसे न होकर मध्यम व्यापारीवर्गसे है जिसे पगपगपर कठिनाइयों और खतरोंसे लड़ना पड़ता था। इसमें साहसकी आवश्यकता थी और बनारसीदास और जिस वर्गमें वे पले थे उसमें, वह साहस था और इसी लिए उन्हें कोई कुचल न सका।

जैसा हम ऊपर कह आए हैं अर्धकथानक एक व्यापारीकी आत्मकथा है। जहाँ तक भारतीय साहित्यका संबंध है ऐसी कोई पुस्तक नहीं है जिसमें भारतीय दृष्टिकोणसे १७ वीं सदीके व्यापारी जीवनका इतने सुंदर ढंगसे वर्णन हो। इस सदीमें अनेक यूरोपीय यात्री जिनमें व्यापारी, डाक्टर राजदूत पादरी सिपाही, जहाजी तथा साहसिक सभी थे जल और स्थलमार्गोंसे इस देशमें आए, पर उनमें अधिकतर यात्रियोंका ज्ञान सीमित था। उनका भारतके भूगोल और प्रकृतिविज्ञान-का ज्ञान अधिकतर गतानुगतिक होनेसे परिसीमित था तथा वे भारतीय रीतिरिवाज, जिनको विदेशी समझनेमें असमर्थ थे उनके लिए हास्यास्पद थे। फिर भी उन्होंने अपने ढंगसे सत्रहवीं सदीके भारतीय रस्मरिवाज, वेशभूषा खानपान

इत्यादिका वर्णन किया है। बाबरकी गप्पोंपर आधारित उनका इतिहासका ज्ञान भी अपूर्ण होता था। पर भारतीय पथोंके बारेमें उनका ज्ञान अधिक बढ़ा चढ़ा था। अपने यात्रा-विवरणोंमें उन्होंने सड़कोंके बारेमें अपने अनुभव लिखे हैं। उनमें सड़कोंके नाम, उनपर पड़नेवाले पड़ाव, मिलनेवाले आदमी, दर्शनीय वस्तुएँ, आराम और कष्ट सभी बातें आ जाती हैं। उन दिनों सवारियाँ तेज नहीं थीं तथा सड़कोंपर ठहरनेके ठिकाने भी ठीक न थे तथा यूरोपीय यात्रियोंको बन्दरगाहोंकी चुङ्गी-शालाओंपर भी भारी तकलीफें उठानी पड़ती थीं। खाने पीने और ठहरनेकी भी असुविधाओंका सामना करना पड़ता था। आगरसे लाहोर तक चलनेवाली सड़क काफी अच्छी हालतमें थी पर दूसरी सड़कोंकी हालत अच्छी न थी। जंगलोंसे होकर गुजरनेवाली सड़कोंपर तो बड़ी मुश्किलोंका सामना करना पड़ता था। रक्षाके लिए काफिले रक्षकोंकी देखरेखमें चलते थे। बीच बीचमें व्यापारी सुरक्षाके लिए इन काफिलोंके साथ हो लेते थे जिससे काफिले बहुत बड़े हो जाते थे। रास्तेमें चोर डाकुओंका भय बना रहता था तथा सुदूर प्रान्तोंमें छोटे मोटे सामन्त और जमींदार काफिलोंसे कर वसूल करनेमें न चूकते थे। इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी ग्रामीण और नागरिकोंका काफिलोंके प्रति व्यवहार अच्छा होता था पर कभी कभी उनसे अनबनी हो जानेपर काफिलोंको दुश्मन तलवारका भी सामना करना पड़ता था।

अर्धकथानकमें बनारसीदासने तत्कालीन सड़कों और व्यापारियोंकी कठिनाइयोंका जो वर्णन किया है उससे यूरोपियन यात्रियोंकी बातोंकी पुष्टि होती है। इतना ही नहीं, अर्धकथानकमें भारतीय व्यापारियोंकी शिक्षा, लेन देन, व्यापारपद्धति इत्यादिके भी ऐसे अनुभूत विवरण हैं जिनका पता सत्रहवीं सदीके भारतीय साहित्यमें मुश्किलसे मिलता है। बनारसीदासके व्यापारी परिवारका इतिहास उनके दादा मूलदाससे आरम्भ होता है। ये हिन्दी और फारसी पढ़े थे। वणिक वृत्तिके लिए ये मुगलोंके मोदी बनकर मालवेमें आए और वहीं नरवरके मुगल जागीरदारोंमें उनके मामले उधार देनेका काम करने लगे। सन् १५५१ में बनारसीदासके पिता खरगसेनका जन्म हुआ। कुछ दिनों बाद पिताकी मृत्यु हो गई और खरगसेनको एक नई आफतका सामना करना पड़ा। मुगलने जैसे ही यह समाचार सुना उसने तत्कालीन प्रथाके अनुसार मूलदासके घरपर मुहर छाप लगा कर कब्जा

कर लिया और माल भी ले लिया। माता पुत्र अशरण हो गये और अनेक कष्ट उठाते हुए पूरबमें जौनपुरकी ओर चल दिये।

उस युगमें भी जौनपुर एक बड़ा शहर था। बनारसीदासके अनुसार गोमतीके ऊपर बसे इस नगरमें चारों वर्णके लोग बसते थे तथा उसमें अनेक तरहकी दस्तकारीके काम होते थे। शीशा बनानेवाले दरजी, तंबोली रंगरेज, ग्वाले, बढ़ई, संगतराश तेली, धोबी धुनियाँ, हलवाई कहार, काछी, कलाल, कुम्हार, माली, कुंदीगर, कागदी, किसान, जुलाहा, चितेरे मोती आदि बींधने-वाले, बारी लखेरे, ठठेरे, पेशराज, पटुवा छप्पर छोंपनेवाले, नाई, भड़भूंजे, सुनार, लुहार, सिकलीगर, हवाईगर (आतिशबाजी बनानेवाले), धीवर, और चमार वहाँ रहते थे। नगर मठ, मंडप और प्रासादों तथा पटमण्डपों और तंबुओंसे युक्त ऊँचे घरोंसे भरा था। नगरके चारों ओर बावन सराएँ थीं और बावन बाजार। अगर कविसुलभ अतिशयोक्ति दूर कर दी जाय तो १६ वीं सदीके जौनपुरका रूप हमारे सामने खड़ा हो जाता है।

खरगसेन अपनी माताके साथ १५५१ में हीरे और लालके व्यापारी अपने जौहरी मामा मदनसिंह श्रीमालके यहाँ पहुँचे और उन्होंने उनकी सभी आव-भगत की। जब खरगसेन आठ बरसके हुए तो वे पढ़नेके लिए पाठशाला भेजे गए वहाँ उनकी एक व्यापारीके बेटेकी तरह शिक्षा हुई। वे सोने चाँदीके परखने लगे घरमें रोकड़का हिसाब रखने लगे और जमाका हिसाब ?। वे लेने-देनका हिसाब विधिपूर्वक रखने लगे और हाटमें बैठकर सराफेके काम सीखने लगे। इससे कुछ दिन पहले भी एक व्यापारी बालककी शिक्षाका यही क्रम था और कुछ पुराने घरानोंमें तो यह प्रथा अब भी चली आती है यद्यपि नोट चल जानेसे रुपए परखनेकी कला अब समाप्तप्राय है। पर व्यापारीकी शिक्षा धूमधाम कर बिना विवाह कराए पूरी नहीं मानी जाती थी। चार बरस बाद खरगसेन बंगाल पहुँचे और वहाँ सुलेमानके साले लोदीखाँके दीवान धन्ना श्रीमालके एक पोतदार बन गए। वह सब पोतदारोंका विश्वास करता था और बिना लेखा जाँचे फारकती लिख देता था। खरगसेनके जिम्मे चार परगने थे और वे दो कारकुनोंकी मददसे तहसील वसूल करते थे और कोठीवालोंके पास खजाना भेज देते थे। पर उनके दुर्भाग्यने उनका पीछा न छोड़ा। धन्नाकी

तैयार तैयार हो गए और चारों ओर चौकीदार रखवाली करने लगे और कँगूरों पर तोपें चढ़ा दी गईं। गढ़में अन्न-जल, वस्त्र, सिरहबख्तर, जीन, बन्दूकें, हथियार तथा गोला बारूद इकट्ठा कर लिए गए। इसकी तैयारी देख प्रजा व्याकुल हो उठी और लोग भागने लगे। बेचारे जौहरी एक जगह इकट्ठा हुए और किलीचके पास पहुँचे पर उससे ढाढ़स न पाकर सब भागे। खरगसेन भी जंगलमें छिपे रहे और छह महीने बाद जब मामला सुधरा तो जौनपुर वापिस आए।

अब बनारसीदास चौदह सालके हो चुके थे तथा नाममाला, अनेकार्थ, ज्योतिष और अलंकारके साथ साथ उन्होंने लघुकोकशास्त्र भी पढ़ा। कोकशास्त्र पढ़नेसे नतीजा जो होना था सो हुआ। उन्हें मानिकोंकी चोरी करने और आशिकी इतनी बढ़ी कि रोजगार एक तरफ धरा रह गया। बुरेका बुरा फल निकला। उन्हें उपदंश हो गया और वे अपनी सास और स्त्रीकी सेवा और एक नापितकी दवासे किसी तरह अच्छे हुए, पर आशिकी और पढ़नेके बीच उनका जीवन-क्रम चलता रहा। सन् १६ ४ में खरगसेन यात्राको गये और बनारसीदासकी निरंकुशता बढ़ गई। १६ ५ में जौनपुरमें अकबरकी मृत्युका समाचार पहुँचा, पर फिर गड़बड़ी मच गई। लोगोंने अपने घरोंके दरवाजे बन्द कर दिए, व्यापारियोंने बाजारमें बैठना छोड़ दिया मालमत्ता छिपा दिया, घरोंमें धन दबाके कर लिए और मोटे वस्त्र पहनकर लोग दरिद्र बन गए। पर यह गड़बड़ी जल्दी ही शान्त हो गई और व्यापारी फिर जौनपुर लौटकर आनंद-मंगल मनाने लगे।

इधर बनारसीदासका मन बदला। उन्होंने अपने धर्मको झूठा मानकर योगीजीके हवाले कर दिया और नेम-धरम मानते हुए पूरे जैनी बन गए। इस तरह कुसङ्गमें तीन साल बीत गए। अपने पुत्रके अच्छे लक्षण देखकर खरगसेन हरख उठे और सन् १६१ में उन्होंने कुछ मोती और जवाहरात इकट्ठा करके व्यापारमें उनके भाग किया। साथ ही साथ बीस मन घी, दो कुप्पे तेल और जौनपुरी कपड़ा इकट्ठा कर लिया। मालमें २ व जो जिनमें कुछ घरकी रकम थी और कुछ उधारकी। यह सब मालमत्ता बनारसीदासके सुपुर्द करके उनके पिताने व्यापारसे सारे कुटुम्बके पालनपोषणकी आशा प्रकट की। बेचारे बनारसीदासने व्यापारतः तो नेत्रमें जोखे और सारा माल गाड़ियोंपर लादा। बहुत-सी और गाड़ियाँ साथ हो लीं और प्रतिदिन पाँच कोसकी यात्रा करके

काफ़िला इटावेके पास पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही इतना ज़ोरसे पानी गिरा कि सारा काफ़िला बचनेके लिए घरोंकी खोजमें भागा। बेचारे बनारसीदास भी चादर लेकर भागते हुए सराय पहुँचे, पर वहाँ तो उमराव ठहरे हुए थे। बाज़ारमें टिक रहनेको जगह न थी। दौड़ते दौड़ते पैर थके हो गए पर किसीने बैठने तकको न कहा। पैर कीचड़से सन गए और ऊपरसे मूसलधार बरसात, साथ ही साथ भयानककी ठंडी हवा। एक स्त्रीने उनसे बैठनेको कहा तो उसका पति बेंत लेकर उठा। रोते खीजते वे एक चौकीदारकी झोंपड़ीमें पहुँचे। उसने इनमानकी सम्पत्तिसे उन्हें और उनके साथियोंको ठहरनेकी अनुमति दे दी और वे सब कपड़े सुखाकर पयालपर सो गए, पर मुसीबतोंने साथ न छोड़ा। रातमें एक चारपाकर आदमी आ धमका और उन्हें चाबुककी मारका डर दिखला कर भगा देना चाहा। बनारसीदास हड़बड़ाकर भगे तब उसे दया आगई। उसने उन्हें एक खाट सोनेको दिया और खुद उसपर खाट डाल कर पड़ रहा। किसी तरह ठिठुरते हुए रात बीती और सबेरे काफ़िला आगरेकी ओर चल पड़ा।

बनारसीदास आगरे पहुँचकर वहाँ मोतीकटरेमें ठहर गए। बादमें वे अपने बहनोई बंदीदासके यहाँ जा टिके और माल उधार देनेवालेकी कोठीमें रख दिया। कुछ दिनों बाद उन्होंने अपना डेरा अलग कर लिया और वहीं कपड़ेकी गठरियाँ रख दीं और नित्य नख्खासे जाने आने लगे। अनभ्यस्त व्यापारीके मार्गमें नुकसान ही बदा था पर भी तेल बेचकर मुनाफेके चार टक्के हाथ लगे। इस तरह सब चीजें बेच-खोंचकर उन्होंने हुंडीको चुकता किया। बनारसदासके व्यापारमें तो और बुरी ठहरी। कुछ चीजें बिना जाने सोचे तपकुथपुओंको दे दीं कुछ गिरो पर धर रकम खा गए। एक बार कुप्पा बजाकर टेंटसे गिरकर खो गया और कुछ पैजामेमें बँधे जवाहरात चूहे खा ले गए। एक चोखी जड़ाऊ पहुँची एक ग्राहकके हाथ बची तो उसने दिवाला निकाल दिया और एक अँगूठी गिरकर खो गई। इन मुसीबतोंके बीच बनारसीदास बीमार भी पड़ गए। पिताने सब समाचार सुनकर बड़ी हाय तौबा मचाई। इधर बनारसीदास सब खो-बचकर रातमें मधुमालती और मृगावती बाँचने लगे। श्रोताओंमें एक कचौड़ी वाला था, और उससे उधार पर कचौड़ियाँ लेकर उन्होंने छह महीने गुजार दिए। दमाहकी दुर्दशा देखकर उनके ससुर समझाबुझाकर अपने घर ले गए। ससुरके घर रहते हुए वे वरमदासके, जो मौजी और उड़ाऊ जौहरी थे, व्यवसीदार बने, पर

किसी तरह रोजगार चल निकला। दो बरस बाद खराबाद कोठीकी खुली और सब चीजें बेच-खोंचकर उन्होंने कर्ज चुका दिया। इस तरह व्यापारका पहला दौर सन् १६११ में समाप्त हो गया।

एक दिन किस्मत खुली रास्तेमें मोतियोंकी एक गठरी मिल गई। उससे एक तावीज बनवाया और व्यापारके लिए पूरबकी ओर चल पड़े। रास्तेमें अपनी ससुरालमें ठहरे और उनकी दुरवस्था जानकर उनकी पत्नी और सासने सहानुभूतिपूर्वक उनकी मदद की। बनारसीदासकी अवस्था कुछ सुधरी, कुछ कपड़े और जवाहरात इकट्ठे किए और आगरे पहुँचे। वहाँ परदेवके कटरेमें ससुरकी दूकानमें भोजन करते थे रातमें कोठीमें पड़ रहते थे। किस्मतके खोटे थे कपड़ेके दाममें मंदी आगई पर जवाहरातके रोजगारमें कुछ फायदा हुआ। कुछ दिन मित्रोंके साथ हँसी खुशीमें बीता पर व्यापारी थे, रुपए तो कमाने ही थे। दो मित्रोंके साथ पटना जानेके लिए निकल पड़े। शहजादपुर तक तो रथमें गए, पर वहाँ एक बोझिया कर लिया और सरायमें ठहर गए। अचानक डेढ़ पहर रात बीते अमावासी चाँदनीमें सबेरा हुआ जानकर वे तीनों बोझियेके सिर माल लदवाकर चल निकले पर रास्ता भूल जानेसे जंगलमें जा फँसे। बोझिया तो रो-कलप कर बोझा फेंक चंपत हुआ। अब तीनों मित्रोंको स्वयं बोझा लादना पड़ा और वे रोते रोते आगे बढ़े। यहीं उनकी विपत्तिका अंत नहीं हुआ। वे एक चोरोंके गाँवके पास जा पहुँचे। एक आदमी द्वारा अपना परिचय पूछे जाने पर उनकी जान सूख गई। बनारसीदासने ब्राह्मण बननेका बहाना करके उसे असीसा और उसने उन्हें अपने चौधरीकी चौपालमें ठहरनेको कहा, पर डरके मारे उनकी बुरी दशा थी। जान बचानेके लिए उन्होंने रस्सोंसे सूत बटकर जनेऊ बना कर पहने और मिट्टीसे टीके लगाकर पूरे ब्राह्मण बन गए। चौधरी आ धमके और बनारसीदास और उनके साथियोंको ब्राह्मण जानकर सीस नवाया और उन्हें फतहपुरका रास्ता बतला दिया। इस तरह वे इलाहाबाद पहुँचे।

यों तो बनारसीदासका व्यापार चलता ही रहा पर सन् १६१६ में अपने पिताकी मृत्युके बाद उन्होंने फिर व्यापार करनेकी सोची। पाँच सौकी हुंडी लिखकर कपड़ा खरीदा पर इसी बीच आगरेसे लेखा चुकानेके लिए सेठ धरमदासका पत्र आया और बनारसीदास अपना

कपड़ेका काम दूसरोंको सुपुर्द करके बाहर चल निकले। साथियोंकी पूरी जमातमें उन्नीस आदमी हो गये जिनमें मथुरावासी दो ब्राह्मण भी थे। शाहजादपुरके पास कोररा ग्राममें बनारसीदास सरायमें उतर गए और दोनों ब्राह्मण किसी अहीरके घर जा पहुँचे। एक ब्राह्मण देखता बाजार पहुँचे और एक रुपया भुना कर खाने पीनेका सामान खरीद कर डेरेपर वापिस लौटे। इतनेमें जिस सराफके यहाँ उसने रुपया भुनाया था वह वहाँ पहुँचा और रुपया खोटा कहकर उसे बदल देनेको कहा। इस बातको लेकर दोनोंमें तू तू मैं मैं हो गई और मथुरिया ब्राह्मणने सराफको पीट दिया। इसी बीच सराफका भाई आगया। उसने ब्राह्मणोंके सब रुपये जाली ठहराए और उनके गाँठके रुपए धर ले जाकर नकली रुपयोंके चलानेका कोतवालसे फरियाद कर दी। कोतवाल हाकिमकी आज्ञासे दीवानके साथ कोररामें सरायमें पहुँचा और चार आदमियोंके सामने उनके बयान लिए। कोतवालने उनकी गिरफ्तारीका हुक्म दिया जो सवेरे तकके लिए रोक दी गई। किसी तरह रात बीती पर सवेरे ही कोतवालके प्यादे उन्नीस सूलियाँ लेकर आ धमके और कहा कि ये सूलियाँ उनके ही लिए हैं। बनारसीदास और उनके साथी पासके एक गाँवके साहूकारकी जमानत देकर किसी तरह बच गए। पहर भर दिन चढ़ने पर बनारसीदासने सब साथ कर कुमक लेकर हाकिमोंकी भेंट की और सराफको सजा देनेकी माँग की, पर पता चला कि वह तो चम्पत हो चुका था। रास्तेमें अपने मित्र नरोत्तमदासकी मृत्युका समाचार सुन कर वे बड़े दुखी हुए। दया करके उन्होंने ब्राह्मणोंको उनके खाये रुपए भी दे दिए। आगरेमें उनके साहूकी ऐसे आपत्तिमें इतने फँसे थे कि उन्हें हिसाब करनेकी फुरसत ही नहीं थी। किसी तरह एक मित्रकी सहायतासे मामला निपट गया और साझा अलग हो गया। यही बनारसीदासकी व्यापारीके नाते अंतिम यात्रा थी। इसके बाद लगता है कि धीरे धीरे उनकी आध्यात्मिक उन्नतिके साथ व्यापारका सिलसिला कम हो चला।

प्रेमीजीने बनारसीदासके अध्यात्म मतके बारेमें उपलब्ध सामग्रीका विधिपूर्वक विश्लेषण किया है और उनके आत्मिक विकासपर भी प्रकाश डाला है। उस समय आगरेमें अध्यात्मियोंकी एक शैली या गोष्ठी थी जिसमें प्रतिदिन परमार्थका चिन्तन होता था। बनारसीदास इन अध्यात्मियोंमें एक प्रमुख स्थान पा गये। घरमें व्यापारस्थानमें अध्यात्मियोंकी और शैलियाँ बन गई। अब प्रश्न उठता है कि

इन अध्यायमें गोष्ठियोंका अकबरके दीन इलाही मतसे, जो बादशाहके अध्यात्मिक चिन्तनका परिणाम था, क्या सम्बन्ध था। अकबरने १५८२ ई० में दीन इलाहीकी स्थापना की पर १५८० के पहले इसके सिद्धान्तोंकी व्याख्या भी न हो सकी थी और न इनपर कोई प्रमाणित ग्रंथ ही लिखा गया था, यद्यपि दीन इलाहीके आचारविचारोंके विषयमें बदायूनीने कुछ लिखा है। मोहसिन फानीने दबिस्तान-ए-मजाहिबमें लिखा है कि दीनके निम्नलिखित दस सिद्धान्त थे, यथा— (१) दान (२) दुष्टोंको क्षमा तथा शान्तिसे क्रोधका शमन (३) सांसारिक भोगोंसे विरति, (४) सांसारिक बन्धनोंसे विरक्ति और परलोकचिन्तन, (५) कर्मविपाकपर ज्ञान और भक्तिके साथ चिन्तन (६) अद्भुत कर्मोंका बुद्धिपूर्वक मनन (७) सबके प्रति मीठा स्वर और मीठी बातें, (८) भाइयोंके प्रति अच्छा व्यवहार तथा अपनी बातके पहले उनकी बात मानना, (९) लोगोंके प्रति विरक्ति और ईश्वरके प्रति अनुरक्ति, (१०) ईश्वर-प्रेममें आत्मसमर्पण और सर्वव्यापक परमात्मासे साक्षात्कार। दीन इलाहीमें व्यक्तिके पवित्र आचरणपर ध्यान रखा गया है। पर किसी मजहबको चलानेके लिए बाह्य कर्मों और संगठनकी भी आवश्यकता पड़ती है और दीन इलाही भी इसका अपवाद नहीं है। फिर भी इसमें पुरोहितोंको स्थान नहीं है।

सूफियाना मत होनेसे इसमें धर्म मन्दिरकी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि एक अवस्था विशेषको पहुँचनेहीपर लोग इस मतमें प्रवेश पा सकते थे। गो कि इस बातके भी प्रमाण हैं कि बादशाहको प्रसन्न करनेके लिए भी लोग दीन इलाहीमें जुट सकते थे। धर्मोंके प्रति सहानुभूति ही इसका मुख्य लक्ष्य था। दीक्षाके पहले बादशाहके प्रति वफादारी आवश्यक थी। प्रति रविवारको दीक्षा लेनेवाला बादशाहके चरणोंमें नत होता था। दीक्षा लेनेके बाद उसकी पगड़ी चेलोंमें होती थी और वह 'अल्लाहो अकबर' अंकित शस्त पहननेका अधिकारी होता था। चेले बादशाहके सामने जमीनबोस होते थे और वह उन्हें दर्शनियाँ मंजिलसे दर्शन देता था। दीन इलाहीवाले मृतक-भोज नहीं करते थे, कमसे कम मांस खाते थे, अपने द्वारा मारे पशुका मांस नहीं खाते थे, कसाइयों मछुओं और बहेलियोंके साथ भोजन नहीं करते थे तथा गर्भिणी, वृद्धा और वन्ध्यासे सहगमन उनके लिए वर्जित था। चेले दो प्रकारके होते थे, पूरा धर्म माननेवाले और केवल शस्तके अधिकारी।

तीन हजारोंका प्रभाव आगराकालीन जन-जीवनपर कितना पड़ा, यह कहना कठिन है। उनमें इस्लामके सिद्धान्तोंका अधिकतर प्रतिपादन होनेसे शायद वह हिंदुओंके हृदयको अधिक न छू सका, पर इसमें संदेह नहीं कि तत्कालीन गोष्ठियों और शैलियोंमें उनकी झलक अवश्य दीख पड़ती है। बनारसीदासने अपने गुरुके बारेमें जैसे क्षमा, संतोष, मित्रभाव, सहनशीलता, इत्यादिका उल्लेख किया है वे तीन हजारोंमें भी पाये जाते हैं तथा अध्यात्म-चिंतनमें दोनोंका विश्वास था। पर यह पता नहीं चलता कि उनकी अध्यात्म शैलीमें दाखिल होनेके क्या नियम थे अथवा उस गोष्ठीमें गुरुशिष्यसम्बन्ध प्रचलित था या नहीं। शायद गुरुशिष्यपरम्परा जैन शैलियोंमें न रही हो, पर आगरेमें टोडरमलके पुत्र गोबरधन धर अथवा गिरधारी द्वारा स्थापित एक ऐसी गोष्ठीका पता चलता है जिसके गुरु स्वयं गोबरधन थे। इतिहाससे पता चलता है कि १५८५ से १५८९ के बीच गोबरधन जौनपुरमें थे। जौनपुरमें रहते हुए उन्हें बनारस आनेके बहुतसे मौके पड़ते रहे होंगे और टोडरमलके नामसे जो मन्दिर या धर्मशाला बनारसमें बनीं उन्हें गोबरधनने ही बनवाया होगा। सन् १५८५ और १५८९ के बीच विश्वेश्वरकी पूजाके उपलक्ष्यमें गोपकृष्ण-द्वारा लिखित कलावत नामकका अभिनय हुआ और इस अभिनयमें गोबरधन स्वयं उपस्थित थे। अभिनयके आरम्भके निम्नलिखित श्लोकसे गोबरधनके बारेमें कुछ पता चलता है :—

> तस्यास्ति टंडनकुलाम्बरभर्मभानस्य,
> श्रीतोडरक्षितिपतेस्तनयो नयज्ञः।
> नानाकलाकुशलधीः सविदग्धगोष्ठीम्
> एकोऽधितिष्ठति गुरुर्गिरिधारि नामा।

इस श्लोकसे पता चलता है कि गुरु गिरिधारी राजा टोडरमलके पुत्र थे तथा नाना कलाओंसे भरी विदग्ध गोष्ठीके वे गुरु थे। इस श्लोकमें आए गिरिधारीसे कुछ विद्वानोंने बलभाचार्यके पौत्र गिरधारीका अर्थ लिया है और उन्हें गोबरधनका गुरु मान लिया है। पर गोबरधन और गिरधारी एक थे इसमें संदेह नहीं। इस प्रसंगमें बनारसी एक प्रसिद्ध श्लोकोक्ति "अपने गुरु गोबरधनदास" की ओर बरबस ध्यान आकृष्ट होता है जिससे भ्रम होता है कि

गोरखनाथका सब धार्मिक कार्योंमें अग्रणी है। संभव है कि यह ग्रन्थ गोरखपन्थके लिए ही बनारसमें चली थी। गोरखपन्थकी विशेष गोष्ठीमें क्या क्या होता था इसका पता नहीं, शायद इसमें कथा-वार्ताके साथ साथ आध्यात्मिक विचारोंकी भी चर्चा होती रही होगी, क्योंकि राजा येहरमल और बोरत धार्मिक विचारके थे। यह भी संभव है कि बनारसीकी देखादेखी जोरतने जैन इमारीके ईपवर बनारसमें कोई गोष्ठी चलाई हो। पर जब तक इस संबंधमें कुछ और सामग्री न मिले कोई ठीक मत निश्चय नहीं किया जा सकता।

पंडित नाथूरामजीने बनारसीदासजीके अर्धकथानकका उद्धार करके तथा अपनी बड़ी भूमिकामें उस ग्रंथमें आई हुई सामग्रीका वैज्ञानिक ढंगसे अध्ययन करके मध्यकालीन इतिहास और संस्कृतिके विद्यार्थियोंकी अपूर्व सेवा की है। मुझे आशा है कि भविष्यमें अर्धकथानकका अनुवाद अंग्रेजी और दूसरी देशीय भाषाओंमें भी होगा।

प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई
८-११-५७

—(डॉ.) मोतीचन्द्र

हिन्दीका प्रथम आत्म-चरित

सन् १६४१—

कोई तीन सौ वर्ष पहलेकी बात है। एक भावुक हिन्दी कविके मनमें नाना प्रकारके विचार उठ रहे थे। जीवनके अनेकों उतार चढ़ाव वे देख चुके थे। अनेक संकटोंमेंसे वे गुजर चुके थे कई बार बाल बाल बचे थे कभी चोरों डाकुओंके हाथ जान-माल खोनेकी आशंका थी तो कभी शूलीपर चढ़नेकी नौबत आनेवाली थी और कई बार भयंकर बीमारियोंसे वे मरणासन्न हो गये थे। गार्हस्थिक दुर्घटनाओंका शिकार उन्हें कई बार होना पड़ा था, एकके बाद एक उनकी दो पत्नियोंकी मृत्यु हो चुकी थी और उनके नौ बच्चोंमेंसे एक भी जीवित नहीं रहा था! अपने जीवनमें उन्होंने अनेकों रंग देखे थे—तरह तरहके खेल खेले थे—कभी वे आशिकीके रंगमें सराबोर रहे तो कभी धार्मिकताकी धुन उनपर सवार थी और एक बार तो आध्यात्मिक फिटके वशीभूत होकर उन्होंने वर्षोंके परिश्रमसे लिखा अपना नवरसका ग्रन्थ गोमतीके हवाले कर दिया था! तत्कालीन साहित्यिक जगत्में उन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा मिल चुकी थी और यदि किंवदन्तियोंपर विश्वास किया जाय तो उन्हें महाकवि तुलसीदासके सत्संगका सौभाग्य ही प्राप्त नहीं हुआ था बल्कि उनसे यह सर्टिफिकेट भी मिला था कि आपकी कविता मुझे बहुत प्रिय लगी है। सुना है कि शाहजहाँ बादशाहके साथ शतरंज खेलनेका अवसर भी उन्हें प्रायः मिलता रहता था। संवत् १६९८ (सन् १६४१) में अपनी तृतीय पत्नीके साथ बैठे हुए और अपने विगत-विचित्र जीवनपर दृष्टि डालते हुए यदि उन्हें किसी दिन आत्म-चरितका विचार सूझा हो तो उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

> नौ बालक हुए मुए, रहे नारि नर दोइ।
> ज्यौं तरवर पतझार ह्वै, रहैं ठूंठसे होइ॥ ६४२॥

अपने जीवनके मध्याह्नके दिनोंमें लिखी हुई इस छोटी सी पुस्तकसे यह आशा उन्होंने स्वप्नमें भी न की होगी कि यह कई सौ वर्ष तक हिन्दी जगत्‌में उनके यशःशरीरको जीवित रखनेमें समर्थ होगी।

कविवर बनारसीदासके आत्म-चरित 'अर्धकथानक' को आद्योपान्त पढ़नेके बाद हम इस परिणामपर पहुँचे हैं कि हिन्दी साहित्यके इतिहासमें इस ग्रन्थका एक विशेष स्थान तो होगा ही साथ ही इसमें वह संजीवनी शक्ति विद्यमान है जो इसे अभी कई सौ वर्ष और जीवित रखनेमें सर्वथा समर्थ होगी। सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता निरभिमानता और स्वाभाविकताका ऐसा जबरदस्त पुट इसमें विद्यमान है भाषा इस पुस्तककी इतनी सरल है और साथ ही साथ यह इतनी संक्षिप्त भी है कि साहित्यकी चिरस्थायी सम्पत्तिमें इसकी गणना अवश्यमेव होगी। हिन्दीका तो यह सर्वप्रथम आत्म-चरित है ही, पर अन्य भारतीय भाषाओंमें इस प्रकारकी और इतनी पुरानी पुस्तक मिलना आसान नहीं। और सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह है कि कविवर बनारसीदासका दृष्टिकोण आधुनिक आत्म-चरित-लेखकोंके दृष्टिकोणसे बिलकुल मिलता जुलता है। अपने चारित्रिक दोषोंपर उन्होंने पर्दा नहीं डाला है, बल्कि उनका विवरण इस खूबीके साथ किया है मानों कोई वैज्ञानिक तटस्थ वृत्तिसे विश्लेषण कर रहा हो। आत्माकी ऐसी चीरफाड़ कोई अत्यन्त कुशल साहित्यिक सर्जन ही कर सकता था और यद्यपि कविवर बनारसीदासजी एक भावुक व्यक्ति थे—गोमतीमें अपने ग्रन्थको प्रवाहित कर देना और सम्राट् अकबरकी मृत्युका समाचार सुनकर मूर्छित हो जाना उनकी भावुकताके प्रमाण हैं—तथापि इस आत्म-चरितमें उन्होंने भावुकताको स्थान नहीं दिया। अपनी दो पत्नियों, दो लड़कियों और सात लड़कोंकी मृत्युका जिक्र करते हुए उन्होंने केवल यही कहा है :—

तत्त्वदृष्टि जो देखिए, सत्यारथकी भाँति।
ज्यौं जाकौ परिगह घटै, त्यौं ताकौं उपसांति॥ ६४४

यह दोहा पढ़कर हमें प्रिंस क्रोपाटकिनकी मार्मिक लेखनशैलीकी याद आ गई। उनका आत्म-चरित उन्नीसवीं शताब्दीका सर्वोत्तम आत्म-चरित माना जाता है। उसमें उन्होंने अपने अत्यन्त प्रिय भाईकी मृत्युका जिक्र केवल एक वाक्यमें किया था :—

A dark cloud hung upon our cottage for many months."

अर्थात् 'कितने ही महीनोंतक हमारी कुटीपर कुत्सकी मृत्यु छाई रही।" यह बात ध्यान देने योग्य है कि ऐलेक्जेण्डर क्रोपाटकिन ज्योतिर्विज्ञानके बड़े पण्डित थे, फिर भी रूसी नौकरशाहीने निरपराध ही उन्हें साइबेरियाके लिए निर्वासित कर दिया था और वहाँसे लौटते समय उन्होंने आत्म-घात कर लिया था।

अपने चारित्रिक स्खलनोंका वर्णन कविवरने इतनी स्पष्टतासे किया है कि उन्हें पढ़कर अराजकवादी महिला ऐमा गोल्डमैनके आत्म-चरितकी याद आ जाती है। अँग्रेजीके एक आधुनिक आत्मचरित*में उसकी लेखिका ऐथिल मैनिनने अपने प्रणय-सम्बन्धोंका वर्णन निस्संकोच भावसे किया है पर उन्हें इस बातका क्या पता कि तीन सौ वर्ष पहले एक हिन्दी कविने इस आदर्शको उपस्थित कर दिया था। उनके लिए यह बड़ा आसान काम था कि वे भी "मो सम कौन अधम खल कामी" कहकर अपने दोषोंको धार्मिकताके पर्देमें छिपा देते। उन दिनों आत्मचरितोंके लिखनेकी रिवाज भी नहीं थी—आजकल तो हिन्दुस्तानमें चोर डाकू और वेश्यायें भी आत्मचरित लिख लिख कर प्रकाशित करा रही हैं—और तत्कालीन सामाजिक अवस्थाको देखते हुए कविवर बनारसी-दासजीने वस्तुतः बड़े दुस्साहसका काम किया था। अपनी इश्कबाजी और तज्जन्य आतशक (सिफलिस) का ऐसा खुल्लमखुल्ला वर्णन करनेमें आधुनिक लेखक भी हिचकिचायेंगे। मानो तीन सौ वर्ष पहले बनारसीदासजीने तत्कालीन समाजको चुनौती देते हुए कहा था "जो कुछ मैं हूँ, आपके सामने मौजूद हूँ, न मुझे आपकी पुण्यकी परवाह है और न आपकी भलाकी चिन्ता।" लोक-लज्जाकी भावनाको ठुकरानेका यह नैतिक बल सहस्रोंमें एकाध लेखकको ही प्राप्त हो सकता है।

कविवर बनारसीदासजी आत्मचरित लिखनेमें सफल हुए इसके कई कारण हैं, उनमें एक तो यह है कि उनके जीवनकी घटनायें इतनी वैचित्र्यपूर्ण हैं कि उनका यथाविधि वर्णन ही उनकी मनोरंजकताकी गारंटी बन सकता है। और दूसरा कारण यह है कि कविवरमें हास्यरसकी प्रवृत्ति अच्छी मात्रामें पाई जाती थी। अपना मज़ाक उड़ानेका कोई मौका वे नहीं छोड़ना चाहते। कई महीनों

* Confessions and Impressions by Ethel Mannin.

तक आप एक कचौड़ीवालेसे दुबक्त कचौड़ियाँ खाते रहे थे। फिर एक दिन एकान्तमें आपने उससे कहा—

> तुम उधार दीनौ बहुत, आगे अब जिन देहु।
> मेरे पास किछू नहीं, दाम कहांसौं लेहु॥ ३४१

पर कचौड़ीवाला भला आदमी निकला और उसने उत्तर दिया—

> कहै कचौरीवाल नर, बीस रुपैया खाहु।
> तुमसौं कोउ न कछु कहै, जहां भावै तहां जाहु॥ ३४२

आप निश्चिन्त होकर छै सात महीने तक दोनों वक्त भरपेट कचौड़ियाँ खाते रहे और फिर जब पैसे पास हुए तो चौदह रुपये देकर हिसाब भी साफ कर दिया। चूँकि हम भी आगरे जिलेके ही रहनेवाले हैं, इसलिए हमें इस बातपर गर्व होना स्वाभाविक है कि हमारे यहाँ ऐसे दूरदर्शी उदार कचौड़ीवाले विद्यमान थे जो साहित्यसेवियोंको छै सात महीने तक निश्चिन्ततापूर्वक उधार दे सकते थे। खेद इतना ही है कि कचौड़ीवालोंकी वह परम्परा अब विद्यमान नहीं नहीं तो आजकलके महँगीके दिनोंमें वह आगरेके साहित्यिकोंके लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध होती।

कविवर बनारसीदासजी कई बार बेवकूफ बने थे और अपनी मूर्खताओंका उन्होंने बड़ा मनोहर वर्णन किया है। एक बार किसी धूर्त संन्यासीने आपको चकमा दिया कि अगर तुम अमुक मंत्रका जाप पूरे सालभर तक बिलकुल गोपनीय ढंगसे पाखानेमें बैठकर करोगे तो वर्ष बीतने पर घरके दरवाजेपर एक अशर्फी रोज मिला करेगी। आपने इस अनुपम मंत्रका जाप उस दुर्गन्धित वातावरणमें विधिवत् किया पर स्वर्णमुद्रा तो क्या आपको फूटी कौड़ी भी न मिली।

बनारसीदासजीका आत्मचरित पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हम कोई सिनेमा-फिल्म देख रहे हैं। कहींपर आप चोरोंके ग्राममें फन्देसे बचनेके लिए तिलक लगाकर ब्राह्मण बनकर चोरोंके चौधरीको आशीर्वाद दे रहे हैं तो कहीं आप अपने साथी संगियोंकी चौकड़ीमें नंगे नाच रहे हैं या जूते-पैजारका खेल खेल रहे हैं।—

> कुमती चारि मिले मन मेल। खेला पैजारहुका खेल॥
> सिरकी पाग लेहिं सब छीन। एक एककौं मारहिं तीन॥ ६ १

एक बार घोर वर्षाके समय इटावेके निकट आपको एक उदण्ड पुरुषकी खाटके नीचे टाट बिछाकर अपने दो साथियोंके साथ लेटना पड़ा था। उस गँवार मूर्खने इनसे कहा था कि मुझे तो खाटमें बिना चैन नहीं पड़ सकती और तुम इस फटे हुए टाटको मेरी खाटके नीचे बिछाकर उसपर शयन करो।

एकमध्य बनारसि कहै। वैसी बनि परै सो सहै।
जैसा कातै तैसा बुनै। जैसा बोवै तैसा लुनै ॥ १ ९
पुरुष खाटपर सोया भले। तीनौ जनें खाटके तले।

एक बार आगरेको लौटते हुए कुर्रा नामक ग्राममें आप और आपके साथियोंपर झूठे सिक्के चलानेका भयंकर अपराध लगा दिया गया था और आपको तथा आपके अन्य अठारह साथी यात्रियोंको मृत्युदण्ड देनेके लिए सूली भी तैयार कर ली गई थी। उस संकटका ब्योरा भी रोंगटे खड़े करनेवाले किसी नाटक जैसा है। उस वर्णनमें भी आपने अपनी हास्यप्रवृत्तिको नहीं छोड़ा।

सबसे बड़ी खूबी इस आत्म-चरितकी यह है कि यह तीन-सौ वर्ष पहलेके साधारण भारतीय जीवनका दृश्य ज्योंका त्यों उपस्थित कर देता है। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे कुछ प्रतिभाशाली साहित्यिक इस दृष्टान्तका अनुकरण कर आत्म-चरित लिख डालें। यह काम उनके लिए और भावी जनताके लिए भी बड़ा मनोरंजक होगा। क्योंकि 'नवीन' जी—

'आत्मरूप दर्शनमें सुख है, मृदु आकर्षण-क्षेम है।
और विगत जीवन-संस्मृति भी स्वात्मप्रदर्शनशील है;
दर्पणमें निज बिम्ब देखकर यदि हम सब खिंच जाते हैं
तो फिर संस्मृति तो स्वभावतः नर-हिय-दर्पणशील है!"

स्वर्गीय कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने चैतालिमें 'नगण्य लोक' शीर्षक एक कविता लिखी है जिसका सारांश यह है: —

"सन्ध्याके समय काँखमें छाता दबाए और सिरपर बोझ लिये हुए कोई किसान नदीके किनारे किनारे घरको लौट रहा हो। अनेक शताब्दियोंके बाद यदि किसी प्रकार भूत-कालसे अतीतके मृत्यु-राज्यसे वापस बुलाकर इस किसानको पूर्ण मान दिखला दिया जाय तो आश्चर्य-चकित होकर असीम जनता उसे चारों ओरसे घेर लेगी और उसकी प्रत्येक कहानीको उत्सुकतापूर्वक सुनेगी। उसके

किया। विदा होते समय आज्ञा माँगी तो उन्होंने उत्तर दिया, 'उधर अपने लोग बहुत कम हैं मार्ग कठिन है लोग भाँग और गाँजा पीनेवाले हैं और मथुराकी स्त्रियाँ मायावी होती हैं।"

स्त्रियोंके मायावी होनेकी बात पढ़कर हँसी आए बिना नहीं रहती। दक्षिण-वालोंके लिए मथुराकी स्त्रियाँ मायावी होती हैं और इधर उत्तरवालोंके लिए बंगालकी स्त्रियाँ जादूगरनी होती हैं जो आदमीको भेड़ बना देती हैं और बंगालियोंके लिए कामरूप (आसाम) की स्त्रियाँ कपटी और भयंकर होती हैं। बंगालमें पूरे ग्यारह वर्ष रहनेके बाद भी हम कठिनाईसे ताड़ नहीं बने मनुष्य ही बने रहे यही इस बातका प्रबल प्रमाण है कि ये बातें कोरी गप हैं। हाँ तो विष्णुभक्तको मथुराकी मायावी स्त्रियोंसे सुरक्षित रखनेके लिए उनके चाचा भी साथ हो लिए थे और इन्हीं चाचा भतीजेका यात्रा-वृत्तान्त आज सौ वर्ष बाद एक ऐतिहासिक ग्रन्थ बन गया है।

क्या ही अच्छा होता यदि हिन्दीके धुरंधर विद्वान् आगे आनेवाली सन्तानके लिए अपनी अनुभूतियोंको सुरक्षित रखते।

यदि स्वर्गीय द्विवेदीजीने अपना जीवनचरित लिख दिया होता तो हमें दौलतपुरसे १६ मील दूर रायबरेलीको आटा-दाल पीठपर लादे हुए पैदल जानेवाले उस तपस्वी ब्राह्मणका और भी वृत्तान्त सुननेको मिलता जो रोटी बनाना नहीं जानता था और जो इसलिए रास्तेमें आटेकी टिकियाँ डालकर और पकाकर खा लिया करता था।

संसार दुःखमय है और उसमें निरन्तर दुर्घटनाएँ घटा ही करती हैं। यदि कोई मनुष्य हृदयवेदनाको चित्रित कर दे तो वह बहुत दिनोंतक जीवित रह सकती है। कोई बारह सौ वर्ष पहले पो चुइ नामक किसी चीनी कविने अपनी तीन वर्षकी स्वर्गीय पुत्री स्वर्णघंटीके विषयमें एक कविता लिखी थी, वह अब भी जीवित है।

पं० कविवर शङ्करजीने बड़ी पुत्री १ नवम्बर १९८१ को अपनी डायरीमें निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी थीं उस समयकी उनकी हार्दिक वेदनाका अनुमान करना भी कठिन है—

महाकाल रुद्रदेवाय नमः

हाय आज अगहन सुदी ९ सम्वत् १९८१ वि० बुधवारको दिनके ११ बजे पर प्यारा ज्येष्ठ पुत्र उमाशंकर मुझ बूढ़े बापसे पहले ही स्वर्गको चला गया। हाय बेटा, अब मेरी क्या दुर्गति होगी। प्यारा पुत्र पाँच माससे बीमार था। बहुतेरा इलाज किया कराया कुछ भी लाभ न हुआ। प्यारे पुत्रका कोप बढ़ता ही गया, बहुतेरा समझाया कुछ फल न मिला। मरनेके दिन अच्छा भला बातें कर रहा है। एकाएक साँस बढ़ने लगा। चि० हरिशंकर और रामस्वरूप जानकीने देखते देखते ही अचेत होनेपर जमीनपर ले लिया। केवल दो मिनट चुप रहा दम निकल गया। हाय बेटा! उमाशंकर अब कहाँ!

आज उमाशंकर सुत प्यारा हाय हुआ हम सबसे न्यारा।
हे शंकर कविराज सुत संकटहारा छिना।
निरख दिवाली आज हाय उमाशंकर बिना॥

संसारमें न जाने कितने अभागे पिताओंपर यह वज्रपात होता है और पुत्र-विहीन कितनी विपत्तियाँ उन्हें अपने जीवनमें देखनी पड़ती हैं।

जब स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंहजी शर्माने महाकवि अकबरके छोटे लड़के हाशमकी बेवक्त मौतपर समवेदनाका पत्र भेजा था तो उसके जवाबमें अकबर साहबने लिखा था:—

“अगरचे हवादसे आलम (सांसारिक विपत्तियोंकी दुर्घटनाएँ) पेशे नजर रहते हैं और मजीहत हासिल किया करता हूँ लेकिन हाशम मेरा पूरा कायम-मुकाम (प्रतिनिधि कवितानुरागिता तथा उत्तराधिकारी) तय्यार हो रहा था और मेरे तमाम दोस्तों और कद्रदानोंसे मुहब्बत रखता था। उसकी जुदाईका नेचरल तौरपर बेहद असर हुआ है ”

उस समय अकबरने एक कविता लिखी थी जिसका एक पद यह है—

आगोशसे सिधारा मुझसे यह कहनेवाला
अब्बा सुनाइए वो क्या आपने कहा है।
अपाभार हलाल-भारी कहनेकी ताब किसमें।
अब हर नज़र है मौत, हर साँस मरसिया है।”

केवल भुक्तभोगी ही अनुमान कर सकते हैं पुत्रके उस शोकका, जहाँसे ये पंक्तियाँ निकली थीं —

> नौ बालक हुए मुए, रहे नारि नर दोइ।
> ज्यौं तरवर पतझार ह्वै रहैं ठूंठसे होइ ॥

Inside out (अन्तःकरणका प्रकटीकरण) नामक पुस्तकके लेखकने संसारके बड़े बड़े आत्मचरितोंका विश्लेषण करके उक्त पुस्तक लिखी थी और अन्तमें वे इस परिणामपर पहुँचे थे कि सर्वश्रेष्ठ आत्मचरितोंके लिए तीन गुण अत्यन्त आवश्यक हैं — (१) वे संक्षिप्त हों (२) उनमें थोड़ेमें बहुत बात कही गई हो, (३) वे पक्षपातरहित हों।

अर्धकथानक इस कसौटीपर निस्सन्देह खरा उतरता है और यदि इसका अँगरेजी अनुवाद कभी प्रकाशित हो तो हमें आश्चर्य न होगा।

कविवर बनारसीदासजी जानते थे कि आत्मचरित लिखते समय वे कैसा असंभव काम हाथमें ले रहे हैं। उन्होंने कहा भी था कि एक जीवकी चौबीस घंटेमें जितनी भिन्न भिन्न दशाएँ होती हैं उन्हें केवली या सर्वज्ञ ही जान सकता है और वह भी ठीक ठीक तौरपर कह नहीं सकता।—

> एक जीवकी एक दिन दसा होइ जेतीक
> सो कहि न सकै केवली, जानै यद्यपि ठीक ॥ ११

इसी बातको मार्क ट्वेन नामक एक अमरीकन लेखकने इन शब्दोंमें प्रकट किया था:—

What a very little part of a person's life are his acts and his words! His real life is led in his head and is known to none but himself! All day long and every day the mill of his brain is grinding and his thoughts not those other things are his history. His acts and words are merely the visible thin crust of his world, with its scattered snow summits and its vacant wastes of water—and they are so trifling a part of his bulk—a mere skin enveloping it. The most of him is hidden—it and its volcanic fires that toss and boil and never rest, night nor day. These are

his life and they are not written, and can t be written. Every day would make a whole book of eighty thousand words—three hundred and sixty five books a year. Biographies are but the clothes and buttons of the man. The biography of the man himself can t be written."

इसका सारांश यह है " मनुष्यके काम और उसके शब्द उसके वास्तविक जीवनके, जो उसकी करोड़ों भावनाओंद्वारा निर्मित होता है अत्यल्प अंश हैं। अगर कोई मनुष्यकी असली जीवनी लिखनी शुरू करे तो एक दिनके वर्णनके लिए कमसे कम अस्सी हजार शब्द तो चाहिए और इस प्रकार साल भरमें तीन-सौ पैंसठ ग्रन्थ तय्यार हो जायँगे। छपनेवाले जीवन-चरित्रोंको आदमीके कपड़े और बटन ही समझना चाहिए व्यक्तिका सच्चा जीवन-चरित्र लिखना तो सम्भव नहीं।"

फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि (नाटक) होता है (जोर) कोई ऐसा उन् । ...

फिर भी इसमें सन्देह नहीं और जो शब्दोंमें कविवर बनारसीदासजीने अपना चरित्र चित्रण करनेमें काफी सफलता प्राप्त की है जो जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं उनके इस ग्रन्थमें अद्भुत संजीवनी-शक्ति विद्यमान् है। उनके साम्प्रदायिक सम्पत्ति यह कहीं अधिक जीवित रहेगा।

यद्यपि हमारे प्राचीन ऋषि महर्षि 'आत्मानं विद्धि (अपनेको पहचानो) का उपदेश सहस्रों वर्षोंसे देते आ रहे हैं पर यह सबसे अधिक कठिन कार्य है और इससे भी अधिक कठिन है अपना चरित्र-चित्रण। यदि लेखक अपने दोषोंको छिपाके अपनी प्रशंसा करे तो उसपर अपना ढोल पीटनेका इल्जाम लगाया जा सकता है और यदि वह खुल्लमखुल्ला अपने दोषोंका ही प्रदर्शन करने लगे तो छिद्रान्वेषी समालोचक यह कहते हैं कि लेखक बनता है और उसकी आत्म-निन्दा मानों पाठकोंके लिए निमन्त्रण है कि वे लेखककी प्रशंसा करें।

अपनेको तटस्थ रखकर अपने सत्कर्मों तथा दुष्कर्मोंपर दृष्टि डालना, उनको विवेककी तराजूपर बावन तोले पाव रत्ती तौलना सचमुच एक महान् कलापूर्ण कार्य है। आत्म-चित्रण वास्तवमें तलवारकी धारपे धावनो है पर इस कठिन प्रयोगमें अनेक बड़े-से बड़े कलाकार भी फेल हो सकते हैं और छोटे-से छोटे लेखक और कवि अद्भुत सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

जो व्यक्ति अपनको नितान्त साधारण समझते हैं वे भी यदि अपनी अनुभूतियोंको लिख सकें तो अनेक उपदेशप्रद और मनोरंजक ग्रन्थोंका निर्माण हो सकता है। इस अवसरपर हमें स्वर्गीय पं० प्रतापनारायणजी मिश्रका एक वाक्य याद आ रहा है, जो उन्होंने आत्मचरितकी भूमिकामें लिखा था। दुर्भाग्यवश वे पुस्तकको बिल्कुल अधूरा ही छोड़ गये। मिश्रजीने लिखा था—

"जिन पदार्थोंको साधारण दृष्टिसे लोग देखते हैं वे कभी कभी ऐसे आश्चर्य-मय उपकारपूर्ण बनते हैं कि बड़े बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि चमत्कृत हो रहती है। एक सामान्य तिनका हाथमें लीजिए और उसकी भूत एवं वर्तमान दशाका विचार कर चलिए तो जो जो बातें उस तुच्छ तिनकेपर बीती हैं उनका ठीक ठीक वृत्तान्त तो आप जान ही नहीं सकते पर तो भी इतना अवश्य सोच सकते हैं कि एक दिन उसकी हरीतिमा (सब्जी) किसी मैदानकी शोभाका कारण रही होगी। कितने ही मुदित पशु उसके खा जानेको लालायित रहे होंगे, अथवा उसको देखके न जाने कौन डर गया होगा कि साँप लोटता, नहीं ती क्या होने पर पैर कमजोर कर देगा, मुश्किल बैठना कठिन पड़ेगा। इसके अतिरिक्त न जाने कैसी मन्द प्रखर वायु, कैसी घनघोर वृष्टि कैसे घाम कठोर काल महाराजका सामना करता करता आज इस दशाको पहुँचा है। कल न जाने किसकी भोंपड़ीमें रहके न जाने किस ठौरके बस व पवनमें नाचे न जाने किस अग्निमें जलके भस्म हो, इत्यादि। जब तुच्छ वस्तुओंका चरित्र ऐसे ऐसे भारी विचार उत्पन्न करता है तो यह तो एक मनुष्यने बीती हुई बातें हैं सारग्राही लोग इन बातोंमें सैकड़ों भली बुरी बातें निरालेक समझा लोगोंको चतुर बना सकते हैं।"

श्रीयुत ट्रिग (सिविलसर्विसके कलक्टर) का अनुरोध था कि सम्पूर्ण भारतमित्रोंको भी अपने संस्मरण लिख डालने चाहिए; और किसीके लिए नहीं तो उनके परकाम्य तथा नाती-पोतोंके लिए ही वे मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद सिद्ध होंगे। उनका विश्वास था कि प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें कुछ भीतरी या बाहरी अनुभूतियाँ ऐसी होती हैं जो लिपिबद्ध करने योग्य हैं।

१ जनवरी सन् १९०७ के माडर्न रिव्यू में यही बात श्रीयुत सी० एफ० एण्ड्रूज ने अपने एक छोटेसे निबन्धमें लिखी थी। उनका कथन है—

"मैं तो यहाँतक कहूँगा कि हर एक आदमीको आत्मचरित लिखनेके लिए मजबूर करना चाहिए। अगर वह साहित्यिक ढङ्गसे साथ न भी लिख सके तो भी कोई नुकसान नहीं। हर जगह साहित्यिक कारीगरीकी इसमें जरूरत भी नहीं है। यदि कोई बेपढ़ा आदमी भी अपनी कष्ट-गाथाओं या आनन्द-मौजोंको लेकर लिखा दे तो कोई बुरी चीज न बन पड़ेगी। बल्कि हमारा विश्वास है कि चतुराईसे भर विचारके फलस्वरूप गुणके अभावमें उसकी अकृत्रिमता कहीं मनोरंजक होगी। उसमें कमसे कम एक गुण तो अधिक मात्रामें होगा ही, यानी उसमें सच्चाई मात्रा अधिक होगी।"

चार आत्मचरित

अभी तक जितने आत्मचरित हमने पढ़े हैं उनमें चार आत्मचरित हमें खास तौरपर महत्त्वपूर्ण जँचे हैं—प्रिन्स क्रोपाटकिनका, महात्मा गाँधीका, गोर्कीका और स्टिफन ज्विगका। मेमोयर्स आफ ए रेवोल्यूशनिस्ट, सत्यके प्रयोग, मेरा बचपन मेरे विश्वविद्यालय तथा दी वर्ल्ड आफ यस्टरडे इन चार ग्रन्थोंका विश्व-साहित्यमें प्रमुख स्थान है। वैसे कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ, स्वदेश बाबू राजेन्द्रप्रसाद तथा पं० जवाहरलाल नेहरूके आत्मचरित भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। क्रोपाटकिनके आत्मचरितका सारांश बहुत वर्ष पहले 'क्रान्तिकारी राजकुमार' नामसे स्वर्गीय प्यारेमोहन चतुर्वेदीने प्रकाशित कराया था पर अब वह अप्राप्य है।

अब उसका अनुवाद फिरसे कराया जा रहा है। पत्रकारशिरोमणि स्वर्गीय एच डब्ल्यू नेविनसनका आत्मचरित भी जो तीन जिल्दोंमें छपा था, संसारके सर्वोत्तम आत्मचरितोंमें स्थान पावेगा। ज्विगके आत्मचरितका भी अनुवाद यथाशीघ्र होना चाहिए।

अपनी पुस्तकको ज्विगने इन शब्दोंके साथ समाप्त किया है—

सूर्य पूर्ण और प्रखर रूपसे प्रकाशित था। मैं घर वापस आ रहा था कि मुझे अपनी छाया दीख पड़ी उसी प्रकार जिस प्रकार कि वर्तमान युद्धके पीछे दूसरे युद्धकी छाया मैंने देखी थी। यह छाया इतने वर्षोंमें मेरे साथ ही रही है मुझसे दूर बिलकुल नहीं गई और दिन रात मेरे प्रत्येक विचारके ऊपर वह मंडराती रही है बल्कि इस पुस्तकके कुछ पृष्ठोंपर भी उस छायाकी काली रेखा पाठकोंको दृष्टिगोचर होगी, पर आखिर छायाका जन्म भी तो प्रकाशसे ही होता

है और वास्तवमें उसी व्यक्तिकी जिन्दगी सच्ची मानी जानी चाहिए, जिसने व्यथा और अपमान, सुख और शान्ति उतार और चढ़ाव समीचीन अनुभव अपने जीवनमें किया हो।"

इस कसौटीपर भी कविवर बनारसीदासका जीवन बिल्कुल सजीव सिद्ध होता है।

भूमिका समाप्त करनेके बाद हमें दो ग्रन्थ पढ़नेके लिए मिले एक तो जर्मन विद्वान् जार्ज मिश (George Misch) द्वारा लिखित A history of Autobiography in antiquity अर्थात् प्राचीनकालके आत्मचरितोंका इतिहास और दूसरे स्टीफन जिवगकी महत्वपूर्ण पुस्तक Adepts in Self-portraiture यानी आत्मचित्रण कलामें कुशल।

ये दोनों ग्रन्थ जर्मन भाषासे अनुवादित किये गये हैं। पहला ग्रन्थ दो जिल्दोंमें जर्मनीमें ५ वर्ष पहले छपा था और दूसरा सन् १९२५ में। इससे भी पूर्व सन् १७९ में जर्मन कवि तथा विचारक हर्डरने कितने ही विद्वानोंद्वारा विभिन्न भाषाओंके आत्मचरितात्मक वृत्तान्त संग्रह कराके उन्हें प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया था। हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दीमें भी इसी प्रकारका एक बृहद् ग्रन्थ लिखा जा सकता है। जब तक वह न लिखा जाय तब तक आप बीती और जगबीती नामक एक निबन्ध जिसमें जीवनचरितों तथा आत्मचरितोंका परिचय तथा विश्लेषण हो छपाया जा सकता है।

बहुत सम्भव है कि महाकवि तुलसीदासजीको जो कविवर बनारसीदासजीके समकालीन थे आत्म-चरित लिखनेमें उतनी सफलता न मिलती जितनी बनारसीदासजीको मिली। यदि किसी चित्र खिंचवानेवालेको तसवीर देते समय विशेष रूपसे आत्म चेतना हो जाय तो उसके चेहरेकी स्वाभाविकता नष्ट हो जायगी। इसी प्रकार आत्मचरित लेखकका अभिमान अथवा 'पाठक क्या ख्याल करेंगे' यह भावना उसकी सफलताके लिए विघातक हो सकती है।

आत्म-चित्रणमें दो ही प्रकारके व्यक्ति विशेष सफलता प्राप्त कर सकते हैं, या तो बच्चोंकी तरह भोले भाले आदमी जो अपनी सरल निरभिमानताके कारण सच्ची बातें लिख सकते हैं अथवा कोई फक्कड़ जिसे लोक-लज्जाका कोई भय नहीं।

लेखकशिरोमणि कविवर बनारसीदासजीने तीन-सौ वर्ष पहले आत्म-चरित लिखकर हिन्दीके वर्तमान और भावी लेखकोंको मानो न्योता दे दिया है। यद्यपि उन्होंने विनम्रतापूर्वक अपनेको कीट पतंगोंकी श्रेणीमें रक्खा है ("—हमसे कीट पतंगकी बात चलावे कौन") तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे आत्म-चरित लेखकोंमें शिरोमणि हैं।

दिल्ली
१०—८—४७

—बनारसीदास चतुर्वेदी

अर्ध कथानककी भाषा

[डॉ० हीरालाल जैन, एम ए , एल एल बी]

अर्ध-कथानकका जितना महत्त्व उसके साहित्यिक गुणों और ऐतिहासिक वृत्तान्तके कारण है उतना ही और संभवतः उससे भी अधिक उसकी भाषाके कारण है। अपभ्रंशकी समाप्ति और उससे पूर्वके हिन्दी साहित्यका भाषा और व्याकरणकी दृष्टिसे अभीतक पूर्णतः वर्गीकरण नहीं किया जा सका है और इसलिए किसी एक नवीन ग्रन्थके विषयमें यह कहना कठिन है कि हिन्दीकी मुख्य उपभाषाओंमेंसे उस ग्रन्थकी भाषा कौन-सी है।

बनारसीदासजीने अपने अर्ध-कथानककी भाषाको स्पष्ट रूपसे मध्य देशकी बोली कहा है और प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें मध्य देशकी चतुःसीमा इस प्रकार पाई जाती है—उत्तरमें हिमालय दक्षिणमें विन्ध्याचल, पूर्वमें प्रयाग और पश्चिममें विनशन अर्थात् पंजाबके सरहिन्द जिलेका वह प्रदेश जहाँ सरस्वती नदीका लोप हुआ है[1]। चीनी यात्री फाहियानने (स ४१०) मथाउल (मथुरा) से दक्षिणके प्रदेशको मध्यदेश कहा है[2] और अलबेरूनीने (स १०३०) कन्नौजके चारों ओरके प्रदेशको मध्यदेश माना है[3]। बनारसीदासका जीवन-क्षेत्र प्रायः आगरासे जौनपुर तक यू पी का प्रदेश रहा है। अतएव इसे ही उनके द्वारा सूचित मध्यदेश माना जा सकता है।

अर्ध-कथानकके व्याकरणकी रूपरेखा इस प्रकार है—

स्वर—इसमें देवनागरीके सभी स्वर पाये जाते हैं। जिनकी हिन्दीमें आवश्यकता ही नहीं पड़ती। 'ऋ' कहीं कहीं सुरक्षित पाया जाता है जैसे

---

१ मनुस्मृति २, २१। २ फाहियान (दे पु मा पृ १)। ३ अलबेरूनीका भारत, भा १, पृ १९८।

मुणा (१७), नौहत्व (२१४) और कहीं कहीं उसकी जगह अन्य सपरोक्ष पाया जाता है जैसे सिठि (१२९)।

अपभ्रंशमें 'श' के स्थानपर प्रायः सर्वत्र 'स' आदेश पाया जाता है, जैसे पास (पार्श्व), वंस (वंश), सुसियार (होशियार), कमीसुर (कमीश्वर), आवसिक (आवश्यक) (१४०) सुक (शुक) (१०७)। 'ष' अनेक जगह पाया जाता है, जैसे मुषा (१७), पुरुष, सिषि (१२९), हरषित (१५७), विषाद (१५८), शुष (४८), मेष (४८) आदि। किन्तु कहीं कहीं उसके स्थानपर भी 'स' का आदेश देखा जाता है जैसे वरस (वर्ष) (१८१), विसेस (विशेष) १७९।

संस्कृतके संयुक्त वर्णोंको स्वरभक्ति या वर्णलोपके द्वारा सरल बनानेकी प्रवृत्ति देखी जाती है जैसे—जनम (जन्म) पदारथ (पदार्थ) परथ (पार्थ), परिगह (परिग्रह), मिलिछ (म्लेच्छ)।

संज्ञाओंके कर्तावाचक और कर्मवाचक रूपके लिए, कोई विकृति या प्रत्यय नहीं पाया जाता जैसे—

स्वामी जानै तिणकी कथा (६), कही नगर रोहतगपुर (८) मूलदास मी कीनौं काज (२), सुगम गयो थो (२१), आयो दुराक उरवाको (२२) मनमक बात कियो तिह ठौर (१८) आदि।

पर कहीं सकर्मक क्रिया संस्कृतके भूतकालिक कृदन्त परसे बनी है वहीं कर्त्ता कारकमें ने भी पाया जाता है जैसे लखसेनकौं रावनें दिए परसी भारि (५५)।

करण कारकमें सौं या हं प्रत्यय पाया जाता है। जैसे—पुत्रकौं वरन होर बलि गए (१८) एक पुत्रसौं सब सिसु होइ (४१) सैना देना विधिसौं किसे (४०) निज मातासौं मन्त्र करि (१), दुइ मिलाइ वामसौं मरी (१८)। सम्प्रदान कारकमें कहीं सौं और कहीं कौं व कुं प्रत्यय पाया जाता है। जैसे—मूलदासकौं भजुन कृपान (१६) करे मदन पुत्रीनौं रीट (४१), तिस पुत्रकौं आइ मीच (९) लखसेनकौं रावनें दिए परसी भारि (५५), तब बरनाय स्वनाइ गयो (४६)।

अपादान कारकमें 'सुं' 'सौं' प्रत्यय पाया जाता है। जैसे, उनसु करे उदमकी दौर, तिस दिनसौं बनारसी नित सराहै मित्र (४८४)।

सम्बन्ध कारकमें बहुवचनमें 'के', स्त्रीलिंगमें 'की' और एकवचनमें 'का' 'को' प्रत्यय पाये जाते हैं। जैसे—बनारसीके, भिनदासके, बेटूके, इतिके, पासकी तीसिसैकी उदमकी रामकी अकबर काम, मुगलको, हिमाऊको बाबुको पत (४९५) आदि।

अधिकरण कारकके प्रत्यय 'मैं' और 'माहि' पाये जाते हैं। जैसे—मनमैं, नगरमैं पेहलयमैं जौनपुरमैं मंगमाहि, मनमाहि भीठीमाहि आदि।

सर्वनामोंमें, तिन, (४१) ताको (४१) तिनकी (६) तिनके (१२) तिस (२१) जिन (३) जाको (१२), मैं (१८४) हम (४४२), मेरे (७), सो (१ ४१) वहु (१७ ३१) य (१५), तू (४८१), हमहि (४१) आदि रूप दृष्टिगोचर होते हैं।

क्रियाके वर्तमानकालिक उत्तम पुरुषके रूप—

कहौं (१), करौं (५ ९ ११) मानौं (७)।

वर्तमान अन्य पुरुषके रूप—बनारसी फिरे मनमाहि (४८७), बहु वचन—दोऊ साखी करहिं इलाम (४८७)।

मध्यम पुरुषका रूप—तू जानहि (४८१)।

भूतकालिक अन्य पुरुषके रूप—कीनो, भयो, भए, (४८७), आयो बसायो, करी दिए, दीने, पहुचो, करचे, आदि (४८७)।

सहायक क्रिया सहित—बतानी है, पानी है, जानी है, आदि।

भविष्यत् कालके रूप—होइगी (१), माँगहिगा (४८१), पावहिगा (४८१)।

आज्ञार्थक क्रियाके रूप—उ या 'हु' लगाकर बनाये गये हैं। जैसे, कथा सुनु (१८) सोच न करु (४४) सुनहु।

पूर्वकालिक अव्यय सर्वत्र क्रियामें 'इ' लगाकर बनाये गये हैं—सुनि करि, मानि, जानि, बखानि, बोलि, निकसि पढ़ि, रोइ, गाइ, परिहर आदि।

अर्ध-कथानककी इन व्याकरणसंबंधी विशेषताओंको सम्मुख रखकर अब हम देखें कि उसकी भाषा ब्रजभाषा कही जाय, या अवधी या कुछ और।

ब्रजभाषाकी विशेषतायें ये हैं[1]—

१ संज्ञा तथा विशेषणोंमें 'ओ' या 'औ' अन्तवाले रूप, जैसे घोड़ो, छोटो, कारो पीरो, मोटो।

२ संज्ञाका विकृतरूप बहुवचन 'न' प्रत्ययके रूपान्तर लगाकर बनाना जैसे, रामन, घोड़न, हाथिन अस्वारन आदि।

३ परसर्गोंमें कर्म-सम्प्रदानमें 'कौ' करण-अपादानमें 'सों', 'तें', और संबंधमें 'कौ', 'को'।

४ सर्वनामोंमें उत्तम पुरुष मूलरूप एकवचन 'हौं' विकृतरूप 'मो' सम्प्रदान कारकके वैकल्पिक रूप 'मोहि' आदि संबंधके ओकारान्त 'मेरो', 'हमारो' आदि।

५ क्रियाके रूपोंमें 'है' लगाकर भविष्य निश्चयार्थ बनाना, जैसे चलिहै। तथा सहायक क्रियाके भूत निश्चयार्थके हो, हतो आदि रूप।

इन लक्षणोंको जब हम अर्ध-कथानकमें ढूंढते हैं तो विशेषणोंमें 'औ' अन्तवाले रूप कहीं कहीं दृष्टिगोचर हो जाते हैं—जैसे—

आयो मुगल उठ्ठासमे सुनि मूसनको काज।
मुहर छाप घर लादके कीनो सीनो साज ॥ १२ ॥

तथा कारक-रचनाकी विशेषतायें भी बहुत कुछ मिलती हैं।

किन्तु शेष लक्षण नहीं मिलते, इससे अर्ध-कथानककी भाषाको पूर्णतः ब्रजभाषा नहीं कह सकते।

अवधीके विशेष लक्षण निम्न प्रकार हैं—

१ संज्ञामें प्रायः तीन रूप ह्रस्व, दीर्घ तथा तृतीय जैसे घोड़, घोड़वा, घोड़उना।

२ विकृतरूप बहुवचनका चिह्न 'न' ब्रजके समान जैसे 'घरन' किन्तु कर्ममें 'क' संबंधमें 'केर' अधिकरणमें 'मा'।

---

१ देखिए, ब्रजभाषा व्याकरण डा. धीरेन्द्र वर्मा कृत अलाहाबाद १९३७ पृ १५-१९।

३ सर्वनामके सम्बन्ध कारकके रूप 'मोर, तोर', हमार' 'तुम्हार'।

४ सहायक क्रियाके रूप आहौं, आही, आहे, आहो, आहैं, आहीं, तथा बा' धातुके रूप बाटेउँ बाटी, और रह धातुके रूप रहेउँ, रहे, आदि।

५ क्रियार्थक संज्ञाओंके 'ब' अन्तक रूप जैसे देखब। भविष्यत्कालके बोधक अधिकांश रूप भी 'ब' लगाकर बनते हैं। जैसे—देखबू आदि।

इन लक्षणोंका तो अर्धकथानककी भाषामें प्रायः अभाव ही पाया जाता है। अतः उसको हम अवधी नहीं कह सकते।

यदि हम विशेष बोलियोंकी विशेषतायें इस ग्रंथकी भाषामें ढूंढें तो हमें उनका भी अभाव दृष्टिगोचर होता है। न यहाँ राजस्थानीकी मूर्द्धन्य ध्वनियोंका प्राधान्य है, 'न' के स्थानपर 'ण' भी नहीं है न बुन्देलीका 'ड' के स्थानपर 'र' और अन्य व्यंजन 'ह' का लोप पाया जाता है।

अर्धकथानकमें उर्दू-फारसीके शब्द काफी तादादमें आये हैं, और अनेक मुहावरे तो आधुनिक खड़ी बोलीके ही कहे जा सकते हैं। इसपरसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बनारसीदासजीने अर्धकथानककी भाषामें ब्रजभाषाकी भूमिका लेकर उसपर मुगल-कालमें बढ़ते हुए प्रभावकी खड़ी बोलीकी पुट दी है, और इसे ही उन्होंने 'मध्यदेशकी बोली' कहा है जिससे ज्ञात होता है कि यह मिश्रित भाषा उस समय मध्यदेशमें काफी प्रचलित हो चुकी थी। इस प्रकार अर्धकथानक भाषाकी दृष्टिसे खड़ी बोलीके आदिम कालका एक अच्छा उदाहरण है। — १ जून १९४१

(द्वितीय संस्करणकी विशेषता)

बड़े हर्षकी बात है कि अर्धकथानकके प्रथम संस्करणका साहित्यिक संसारमें खूब सत्कार हुआ। उसकी प्रतियाँ शीघ्र ही दुर्लभ हो गईं और लोग पुनः प्रकाशनकी माँग करने लगे। इसके फलस्वरूप अब विद्वान् सम्पादकने न केवल इस संस्करणद्वारा इस ग्रंथकी माँगको ही पूरा किया है किन्तु इस महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथकी जो कुछ उपलब्ध सामग्रीका प्रथम संस्करणमें उपयोग नहीं किया जा सका था उसका भी पूर्ण परिशीलन कर ग्रन्थको और भी परिष्कृत

और परिपूर्ण बना दिया है। इसके लिए प्रेमीजीका पुनः अभिनन्दन करने योग्य है।

अर्ध-कथानकके प्रथम संस्करण परसे मैंने उस ग्रन्थकी भाषाकी जो रूपरेखा प्रस्तुत की थी वह इस संस्करणके लिए भी घटित होती है। केवल एक दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। वहाँ जो मैंने दोहा ११५ में 'परिणम' शब्दका उदाहरण देकर 'ण' के निर्विकार प्रयोगके संबंधमें यह कहा था कि 'यह विचारणीय है कि यह कहाँ तक मूलका पाठ है और कहाँ तक लिपिकारका विकार' उस शंकाका इस संस्करणद्वारा निराकरण हो गया। नवीन पाठके अनुसार उस दोहेमें 'परिणम' रूप तो केवल 'इ' और 'ख' इन दो प्रतियोंमें ही पाया गया है। शेष 'अ' 'ड' और 'ब' नामक आदर्श प्रतियोंमें उसके स्थानपर 'परिनम' पाठ पाया गया है और उसे ही अब विद्वान् सम्पादकने अपने मूल पाठमें ग्रहण किया है। यही रूप दोहा १५ में भी आया है और वहाँ भी एक प्रति 'अ' के 'परिणम' रूपका पाठान्तर अंकित किया गया है। यद्यपि अब भी श्रीमाल, पार्श्व, आश्रय, शिव जैसे कुछ शब्दोंमें 'श' का प्रयोग देखा जाता है तथापि उन शब्दोंके सिरीमाल, पास आदि जो रूपान्तर भी पाये जाते हैं उनसे प्रतीत होता है कि उक्त शब्दोंमें 'श' की स्थिति ग्रन्थकी भाषाकी आधारभूत बोलीका अंग नहीं है। वह पश्चात्कालीन संस्कृतीकरणके प्रभावकी ही द्योतक है। यही बात इस भाषामें 'ष' की स्थितिके विषयमें भी कही जा सकती है। मुषा, दोष, पुरुष, रिषि, भूषन, सिष्य, आषाढ़, पुष्प, भाष, मृषा इत्यादि मानुष भाषा जैसे शब्दोंमें जो 'ष' दिखाई देता है वह संस्कृतका ही प्रभाव है, बोलीका मूल अंग नहीं। यथार्थतः ग्रन्थकी भाषाकी आधारभूत बोलीमें केवल दन्त्य सका प्रयोग होता था ऐसा अनुमान करना अनुचित न होगा। यह प्रवृत्ति उक्त बोलीको शौरसेनी प्राकृतकी परम्परासे विकसित हुई प्रमाणित करती है।

प्रथम संस्करणमें 'तौ' के साथ 'दै' प्रत्ययके प्रयोगका भी जो निर्देश पूर्व संस्करणमें किया गया था वहाँ अब उस अपवादका निराकरण होता दिखाई देता है, क्योंकि दोहा ५२ और १५ में क्रमशः 'मावर्द्' और 'हमर्द्' के स्थानपर अब उपलब्ध आदर्श प्रतियोंके आधारसे 'मावौं' और 'हमसौं' पाठ स्वीकार किये गये हैं।

फ़ारसीके जिन शब्दोंका इस रचनामें प्रयोग हुआ है उनमेंसे कुछ मध्य-कालकी बोलीमें रूपान्तर इस प्रकार आये हैं :—साहब, परगने, सरहद फ़ारकती, ख़जाना हुकुम फ़ुरमान मुनसिफ़, पेसकसी, गरीब आसिकबाज सौदा, मुलक सरिमति, जबरि, तहकीक, बकसीस, चाबुक, रफीक नसासे, हजार, देसपरदेसी, दुगचा, करमति बेदया बजाज, फ़रजन्द, यार, तहकीक, मसक्कति, जरीद मसद, चाचा हुसियार मुसाहब, रोजनामें, खिताब, नफ़र, गैरसाल, नजरि गुजारे पेसखान, हाकिम, दीवान मालमता, परवा, स्याबास माफ़, गुनाह, उमराव, मुकाम, साहिबजादे सुलतान पैजार खोसरा आदि। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन शब्दोंका प्रयोग प्रायः वहीं विशेषरूपसे किया गया है जहाँ मुगल राज-शासनसंबंधी घटनाओंका प्रसंग आया है। इससे स्पष्ट होता है कि इन विदेशी शब्दोंका प्रयोग पहले मुगल अफ़सरोंके मुखसे हुआ और यह धीरे धीरे जन भाषामें उनकी अपनी उच्चारण-विधिके अनुसार उतरने लगा।

कविने रचनाके प्रारंभमें ही कहा है कि उनके पितामह मूलदास 'मध्यदेस'में स्थित रोहतग्गपुरके निवासी थे और वहीं उन्होंने हिंदुगी और पारसी पढ़ी थी तथा वे मुगलके मोदी होकर मालवा आये थे। इस प्रकार यह मध्यदेशकी भाषा उस समय हिन्दुगी या हिन्दी कहलाने लगी थी यह ध्यान देने योग्य है। स्वयं अपने भाषाज्ञानके संबंधमें बनारसीदासजीने कहा है —

पढ़ै संस्कृत प्राकृत सुद्ध।
विविध देसभाषा-प्रतिबुद्ध ॥ (६४८)

इससे प्रतीत होता है कि उस समय भी संस्कृत और प्राकृत प्राचीन भाषाओंके अतिरिक्त प्रचलित नाना देश-भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करना सुशिक्षाका आवश्यक अंग समझा जाता था।

प्राकृत-जैन-विद्यापीठ
मुजफ़्फ़रपुर, बिहार,
ता० ७-४-५७

हीरालाल जैन

भूमिका

अर्ध-कथानक

कविवर बनारसीदासजीने अपनी इस निजकथा या आत्म-कथामें अपने जीवनके ५५ वर्षोंका घटनाबहुल इतिहास लिखा है। मनुष्यकी उत्कृष्ट आयुमर्यादा ११ वर्षकी मानकर उसकी आधी कथा इसमें दी है, इसलिए उन्होंने इसका सार्थक नाम अर्ध-कथानक रखा है और अगहन सुदी पंचमी, सोमवार, संवत् १६९८ को यह समाप्त की गई है। इसके आगेकी कथा वे नहीं लिख सके। क्योंकि कुछ ही समय बाद १७ के अन्तमें उनका शरीरान्त हो गया।

हिन्दी साहित्यमें यह अनोखी रचना है। इस देशकी अन्य भाषाओंमें भी इतनी पुरानी कोई आत्म-कथा नहीं है। अभी तक तो सर्वसाधारणका यही खयाल है कि यह चीज हमारे यहाँ विदेशोंसे आई है और वहींकी आत्म-कथाओंके अनुकरणपर यहाँ आत्मकथाएँ लिखनेका प्रारम्भ हुआ है। परन्तु आजसे तीनसौ वर्ष पहले यहाँके एक हिन्दी कविने भी आत्म-कथा लिखी थी[1] इस बातपर इसे देखे बिना कोई सहसा विश्वास नहीं कर सकता। यद्यपि इस समय जिस ढंगकी आत्म-कथाएँ लिखी जाती हैं, उनमें और अर्ध-कथानकमें बहुत अन्तर है, फिर भी इसमें आत्म-कथाओंके प्रायः सभी गुण मौजूद हैं और भारतीय साहित्यमें यह गर्व करनेकी चीज है। इसमें कविने अपने गुणोंके साथ साथ दोषोंको भी बड़ी स्पष्टतासे प्रकट किया है और सर्वत्र ही सचाईसे काम लिया है।

अर्ध-कथानक गद्यमें नहीं, पद्यमें लिखा गया है और उसकी भाषाको कविने मध्य देशकी बोली कहा है—

१—कहते हैं कि बादशाह बाबरने फारसीमें जो आत्मचरित (बाबरनामा) लिखा है, वह एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसमें बाबरका विशद और मार्मिक निरीक्षण, उसकी सिपाही और विनोदी वृत्ति जीवनके विविध रोमहर्षक प्रसंग, उसकी रसिकता मनुष्यपरीक्षा, भारतके व्यापक मनोज्ञ वर्णन है।—देखिए, अक्टूबर १९४७ के नवभारत (मराठी) में मा दत्तो वामन पोतदारका 'अर्ध-कथानक' नामक लेख।

मध्यदेसकी बोली बोलि,
गरभित बात कहौं हिय लोलि ।

'बोली' का मतलब उस समयकी बोलचालकी भाषा है साहित्यिक भाषा नहीं। बनारसीदास उच्च श्रेणीके कवि थे, उनकी अन्य रचनाएँ प्रायः साहित्यिक भाषामें ही हैं परन्तु उन्होंने इस आत्म-कथाको बिना आडम्बरकी सीधी सादी भाषामें लिखा है जिसे सर्वसाधारण सुगमतासे समझ सकें। यद्यपि इस रचनामें भी उनकी स्वाभाविक कवित्वशक्तिका परिचय मिलता है परन्तु वह अनायास ही प्रकट हो गई है उसके लिए प्रयत्न नहीं किया गया। इस रचनासे हमें इस बातका आभास मिलता है कि उस समय बोलचालकी भाषा किस ढंगकी थी और जिसे आजकल खड़ी बोली कहा जाता है उसका प्रारंभिक रूप क्या था।

डॉ॰ माताप्रसाद गुप्तने लिखा है कि "यद्यपि मध्य देशकी सीमाएँ बदलती रही हैं पर प्रायः सदैव ही खड़ी बोली और ब्रजभाषी प्रान्तोंको मध्यदेशके अन्तर्गत माना जाता रहा है और प्रकट है कि अर्ध-कथाकी भाषामें ब्रजभाषाके साथ खड़ी बोलीका किंचित् सम्मिश्रण है, इसलिए लेखकका भाषाविषयक कथन सर्वथा संगत जान पड़ता है। यहीं तक नहीं कदाचित् इसमें हमें उस जनभाषाका प्रयोग मिलता है जो उस समय आगरेमें व्यवहृत होती थी। आगरा दिल्लीके साथ ही उस समय मुगल शासकोंकी राजधानी थी, इसलिए उस स्थानकी बोलीमें इस प्रकारका संमिश्रण स्वाभाविक था। उस समयकी साहित्यकी भाषाओंके नमूने भरे पड़े हैं किन्तु सामान्य व्यवहारकी भाषाओंके नमूने कम मिलते। केवल कविताकी दृष्टिसे भी अर्ध-कथाका स्थान ऊँचा है। साहित्यिक परम्पराओंसे मुक्त, प्रयासरहित शैलीमें घटनाओंके सजीव और यथातथ्य वर्णनका यहाँ तक सम्बन्ध है इतनी सुन्दर रचना हमारे प्राचीन हिन्दी साहित्यमें कम मिलेगी'[1]।"

पाठक इसे थोड़े ही परिश्रमसे पढ़कर समझ जायँगे, इसलिए इसका अर्थ अलगसे नहीं दिया गया परन्तु शब्दकोश स्थान-परिचय, व्यक्तिपरिचय आदि परिशिष्टोंमें देकर इसे हर तरहसे सुगम कर दिया गया है इससे पढ़नेमें आनन्द तो मिलेगा ही, साथ ही सोचने समझनेकी भी बहुत-सी सामग्री मिलेगी।

१—प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् द्वारा प्रकाशित 'अर्द्ध-कथा' की भूमिका पृ॰ १४-१५।

पूर्व पुरुष

बनारसीदास एक सम्पन्न और सम्मान्य कुलमें उत्पन्न हुए थे। उनके पितामह मूलदास हिन्दुवी और फारसीके ज्ञाता थे और सं० १६ ८ में नरवर (ग्वालियर) के किसी मुगल उमरावके मोदी बनकर गये थे। उनके मातामह मदनसिंह चिनालिया जौनपुरके नामी जौहरी थे और पिता खरगसेनने कुछ समय तक बंगालके सुलतान सुलेमान पठानके राज्यमें चार परगनोंकी पोतदारी की थी। उसके बाद वे जवाहरातका व्यापार करने लगे और इलाहाबादमें कुछ समय तक शाहजादा दानियाल (दानिशाह) की सरकारमें जवाहरातका लेन-देन करते रहे थे। इसी तरह उनके रिश्तेदार और मित्र भी धनी-मानी थे।

उन्होंने अपनी जाति श्रीमाल और गोत्र बिहोलिया लिखा है और लोगोंसे सुनसुनाकर बतलाया है कि रोहतकके निकट बीहोली गाँवमें राजवंशी राजपूत रहते थे। वे गुरुके उपदेशसे अपमुक्त कर्म छोड़कर जैनी हो गये और (नमोकार) मन्त्रकी माला पहिनकर उन्होंने श्रीमाल कुल और बीहोलिया गोत्र पाया।

१—अकबरके तीन बेटों—सलीम, मुराद और दानियाल—में यह तीसरा था। इसे सात हजारी मनसब दिया गया था। रहीम खानखानाका यह दामाद था। सन् १५९९ के लगभग यह इलाहाबादमें था। बीजापुरके सुलतानकी लड़कीके साथ भी १६०१ में इसकी शादी हुई थी।

२—इस गाँवके बारेमें मैंने रोहतकके वकील बाबू उग्रसेनजीसे पूछताछ की तो उन्होंने लिखा कि "बीहोली गाँव अब करनाल जिलेमें पानीपतसे कुछ दूर यमुनाके किनारे है और रोहतकसे लगभग १५ कोसके फासिलेपर होगा।" बाबू जयभगवानजी वकीलने बड़े परिश्रमसे खोज-बीन की और लिखा कि "बीहोली पानीपत तहसीलका एक गाँव है जो पानीपतसे उत्तरकी ओर १ मीलपर है। यह ब्राह्मणोंकी बस्ती है। इस गाँवका पुराना इतिहास जाननेके लिए सन् १८८ के बन्दोबस्तके समय तैयार की गई कैफियत देखी गयी। उससे मालूम हुआ कि लगभग १ पीढ़ी पहले—सन् १५४ के लगभग दो ब्राह्मणोंने उस समयके हाकिमसे इजाजत लेकर इस गाँवको फिरसे आबाद किया था। उस समय यह उजाड़

अर्धकथानकसे मालूम होता है कि उस समय बमपुरसे लेकर आगरा, फतहपुर, अलीगढ़ मेरठ, दिल्ली, इलाहाबाद खैराबाद (अवध), पटना और बंगाल तक श्रीमाल, ओसवाल अग्रवाल व्यापारी फैले हुए थे और उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। नवाबों सूबेदारों और हाकिमोंसे उनका विशेष सम्बन्ध रहता था। ऐसा जान पड़ता है कि वे अधिकांशमें शिक्षित भी होते थे और नवाबों हाकिमोंकी भाषा भी जानते थे। दादा मूलदास हिन्दुगी फारसी पढ़े थे, खरगसेन पोतदारीका काम कर सकते थे बनारसीदास विविधदेशभाषा-प्रतिबुद्ध थे।

सामाजिक स्थिति

डा० ताराचन्दने अर्ध-कथानककी आलोचना (विश्ववाणी, फरवरी १९४४) करते हुए लिखा है "बनारसीदास अकबर, जहाँगीर, और शाहजहाँके समकालीन थे। बादशाहोंके लिए उनके दिलमें भक्ति थी। अकबरकी मृत्युका समाचार सुनकर वे बेहोश होकर सीढ़ीपरसे गिर पड़े और लहूलुहान हो गये। जहाँगीर और शाहजहाँका आदरके साथ नाम लिया है। मुगल सूबेदारोंकी ताकत लोगोंमें पहलेसे ज़ाहिर होती थी कि उनका बरताव कैसा है। अगर कोई हाकिम कड़ा बहादुर होता था तो मालदार साहूकारोंमें खलबली मच जाती थी। लेकिन ऐसे हाकिम कम होते थे। हाकिमों और साहूकारोंमें अच्छे सम्बन्ध होते थे। बनारसीदास जैनी मिथ्यात्वियोंको नाममाला सुनबोध वगैरह ग्रन्थ पढ़ाते थे।"

पड़ा हुआ देखा था। ऐसी दशामें वर्तमान बीहोली गाँव अर्ध-कथानकमें उल्लिखित हुआ बीहोली नहीं हो सकता जो रोहतकके निकट था। सम्भव है, उनके समयका बीहोली गाँव अब रहा ही न हो या अब उसका और नाम हो।"

१—डा० पोतदार लिखते हैं "तत्कालीन शिक्षा-प्रसारके विषयमें इससे यह निश्चित अनुमान किया जा सकता है कि सब नहीं तो कमसे कम व्यापारी वर्गके बहुत-से लोग हिन्दी और फारसी उस समय पढ़ते थे और लिखने पढ़नेमें निष्णात होते थे।"

२—इसके सिवा नवाब कुलीचखाँने जौहरियोंपर बड़ा जुल्म किया था। यह हनूमान (तूरान देश) का रहनेवाला यानी तुरानी जालिम शुरू था।

"शासनके बारेमें पता चलता है कि अमन अमान काफी था। बनारसीदासने पंजाबमें रोहतकसे लेकर बिहारमें पटना तक कई सफर किये। एक दफा रास्ता भूलकर चोरोंके गाँवमें खतरेमें पड़े पर ब्राह्मण बनकर छूट गये। दूसरी दफा इनके साथियोंका एक जमींदार गाँववालोंसे झगड़ा हो गया। उनकी शिकायत पर दीवानी और फौजी अफसरोंने तहकीकात की और इसका भी नतीजा यह हुआ कि मुकदमा आसानीसे खारिज हुआ और इन्हें कोई तकलीफ नहीं उठानी पड़ी। मालूम होता है कि उस समय व्यापारी कीमती सामान लिए हुए इधरसे उधर तक आते जाते थे। कुछी परसे लूट पड़ते थे।

"समाज सुखदायक मालूम होती है। भूखों और नंगे फकीरोंका कहीं जिक्र नहीं। लोग एक दूसरेकी मदद करते थे। बनारसीदासको आगरेके हलवाईने छः महीने तक मुफ्त (उधार) कचौरियाँ खिलाईं। पचपन सालोंमें एक दफा अकाल पड़ा। जहाँगीरके समयमें ताऊन फैला। इनके अलावा कोई बड़ी मुसीबत नहीं आई। राजनीतिकी ऐसी घटनाओं जैसी सलीमकी बगावतका जरूर यह असर होता था कि जौहरी लोग शहरसे इधर उधर भाग जाते थे। लोग रुपये दबाकर भागभोंको जाते। बनारसीदासने कहीं किसी तरहकी रोक-थामका जिक्र नहीं किया।

"स्त्रियोंकी बहुत कदर नहीं थी। पुरुष-स्त्रीका प्रेम और बराबरीका नाता नहीं था। बनारसीदासकी स्त्रीका देहान्त होता है, एक ही नाई सालेकी लड़कीके साथ दूसरी जगहकी सगाई करता है। वे अपनी स्त्रीके होते हुए इधर उधर आशिकी करते फिरते हैं। लेकिन पत्नी अपना धर्म समझती है कि पतिकी सेवा करे और गाढ़े समयमें अपना सारा धन उसको सौंप दे।

"लोगोंमें धर्मकी बहुत चर्चा थी। जीवनका यही ध्येय था कि मनमें शान्ति, समता और उजागर हो। इसीके साथ अन्धविश्वास और जादू टोना भी खूब चलता था।

अर्ध-कथानकके पढ़नेसे हिन्दुस्तानके मध्यकालके इतिहासके समझनेमें मदद मिलती है और समाज और राजकी अवस्थाका पूरा पता चल सकता है।"

वहम और अन्धविश्वास

वहमों और अन्धविश्वासोंकी उस समय भी कमी नहीं थी, सर्वसाधारणके समान जैन समाज भी उससे मुक्त नहीं था और न दूसरोंसे किसी तरह कम ही था। रोहतककी कोई सतीदेवी उन दिनों बहुत प्रसिद्ध थी। दूर-दूरके लोग मानताके लिए जाते थे। बनारसीके पिता खरगसेन अपनी पत्नीसहित दो बार उसकी यात्राके लिए गये और एक बार तो रास्तेमें लुट भी गये, तो भी उनकी माताको सोलह आने विश्वास रहा कि बनारसीदासका जन्म उक्त सतीके ही प्रसादसे हुआ है। उधर बनारसमें पार्श्वनाथके यक्षने पुजारीको प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा था कि इस बालकका नाम पार्श्वजन्मस्थान (बनारसी) के नामपर रख देनेसे फिर इसके लिए कोई चिन्ता न रहेगी और यह चिरजीवी होगा और तदनुसार माता-पिताने इसका नाम बनारसीदास रख दिया।

अपनी पूर्वावस्थामें स्वयं बनारसीदास भी इस तरहके वहमोंके शिकार हुए थे। जैन होते हुए भी एक जोगीके कहनेसे एक साल तक सदाशिवके शंखकी पूजा करते रहे और संन्यासीके दिये हुए मन्त्रका जाप उन्होंने इस आशासे लगातार एक साल तक पाखानेमें बैठकर किया कि जाप पूरा होनेपर हररोज दरवाजेपर एक दीनार पड़ा हुआ मिला करेगा! आगरेसे अपने दो मित्रोंके साथ पूजा करनेके लिए वे कोल (अलीगढ़) गये और प्रतिमाके आगे खड़े होकर बोले, "हे नाथ हमको लक्ष्मी दो, यदि लक्ष्मी होगी तो हम फिर तुम्हारी यात्रा करेंगे।" अर्थात् जिनदेव भी प्रसन्न होकर लक्ष्मी देते थे!

विद्या-शिक्षा और प्रतिभा

बनारसीदास जब आठ बरसके हुए तब चटशालामें जाने लगे और पाँडे गुरुसे विद्या सीखने लगे। इस विद्यामें अक्षरज्ञान और लेखा (गणित) मुख्य जान पड़ता है। एक वर्षमें ही व्युत्पन्न हो गये। उनके पिता खरगसेन भी इसी उमरमें चटशालामें पढ़ने गये। उस समय शिक्षाकी क्या व्यवस्था थी इसका तो ठीक पता नहीं, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक नगरमें चटशाला या पाठशाला रहा करती थी और उसमें पाँडे गुरु लोकोपयोगी लिखने पढ़ने और लेखे-जोखेकी शिक्षा दिया करते थे। व्यापारियोंके लड़के इस शिक्षासे इतने व्युत्पन्न हो जाते थे कि अपना कारबार भली भाँति सँभाल लेते थे।

इन्होंने योगवासिष्ठ पढ़ा था, कहा नहीं जा सकता कि इसका उनके चरित्रपर क्या प्रभाव पड़ा होगा। नवरसरचनामें तो जरूर ही उसने सहायता दी होगी।

जनेऊकी कथा

एक बार बनारसीदास अपने मित्र और उसके श्वसुरके साथ पटना जा रहे थे कि एक चोरोंके गाँवमें जा पहुँचे। चोर ब्राह्मणोंको नहीं सताते थे और जनेऊ ब्राह्मणत्वका चिह्न है। इस लिए इन तीनोंने उस समय सूतसे जनेऊ बँटकर पहिन लिये, मस्तकपर तिलक लगा लिया और श्लोक पढ़कर उन्हें आशीर्वाद दिया। फल यह हुआ कि चोरोंके चौधरीने इन्हें ब्राह्मण समझकर आरामसे अपनी चौपालपर ठहराया और दूसरे दिन आदरपूर्वक विदा कर दिया। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि उस समय जैन श्रावक जनेऊ नहीं पहिनते थे और ब्राह्मण चोरोंके लिए भी पूज्य थे।

साहूकारोंका वैभव

उस समय बहुत बड़े बड़े साहूकार और मालामाल धनी थे। अर्धकथानकमें अनेक व्यापारियोंकी चर्चा आई है। उनमेंसे आगरेके नेमासाहुके पुत्र सबलसिंह मोठियाका वर्णन विशेषरूपसे दिलचस्प है। उनके यहाँ बनारसीदासका साझेका हिसाब चलता था। साहुका पत्र जौनपुर पहुँचा कि तुम्हारे बिना हिसाब नहीं हो सकता, तुम आगरे आकर उसे साफ कर जाओ। इसपर वे रास्तेकी अनेक मुसीबतें झेलकर आगरे आये और हिसाबके लिए साहुजीके घर जाने आने लगे पर वहाँ लेखा-कागज कौन पूछता था? देखा कि साहुजी ऐश मौजमें मस्त हैं, कंचनियोंकी पंक्ति गा बजा रही है, मृदंग बज रहे हैं, शाहजादोंकी तरह मजलिस जमी हुई है, निरन्तर दान दिया जा रहा है, कवि और कलावन्त कवित्त पढ़ रहे हैं। उन ठाठोंका वर्णन कौन कर सकता है? देखकर सब चकित हो जाते थे। बनारसीदास सोचते थे—हे भगवन्, यह लेखा किसके पाले आ पड़ा है। ऐसा करते करते हाजिरी देते देते महीनों बीत गये। जब भी लेखेकी बात की जाती, साहुजी कहते कल सबेरे हो जायगा। इनकी घड़ी एक

१—अ० क० ४१७ ४२१।

महीनेकी रात छह महीनेकी और दिन छिनोका होगा, तो हम ही जाने हैं। वहाँ किसकी चीज किसममम है वहाँ सूर्यका उदय-अस्त क्यों होता है।

इस तरह बहुत दिन बीत जानेपर जब लक्ष्मीदासके कहनेका भेदनशाह एक दिन रास्तेमें मिल गये, तब इन्होंने अपना सब दुख उनको सुनाया और उन्होंने उसी दिन साहुके यहाँ जाकर सब कागज मँगाकर हिसाब साफ कर दिया और फारखती लिखा दी। बनारसीदासजीने जैमपथकी आगरा नगरके इस उत्तम एक विश्वासी साहूकारका यह वर्णन आँखों देखा ही नहीं, स्वयं अनुभव किया हुआ लिखा है। ऐसे ही एक बड़े भारी धनी हीरानन्द मुकीम थे जो जहाँगीरके कृपापात्र थे, जिन्होंने सं० १६६१ में प्रयागसे सम्मेदशिखरके लिए बड़ा भारी संघ निकाला था और १६६७ में आगरेमें बादशाहको अपने घर बुलाकर जवाहरोंका नजराना दिया था।

नन्नाराम नामके एक धनी बंगालके पठान सुलतानके दीवान थे जिनके हाथके नीचे पाँच सौ श्रीमाल जैन पोतदारीका या खजानेकी रखवालीका काम करते थे। इन्होंने भी सम्मेदशिखरकी यात्राके लिए संघ निकाला था।

शासनमें धार्मिक पीड़न नहीं

अर्धकथानकमें हुमायूँसे लेकर शाहजहाँ तक मुगलों और कई पठान राजाओंकी चर्चा आई है, परन्तु उससे यह नहीं मालूम होता कि केवल धर्मके कारण दूसरे धर्मकी प्रजाको सताया जाता हो। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है जहाँगीरने हीरानन्द मुकीमको और पठान सुलतानने नन्नारामको यात्रासंघ निकालनेमें सहायता दी थी और इन सबके समयमें सैकड़ों जैन मन्दिरोंकी प्रतिष्ठाएँ हुई थीं जो उस समयके शिलालेखों और प्रतिमालेखोंसे स्पष्ट है। बनारसीदासने नाटक समयसारमें लिखा है कि शाहजहाँके समयमें इस ग्रन्थकी चैनसे रचना की, कोई ईति भीति नहीं व्यापी और यह उनका उपकार है। इस तरह उस समयके और भी अनेक कवियोंने इन मुसलमान बादशाहोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट किये हैं। किसी किसी नवाब और अधिकारीके द्वारा सताया जाना अवश्य होता था परन्तु

१— ताके राज सुचैन सौं कीन्हो आगम सार।
ईति भीति व्यापी नहीं यह उनको उपकार॥

यह केवल धनके लिए होता था जैसे कि नवाब कुलीचखाँने और आगानूरने जौनपुरके जौहरियोंपर किया था और नरवरमें खरगसेनके पिताका घर-बार जप्त कर लिया था। पर ऐसी घटनाएँ तो राज्योंमें अक्सर होती रहती हैं। बादशाह अकबरने श्वेताम्बराचार्य हीरविजयका सत्कार किया था और उनके शिष्य भानुचन्द्रको अपना 'सूर्यसहस्रनामाध्यापक' बनाया था, अर्थात् उस समयके शासक केवल भिन्नधर्मी होनेके कारण प्रजापर अत्याचार नहीं करते थे और हिन्दुओंको बड़े बड़े ओहदे भी देते थे।

अकबरकी मृत्युकी खबर सुनकर बनारसीदासको मूर्छा आ गई थी, यह उनके शासनकी लोकप्रियताका बड़ा भारी प्रमाण है।

गुण और दोष

अपनी आत्मकथाके ६४० से ६५१ तकके १२ पद्योंमें बनारसीदासने अपने वर्तमान गुणों और दोषोंका एक तटस्थ व्यक्तिकी तरह बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है और यह उनके सच्चे अध्यात्मी होनेका प्रमाण है। वे जैसे हैं वैसे ही अपनेको प्रकट करना चाहते हैं कुछ भी छुपानेका प्रयत्न नहीं करते। यदि उन्हें ख्याति लाभ पूजाकी चाह होती, तो वे बहुत सहजमें पुज जाते और उस समयकी हजारों, लाखों, भेड़ोंको अपने बाड़ेमें घर लेते। न उन्होंने स्वयं अपनी महत्ताके गीत गाये और न अपने गुणी मित्रोंसे गवानेका प्रयत्न किया। स्वामी जी बननेका भी कोई ढोंग नहीं किया। आगरेमें वे एक साधारण गृहस्थकी तरह अपनी पत्नीके साथ अन्त तक आनन्दसे रहे— निवसत पुर आगरे सुखसों रहै सदैव।'

गुणोंके वर्णनमें भी उन्होंने किसी तरहकी अतिशयोक्ति नहीं की है—भाषा कविता और अध्यात्ममें उनकी जोड़का और दूसरा नहीं, क्षमावान् और सन्तोषी। कविता पढ़नेकी कलामें उत्तम, विविध देशभाषाओंके (गुजराती पंजाबी ब्रज, बिहारी) में प्रवीण शब्द और अर्थका मर्म समझनेवाले, दुनियाकी निन्दा

१—जौनपुरके सूबेदार नवाब कुलीचखाँके प्रजापीड़नकी शिकायत जब बादशाहके पास पहुँची, तो उसे वापस बुला लिया गया और यदि वह रास्तेमें न मर जाता तो उसे कड़ा दण्ड मिलता।

न करनेवाले मिष्टभाषी, सत्पर स्नेह रखनेवाले, जैन धर्मपर दृढ़ विश्वास रखनेवाले सहनशील, कुवचन न कहनेवाले, सुस्थिर चित्त शास्त्रोंके नहीं, सबको हितकारी उपदेश देनेवाले शुद्ध हृदय, जरा भी कुटता नहीं पराई नीके लागै, और कोई कुव्यसन नहीं और हृदयमें शुद्ध सम्यक्त्वकी टेक रखनेवाले।

दोष बतलाते हुए लिखा है—क्रोध मान और माया ये तीन कषायें तो कम रेखाके समान हैं परन्तु लक्ष्मीका मोह (लोभ) अधिक है। घरसे छूटा नहीं होना चाहते। जप तप संयमकी रीति नहीं, दान और पूजा-पाठमें कोई रुचि नहीं थोड़ेसे लाभमें बहुत हर्ष और थोड़ी-सी हानिमें बहुत विषाद। मुँहसे भली बात निकालते सकुचित नहीं होते, हर्ष बनाकर मौजोंकी बात सीखते हैं जो नहीं कहने योग्य है, उसकी कथा करते हैं एकान्त पाकर नाचने लगते हैं, नहीं देखी और नहीं सुनी हुई कथायें गढ़कर सभामें कहते हैं, हास्यरसको पाकर मगन हो जाते हैं और सच्ची बातें कहे बिना भी नहीं मानता, अकस्मात् ही व्याकुल हो जाते हैं।

ऊपर जो दोष और गुण कहे हैं उनमेंसे कभी कोई और कभी कोई, जिसका उदय होता है वह प्रकट हो जाता है। और उन गुण-दोषोंकी जो अपरिमित दशा दशायें हैं उनको तो भगवान् ही जानते हैं।

उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्य

बनारसीदासने इन दोष-गुणोंके कथनको लेकर तीन प्रकारके मनुष्य बतलाये हैं—

१ उत्तम—जो दूसरोंके दोष छुपाकर उनके गुणोंको विशेष रूपसे कहते हैं और अपने गुणोंको छोड़कर दोष ही बतलाते हैं।

२ मध्यम—जो परमावके दोष-गुण दोनों कहते हैं और अपने गुण-दोष भी कहलाते हैं।

३ अधम—जो सदा पराये दोष कहते हैं उनके गुणोंको छुपा जाते हैं परन्तु अपने दोषोंको ओट करके गुणोंको ही कहते हैं।

बातें औरोंके साथ करते थे। उन्होंने समयसार-नाटककी पं० राजमल्लकृत बालबोध-टीका लिखकर दी और कहा कि—इसे पढ़िए, इससे तत्त्व क्या है, सो समझमें आ जायगा। तदनुसार पढ़ने लगे और उसके अर्थ प्रतिदिन विचार करने लगे। पर उससे अध्यात्मकी असली गाँठ नहीं खुली और वे बाह्य क्रियाओंको 'हेय' समझने लगे। 'करनी' या क्रिया—आचार—में तो कोई रस रहा नहीं और आत्मस्वाद या आत्मानुभव हुआ नहीं इस तरह वे न धरतीके रहे और न आसमानके[1]। उन्होंने जप-तप सामायिक प्रतिक्रमण आदि छोड़ दिये और हरी-त्याग आदिकी जो प्रतिज्ञाएँ की थीं वे भी तोड़ दीं। बिना आचारके बुद्धि बिगड़ गई। देवका चढ़ाया हुआ नैवेद्य तक खाने लगे। उन्हें अपने तीन साथियों—चन्द्रभान उदयकरन और थानमलके साथ ऊटपटांग बकनेमें, एक दूसरेकी शिरकी पगड़ी छीनने और धींगामस्ती करनेमें आनन्द आने लगा। चारों जने घर सेज खेलते थे और मि[थ्या] अध्यात्मकी बातें करते थे। चारों नगे हो जाते थे और कोठरीमें घूमते फिरते थे—हम मुनिराज हो गये हैं हमारे पास कोई परिग्रह नहीं रहा है ऐसा समझाते थे, पर किसीकी बात नहीं सुनी जाती थी। तब श्रावक और कई (सभी लोग) बनारसीदासको खोसरामती कहने लगे[3]। चूँकि वे पंडितजनोंके विश्वास थे इसलिए उन्हींकी निन्दा अधिक होती थी, दूसरोंकी नहीं। कुछ समयमें यह धूमधाम तो मिट गई पर कुछ और ही अवस्था हो गई। जिन प्रतिमाकी मनमें निन्दा करने लगे और मुँहसे वह कहने लगे जो नहीं कहना चाहिए। गुरुके सम्मुख जाकर व्रत ले लेते थे और फिर जाकर तोड़ देते थे। रात-दिनका विचार न करके पशुकी तरह खाते थे और एकान्त मिथ्यात्वमें मग्न रहते थे[4]।

१—करनीको रस मिटि गयौ भयौ न आतमस्वाद।
भई बनारसिकी दसा, जथा ऊँटको पाद॥ ५९२

२—अर्धक ५९५–९६।

३—कहैं लोग श्रावक अरु जती। बानारसी खोसरामती॥ ६०८

४—६११-१२।

बनारसीदासजी यह अवस्था सं० १६९२ तक रही और तब तक वे निश्चय-रस-पान करते रहे, अर्थात् केवल निश्चय नयको पकड़े हुए जीवन बिताते रहे।

इसके बाद सं० १६९२ के लगभग पांडे रूपचन्द नामक एक गुनी कहींबाहरसे आगरे आये और तिहुना साहुने जो देहरा (मन्दिर) बनवाया था, उसमें आकर ठहरे। उनके पाण्डित्यकी प्रशंसा सुनकर सब अध्यात्मी जाकर मिले और उनसे गोम्मटसार ग्रन्थ पढ़वाया। उसमें गुणस्थानोंके अनुसार ज्ञान और क्रिया (चारित्र) का विचार किया गया है। जो जीव जिस गुणस्थानमें होता है उसीके अनुसार उसका चारित्र होता है। उन्होंने भीतरी निश्चय और बाहरी व्यवहारका भिन्न भिन्न विवरण किया सब बातोंको सब प्रकारसे समझा दिया और तब फिर अपने साथियोंके साथ बनारसीदासजीको भी कोई संशय नहीं रह गया। वे अब स्याद्वादपरिणतिमें परिणत होकर दूसरे ही हो गये।— तब बनारसी औरै भयौ, स्यादवादपरनति परनयौ।”

यद्यपि पाण्डे रूपचन्दजी दिगम्बर सम्प्रदायके थे और गोम्मटसार भी उसी सम्प्रदायका ग्रन्थ है जिसके अध्ययनसे वे निश्चय व्यवहारको ठीक ठीक समझे फिर भी उनको और उनके साथी अध्यात्मियोंको दिगम्बर नहीं कहा जा सकता।

बनारसीदासजीने अर्ध-कथानकमें अपने सारे जीवनकी घटनाओंका ब्यौरेवार इतिहास दिया है पर उसमें उन्होंने कहीं भी अपने सम्प्रदायका उल्लेख नहीं किया और न कहीं यही लिखा है कि अमुक अपना सम्प्रदाय बदला। उन्होंने आपको और अपने साथियोंको अध्यात्मी ही लिखा है साथ ही जनधर्मकी दृढ़ प्रतीति और हृदयमें शुद्ध सम्यक्त्वकी टेक रखनेवाला कहा है।

उस समय आगरेमें अध्यात्मियोंकी एक सैली या गोष्ठी थी जिसमें अध्यात्मकी चर्चा होती थी। इन अध्यात्मियोंकी प्रेरणासे ही उन्होंने नाटक समयसारको पद्यानुवाद किया था। उसके अन्तमें लिखा है कि समयसार नाटकका मर्म समझनेवाले जिनधर्मी पांडे राजमल्लजीने उसकी बालबोध टीका बनाकर सुगम कर

१—बानारसी बिरोलिया अध्यातमी रसाल।—९०१
२—जैन धरमकी दिढ़ परतीति। ३—हृदय सुद्ध समकितकी टेक।
४—पांडे राजमल्ल जिनधरमी समैसार नाटकके मरमी।
 तिन गिरंथकी टीका कीनी बालबोध सुगम कर दीनी ॥ २१ ॥

दिया। इस तरह बोध-वचनिका सर्वत्र फैल गई, घर घर नाटककी चर्चा होने लगी और समय पाकर अध्यात्मियोंकी सैली बन गई। आगरा नगरमें कारण पाकर अनेक ज्ञाता हो गये जिनमें पं. रूपचन्द, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुँअरपाल और धर्मदास मुख्य थे। रात दिन परमार्थ या अध्यात्मकी चर्चा करनेके सिवाय इनके और कोई कथा नहीं थी[1]।

बनारसीविलासका संग्रह करनेवाले संघी जगजीवनने भी आगरेकी अध्यात्म-सैलीका उल्लेख किया है[2]। पं. हीरानन्दने भी समवसरण विधानमें उस समयकी ज्ञानमण्डलीका जिक्र किया है जिसमें पं. हेमराज, रामचन्द्र, मथुरादास, भगवतीदास और भवालदासके नाम हैं[3]।

पं. द्यानतरायने (वि. सं. १७५ के लगभग) आगरेकी मानसिंह जौहरीकी और दिल्लीकी सुखानन्दकी सैलीका उल्लेख किया है[4]। मुलतानमें रची गई वर्धमान-वचनिकाके कर्त्ताने भी सुखानन्दकी सैलीकी चर्चा की है[5]।

१—इहि विधि बोध वचनिका फैली, समै पाइ अध्यातम सैली।
प्रगटी जगमाहीं जिनवानी, घर घर नाटक-कथा बखानी ॥ २४ ॥
नगर आगरेमाहिं विख्याता, कारन पाइ भए बहु ज्ञाता।
पंच पुरुष अति-निपुन प्रवीने, निसिदिन ग्यानकथारस भीने ॥ २५ ॥
रूपचन्द पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम।
तृतिय भगोतीदास नर, कौरपाल गुनधाम ॥ २६ ॥
धरमदास ए पंच जन, मिलि बैठें इक ठौर।
परमारथचरचा करें, इनके कथा न और ॥ २७ ॥
इहि विधि ग्यान प्रगट भयो, नगर आगरेमाहिं।
देसदेसमें विस्तर्यो, मृषादेसमें नाहिं ॥ २८ ॥

२—समैजोग पाइ जगजीवन विख्यात भयो,
ग्यानिनकी मंडलीमें जिसको विकास है। —ब. वि. पृ. २११

३—देखो परिशिष्ट, जगजीवन और भगोतीदास।

४—आगरेमें मानसिंह जौहरीकी सैली हुती,
दिल्लीमाहिं अब सुखानन्दजीकी सैली है। —धर्मविलास

५—अध्यातम सैली मन लाइ, सुखानन्द सुखदायजी। —वर्धमान वचनिका

नारनौलनिवासी पं॰ बखतरामने अपने मिथ्यात्वखंडन (वि॰ सं॰ १८२१) में जयपुर या आमेरके अध्यात्मियोंका उल्लेख किया है जिनमें पं॰ हीरानन्द, और संघवी जगजीवनके सिवाय रत्नपाल, अनूपराय, दामोदरदास, माधवदास, किसनदास, ईसराज, प्रतापमल, तिलोकचन्द, नारायणदास आदिके भी नाम दिये हैं— "ए सब ज्ञाता अति गुनवन्त जिनगुन सुनैं सदा विकसंत।" और 'याहि जयपुरनगरमें श्रावक परम सुजान। सब मिलकर चरचा करैं, जाको यो उनमान।' सो यह भी अध्यात्म-शैली ही जान पड़ती है।

जयपुरमें भी शैलियाँ रही हैं, परन्तु उनका नाम पीछे तेरहपंथ शैली हो गया था। पं॰ जयचन्दजी छाबड़ा (सं॰ १८६४) ने उसका उल्लेख किया है।

ऐसा जान पड़ता है कि यह अध्यात्ममत और अध्यात्मी बनारसीदासजीके पहले भी थे। सं॰ १६५५ में जब बनारसीदासजी अपने पिताकी आज्ञासे फतेहपुर गये तब जिन भगवतीदास ओसवालके घरपर ठहरे, उनके पिता वासूसाह अध्यात्मी थे— वासूसाह अध्यातमी जान। और इसी तरह सं॰ १६८० में जब वे खैराबाद गये तब वहाँ अरथमल ढोर मिले जो अध्यात्मकी बातें जोर-शोरसे करते थे और उन्होंने समयसारकी राजमल्लकृत बालबोध-टीका दी थी। शायद इस टीकाके प्रभावसे ही वे अध्यात्मी हो गये।

डा॰ वासुदेवशरण अग्रवालने लिखा है —"बीकानेर-जैन लेख-संग्रहमें अध्यात्मी सम्प्रदायका उल्लेख भी ध्यान देने योग्य है। यह आगरेके ज्ञानियोंकी मंडली थी जिसे शैली कहते थे। अध्यात्मी बनारसीदास इसीके प्रमुख सदस्य

१—महावीर-ग्रन्थमालाका प्रशस्तिसंग्रह पृ॰ २१६-१७

२—तामें तेरहपंथ सुपंथ, शैली बड़ी गुनीगन ग्रंथ।

३ तब तहं मिले अरथमल ढोर, करैं अध्यातम बातें जोर।
तिन बनारसीसौं हित कियौ समैसार नाटक लिखि दियौ ॥ ५९२

४—'मध्यकालीन नगरोंका सांस्कृतिक अध्ययन'—जैन-सन्देश, मई १९५७।

थे। ज्ञात होता है कि अकबरकी 'दीने इलाही' प्रवृत्ति इसी प्रकारकी आध्यात्मिक खोजका परिणाम थी। बनारसमें भी अध्यात्मियोंकी एक सैली या मंडली थी। किसी समय राजा टोडरमलजीके पुत्र गोवर्धनदास इसके मुखिया थे।"

सो बनारसीदासजी ऐसी ही अध्यात्म सैलीके प्रमुख सदस्य थे और जैन थे,—श्वेताम्बर या दिगम्बर नहीं। वे परमसहिष्णु और विचारोंमें उदार थे। बनारसीविलासमें संग्रहीत उनके कुछ दोहे देखिए—

तिलक तोष माला बिरति, मति मुद्रा श्रुति छाप।
इन लच्छनसौं वैष्णव, समुझै हरि-परताप ॥ १
जो हर घटमें हरि लखै हरि बाना हरि बोल।
हर छिन हरि सुमरन करै, विमल वैष्णव सोइ ॥ २
जो मन मूसै आपनो, साहिबके रुख होइ।
ग्यान मुसल्ला गहि टिकै, मुसलमान है सोइ ॥ ३
एक रूप हिन्दू तुरक, दूजी दशा न कोइ।
मनकी दुविधा मानकर, भए एकसौं दोइ ॥ ४

१—'दीने इलाही' बादशाह अकबरका प्रचलित किया हुआ नया धर्म था जिसमें मतसहिष्णुता और उदारताको प्रधान स्थान दिया गया था। फतहपुर सीकरीके इबादतखानेमें हर रातको रोज भिन्न भिन्न धर्मोंके पण्डित इकट्ठे किये जाते थे। मुसलमान मौलवी, हिन्दू पण्डित, ईसाई पादरी, बौद्ध भिक्षु और पारसी गुरु अपने अपने पक्षका समर्थन करते थे। बादशाहकी ओरसे अबुल फजल मध्यस्थका कार्य करता था। वह बहसके लिए सवाल सामने रखता था और मौका पाकर ऐसे शोशे छोड़ देता था कि भिन्न भिन्न धर्मोंके अनुयायी अपना पक्षसमर्थन छोड़कर परस्पर गाली गलौजपर उतर आते थे। अकबर मजहबी गुरुओंकी मूर्खताओंका तमाशा देखता था। भिन्न भिन्न धर्मोंके वाद विवादमेंसे उसने यह सार निकाला कि हरेक धर्ममें सचाईका अंश विद्यमान है, हर एक धर्ममें सचाईको रूढि ढोंग और कल्पनाओंके खोलमें ढँककर प्रकट किया है। औसत दर्जेका आदमी उन ढक्कनोंके अन्दर छुपी हुई सचाईको नहीं देख सकता है, परन्तु मामूली लोग सचाईको छोड़ रूढि-ढोंग और कल्पनाके जालमें ही उलझ जाते हैं। हिन्दूधर्म, जैनधर्म और इस्लामके धार्मिक विचारोंमेंसे उसने बहुत-सी सामग्री चुन ली। वेदान्तके उपदेश उसे बहुत भाते थे।" —मुगल साम्राज्यका क्षय और उसके कारण पृ. ९४ ९५।

कोऊ भूले भरममें, करैं वचनकी टेक।
'राम राम' हिंदू करैं, तुरक 'सलामालेक'॥ ५
इनके 'पुस्तक' बाँचिए, वेहू पढ़ैं 'किताब'।
एक वस्तुके नाम दो, जैसे 'सोभा' 'आब'॥ ६
तिनको दुबिधा, जे लखैं रंग बिरंगी चाम।
मेरे नैननि देखिए, घट घट अंतर राम॥ ७
यहै गुप्त यह है प्रगट, यह बाहर यह माँहि।
जब लगि यह कछु है रहा, तब लगि यह कछु नाहिं॥ ८
ब्रह्मज्ञान आकाशमें, उड़हिं सुमति खग होइ।
यथाशक्ति उद्यम करहिं, पार न पावहिं कोइ॥ ९
जो महंत है ज्ञान बिन, फिरै फुलाए गाल।
आप मत्त औरनि करै, सो कलिमाहिं कलाल॥ १

अन्य संतोंके समान ही उन्होंने लिखा है—

जो घरत्याग कहावै जोगी, घरवासीको कहै जो भोगी।
अंतरभाव न परखै कोई, गोरख बोलै मूरख सोई॥
पढ़ि ग्रन्थहिं जो ज्ञान बखानै, पवन साधि परमारथ मानै।
परम तत्त्वके होहिं न मरमी, कह गोरख सो महा अधरमी॥
बिन परचै जो वस्तु विचारै, ध्यान अगनि बिन तन परजारै।
ध्यान मगन बिन रहै अबोला, कह गोरख सो बावला भोला॥

इससे उनके सम्प्रदायको श्वेताम्बर दिगम्बर कहनेकी अपेक्षा अध्यात्मी कहना ही ठीक है जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है।

अध्यात्म-मतका विरोध

उनके इस मतका विरोध सबसे पहले श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधुओंने किया। क्योंकि इस मतका प्रचार पहले उन्हीं श्रावकोंमें ही हुआ था। आगे हम उनका और उनके विरोधका परिचय दे रहे हैं—

१—यशोविजयजी उपाध्याय—यशोविजयजीका संस्कृत, प्राकृत और गुजरातीमें विपुल साहित्य उपलब्ध है। बनारस और आगरामें अधिक समय

तक रहनेसे हिन्दीमें भी उन्होंने कुछ ग्रन्थ लिखे हैं। उनकी अध्यात्ममतपरीक्षा अध्यात्ममतखण्डन और दिक्पट चौरासी बोल नामकी तीन रचनायें अध्यात्ममतके विरोधमें ही लिखी गई हैं। पहले ग्रन्थमें स्वोपज्ञ संस्कृतटीकासहित १८४ प्राकृत गाथायें हैं दूसरा ग्रन्थ केवल १८ संस्कृत श्लोकोंका है और उसकी भी स्वोपज्ञ संस्कृतटीका है।

पहले ग्रन्थमें जैनसाधु उपकरण नहीं रखते, वस्त्र धारण नहीं करते, केवली आहार नहीं लेते उन्हें नीहार नहीं होता स्त्रियोंको मोक्ष नहीं आदि दिगम्बर मान्य सिद्धान्तोंका खंडन किया गया है। अध्यात्मके नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार भेद करके उन्होंने इस मतको 'नाम अध्यात्म' संज्ञा दी है और एक जगह कहा है कि जो उन्मार्गकी प्ररूपणा करके बाह्य क्रियाओंका क्षेप करता है वह बोधि (दर्शन-ज्ञान-चारित्र) के बीजका नाश करता है।

दूसरे ग्रन्थमें मुख्यतः केवलीके कवलाहारका प्रतिपादन है और अन्तमें लिखा है कि मिथ्यात्व मोहनीय कर्मके उदयके कारण जो विपरीत प्ररूपणा करते हैं, ऐसे दिगम्बरों और उनके अनुयायी आध्यात्मिकोंको दूरसे ही त्याग देना चाहिए। इस तरह साम्प्रदायिकों उत्पन्न आध्यात्मिक मतके नाश करनेमें रत यह ग्रन्थ रचा गया।

१—आत्मानन्द जैन सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित।
२—जैनधर्मप्रसारक सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित।

३—जो य बाह्य किरियं जो वसु अज्झप्पमाणमप्पणं य।
से उप्पह बोहिबीयं, उम्मग्गपरूवणं काउं ॥ ४२

४—मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदयवशाद्विपरीतप्ररूपणाप्रवणा दिगम्बराः तन्मतानुयायिनश्चाध्यात्मिका दूरतः परिहरणीया इत्यस्मार्क हितोपदेश इति ॥ १६

५—एवं साम्प्रदायिकत्रतयाध्यात्मिकमतनिरसनरूपम्।
रचितमिदं स्वप्रन्थके मिश्रपदं सर्वं हृदयङ्गमम् ॥ १७

तीसरी 'दिक्पट चौरासी बोल' छन्दोबद्ध हिन्दी रचना है। इसमें सब मिलाकर १६१ पद्य हैं। यह पंडित हेमराजके 'सितपट चौरासी बोल' नामक पद्य-रचनाके उत्तरमें लिखा गया है। इसमें भी नाम अध्यात्मी दिगम्बरोंके मन्तव्योंका बड़ी ही कठोर भाषामें खण्डन किया गया है।

यद्यपि इन तीनों ही ग्रन्थोंमें बनारसीदासजीका उल्लेख नहीं है सर्वत्र 'अध्यात्मी' ही कहा गया है तथापि लक्ष्य उनके वे ही हैं। वे जो साम्प्रतिक अध्यात्ममत कहते हैं, सो भी यह बतलाता है कि बनारसीदासके सम्प्रदायसे ही उनका मतलब है और यह भी कि उससे पहले भी अध्यात्ममत था।

यशोविजयजी उपाध्यायके उक्त तीनों ही ग्रन्थोंमें उनका रचनाकाल नहीं दिया गया है, परन्तु श्रीकान्तिविजयजी गणिने जो कि उनके समकालीन थे अपनी 'सुजसवेलि भास' नामक पुस्तकमें लिखा है कि यशोविजयजीने सं. १६९९ में अहमदाबाद (राजनगर) में जब अष्टावधान किये तब उनकी योग्यता देख कर एक धनी गृहस्थने उनके विद्याभ्यासके लिए धन देना स्वीकार किया और

१—देखो, यशोविजय उपाध्यायरचित गुर्जरसाहित्यसंग्रह प्रथमभाग पृ. ५७१-९७ और श्रीभीमसी माणिकद्वारा प्रकाशित प्रकरणरत्नाकर भाग १, पृ. ५६६-७४।

२—हिन्दी होनेपर भी इसमें गुजरातीपन बहुत है। गुजराती शब्द भी बहुत हैं।

३—यह अभी प्रकाशित नहीं हुआ।

४—हेमराज पांडे किए, बोल चुरासी फेर।
या विध हम भाषावचन, ताको मत किय जेर ॥ १६१

५— घन वचन रुचिर गंभीर नय दिक्पट-कपट-कुठार सम।
जिनवर्धमान जो वंदिए, जिनज्योति पूरन परम ॥ १
मतभक्त मद रस मन्मथ लखें देवरूप।
उठे नाम अध्यात्मी, मरमजाल अपरूप ॥ ११

६—प्रकाशक, ज्योति कार्यालय रतनपोल, अहमदाबाद।

वे बनारस गये। वहाँ उन्होंने तीन वर्ष तक विविध दर्शनोंका अभ्यास किया और फिर उसके बाद आगरे आकर एक न्यायाचार्यके पास सं० १७ १-४ से १७ ७-८ तक कर्कश तर्कग्रन्थ पढ़े और उसके बाद अहमदाबादकी ओर विहार किया जान पड़ता है, तभी १७ ८ के लगभग उन्हें आगरेमें अध्यात्म मतका परिचय हुआ होगा और तभी उक्त ग्रन्थ लिखे गये होंगे। पाण्डे हेमराजने 'सितपट चौरासी बोल' सं० १७ ७ में लिखा है।

२–मेघविजयजी महोपाध्याय—यशोविजयजीके बाद मेघविजयजीने अध्यात्म मतके विरोधमें 'युक्तिप्रबोध' नामका ग्रन्थ लिखा है जिसमें २५ प्राकृत गाथाएँ हैं और उनपर ४५ श्लोक प्रमाण स्वोपज्ञ संस्कृतटीका है। मूल गाथाएँ और टीकाका कुछ अंश हम परिशिष्टमें दे रहे हैं। लिखा है कि आगरेमें आध्यात्मिक कहलानेवाले 'वाराणसीय' मती लोगोंके द्वारा कुछ भव्य जनोंको विमोहित देखकर उनके भ्रमको दूर करनेके लिए यह लिखा गया।

ये वाराणसीय लोग श्वेताम्बरमतानुसार स्त्रीमोक्ष, केवलिकवलाहारादिपर श्रद्धा नहीं रखते और दिगम्बर मतके अनुसार पिच्छिका कमण्डलु आदिको भी अंगीकार नहीं करते तब इनको सम्यक्त्व कैसे माना जाय ?

आगरेमें बनारसीदास खरतरगच्छके श्रावक थे और श्रीमालकुलमें उत्पन्न हुए थे। पहले उनमें धर्मरुचि थी। सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रोषध, तप, उपधानादि करते थे जिनपूजन प्रभावना साधर्मीवात्सल्य साधुवन्दना, भोजनदानमें आदरबुद्धि रखते थे आवश्यकादि पढ़ते थे, और मुनि आचारोंके आचारको जानते थे। कालान्तरमें उन्हें पं० रूपचन्द, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुमारपाल, और धर्मदास ये पाँच पुरुष मिले और उनका चित्त विचिकित्सा कलुषित होनेसे तथा उनके कर्मोंसे वे सब व्यवहार छोड़ बैठे। उन्हें श्वेताम्बर मतपर अश्रद्धा हो गई। कहने लगे कि यह परस्परविरुद्ध मत ठीक नहीं है दिगम्बर मत ही सम्यक् है। वे लोगोंसे कहने लगे कि हम व्यवहार-मार्गमें पड़कर क्यों व्यर्थ ही अपनी विडम्बना कर रहे हो ? मोक्षके लिए तो केवल आत्मचिन्तनरूप

१—ऋषभदेव-केशरीमल श्वेताम्बर संस्था रतलाम द्वारा प्रकाशित।

निश्चय सम्यक्त्व ही उपयोगी है उसीका आचरण करो, व्यवहारसार उपासनाका आश्रय लो और इन लोकप्रत्यायिका क्रियाओंको छोड़ दो। अनेक आगम युक्तियोंसे समझानेपर भी वे अपने पूर्वमतमें स्थिर नहीं हो सके बल्कि इनेगिने परमात्म एवं आचार्यादिको भी अपनी बुद्धिसे दूषित करने लगे।

प्रायः अध्यात्मग्रन्थोंमें ज्ञानकी ही प्रधानता है और दान शील-तपादि क्रियाएँ गौण हैं, इसलिए निरन्तर अध्यात्मग्रन्थोंके अभ्याससे उन्हें दिगम्बरमतमें विश्वास हो गया। वे उसीको प्रमाण मानने लगे। प्राचीन दिगम्बर श्रावक अपने गुरु मुनियों (भट्टारकों) पर श्रद्धा रखते हैं, परन्तु इनकी उनपर भी अश्रद्धा हो गई। पिच्छिका-कमण्डलु आदि परिग्रह हैं इसलिए मुनियोंको ये न रखने चाहिए। आदिपुराण आदि भी किंचित् प्रमाण हैं।

अपने मतकी पुष्टिके लिए उन्होंने भाषा कवितामें नाटक समयसार और बनारसीविलासकी रचना की।

विक्रम सं. १६८ में बनारसीदासका यह मत उत्पन्न हुआ। बनारसीदासके स्वर्गस्थ होनेपर कुँअरपालने इस मतको धारण किया और तब यह गुरुके समान माना जाने लगा।

इस ग्रन्थका अधिकांश उन सब बातोंके खण्डनसे भरा हुआ है जो दि. ग्रन्थोंमें एक-सी नहीं मिलतीं, परस्पर भिन्न हैं।

इस ग्रन्थमें भी रचना-काल नहीं दिया गया है परन्तु जान पड़ता है कि यह यशोविजयजीके ग्रन्थोंके चालीस पचास वर्ष बादका है और संभवतः उन्हींकी अध्यात्ममतपरीक्षाके अनुकरणपर लिखा गया है।

मेघविजयजीने हेमचन्द्रके शब्दानुशासनकी चन्द्रप्रभा-टीका वि. सं. १७५७ में आगरेमें ही रहकर लिखी थी अतएव लगभग इसी समय उन्हें अध्यात्ममतकी जानकारी हुई होगी और तभी युक्तिप्रबोध लिखा गया होगा।

इसमें पं. रूपचन्द आदि साथियोंके समयकी बातें तो नाटक समयसार को देखकर लिखी गई हैं और शेष सब लोगोंसे सुनसुनाकर लिखी हैं जिनमेंसे

१—कुँवरपाल बनारसीदासके मित्र थे। वे उनकी मृत्युके बाद गुरु बन गये या गुरुके समान माने जाने लगे इसका कोई प्रमाण नहीं। वे कोई महन्त नहीं थे, जो उनके पदाधिकारी कुँवरपाल होते।

बहुत-सी गलत है। सं० १६८० में बनारसीमतकी उत्पत्ति बतलाना भी ठीक नहीं है। इस संवत्‌में तो उन्हें समयसारकी बालबोधटीका मिली थी जिससे आगे चलकर उनके विचारोंमें परिवर्तन हुआ। अध्यात्म मत या बनारसी मतका जो स्वरूप बतलाया है वह भी ठीक नहीं जान पड़ता। क्योंकि जिस समय मेघविजयजीका ग्रन्थ लिखा गया उस समय बनारसीदास एकान्त निश्चयावलम्बी नहीं थे। उससे पहले १६८० से १६९२ तक अवश्य ही वैसे रहे होंगे। अर्ध-कथानकके अनुसार तो पाँडे रूपचन्दजीके उपदेशसे १६९२ में ही बनारसीदासजी ठीक मार्गपर आ गये थे। पर अर्धकथानक शायद मेघविजयजीकी नजरसे गुजरा ही नहीं।

१ धर्मवर्द्धन महोपाध्याय—खरतरगच्छके महोपाध्याय धर्मवर्द्धनने भी अध्यात्म मतके विरोधमें 'अध्यात्ममतीपारो सवैयो' लिखा है जिसे श्री अगरचन्दजी नाहटाने अपने संग्रहमेंसे ढूँढ़ कर भेजनेकी कृपा की है। पहले सवैयामें कहा है कि अनादिकालके रूढ़ आगमोंको तो इन अध्यात्मियोंने उठा दिया और ये अबके बने हुए बालबोधोंको (भाषा-टीकाओंको) ठीक मानते हैं। योगी और यतियोंके पास तो ये दूरसे ही दौड़े जाते हैं परन्तु जैन यती इन्हें देखने भी नहीं सुहाते। क्रिया दान आदि छोड़ दिये हैं, और इन्हें ऐसा पक्षपात हो गया है कि किसीका रत्तीभर भी

१—आगम अनादिके उथापि डारे आपे रूढ़,
अबके बनाए बालबोध माने संमती।
जोगी जिते जतानिपै दूरहीतें दौरे जात,
देखन सुहात नाहि एक जैनके जती॥
ऐसो उठे कोप मान दूर किए क्रिया दान
ऐसे पक्षपाती गुन काहूको न लें रती।
बाबन ही अक्षरकूं पूरेसे सिद्धान्त माहि
जैनमें निकाले यही आगम अध्यातमी॥
(मुलतानरे अध्यात्मीय प्रश्न पूछवारो उत्तर लेखो १ काम १ पूरो १ मता करीम मुहता सुगन चन्द वाळीने पुगी वता) अर्थात् मुलतानके अध्यात्मियोंने प्रश्न पुछाये थे, उनका उत्तर।

महोपाध्याय धर्मवर्द्धनके अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं और एक दो तो प्रकाशित भी हो चुके हैं। उनकी गुजराती रचनायें ही अधिक हैं। ग्रन्थरचनाकाल सं १७११ से १ ५७ तक है। इसी समयके बीच उक्त सवैया लिखे गये होंगे। मुल्तानमें अध्यात्मी श्रावकोंका अच्छा समूह था जो कि पहले खरतर गच्छका अनुयायी था, अतएव स्वाभाविक है कि उन्होंने धर्मवर्धनजीसे प्रश्न पूछकर पत्र-द्वारा समाधान चाहा होगा। पर उन्होंने उत्तरमें कटाक्ष ही किये हैं कि तुम आगमोंकी परवाह नहीं करते, कुछ समझते बूझते नहीं, परमात्मप्रकाश, ग्रन्थ-संग्रह आदिको प्रमाण मानते हो।

अध्यात्ममतके समालोचक ये तीनों ही ग्रन्थकार बनारसीदासजीके सर्वथा पासके—अठारहवीं शताब्दिके पूर्वार्धके—हैं और तीनों श्वेताम्बर हैं।

ज्ञानसारजी

खरतरगच्छीय रत्नराजगणिके शिष्य ज्ञानसारजी १९ वीं शताब्दिके हैं। उनके अनेक ग्रन्थ—राजस्थानी और हिन्दीके—श्री अगरचन्दजी नाहटाके संग्रहमें हैं। उनमेंसे आत्मप्रबोध-छत्तीसी में—जो वि सं १८९९ के लगभग रची गई है, अध्यात्ममत और नाटक समयसारको लक्ष्य करके कुछ कटाक्ष किये गये हैं। अथ अध्यात्ममत कथन—

> जो जिन ध्यानरसे भरयो ताके पंथ नवीन।
> होति नहीं ऐसो करै सो दुरबुद्धि मतिहीन ॥ ६
> छोडै नहि विवहारमैं, भीन भयो ज्यौं जीव।

१—श्री अगरचन्द नाहटाके मंगे हुए पहले गुटकेमें भी जो कुँअरपालके हाथका लिखा हुआ है परमात्मप्रकाश और द्रव्यसंग्रह भाषाटीका सहित लिखे हुए हैं। इससे भी मालूम होता है कि इन ग्रन्थोंका अध्यात्मियोंमें विशेष प्रचार था। उक्त गुटकेमें गोम्मटसार नयचक्र आदि भी हैं।

२—यह नाटक समयसारके इस दोहेको लक्ष्य करके कहा है—

> ग्यानी ग्यानमगन रहै रागादिक मल खोइ।
> चित उदास करनी करै करमबंध नहिं होइ ॥ १६—निर्जराद्वार

३— छोडे व्यवहार निश्चय है— समैसारमें कहे।

तातैं मुक्ति न होहिगी सही कुमुखी जीव ॥ ७

आत्मप्रबोध-छत्तीसीके अन्तमें गुजरातीमें यह टिप्पण दिया है—

“ हुं लाहिर आगरानी उपाश्रय छाकिने आप बैठो, तद आगरानी कालो चार्यों मारुमलजीने मने कह्यु ये सिद्धांत वांचो तो दोष नथी हुं भी आवुं, तद मैं कह्यो, हुं तो उत्तराध्ययन सूत्र वांचूं छू, तद तिण कह्यु समेसारनो सिद्धांत वांचो। तद मैं कह्युं समेसार जिनमतनो चोर छे तिवारे कह्यु—केम? समसारमें चोरी छे तो मनें दिखावो। तिवारे आत्मसमयगाहारें 'आतमा ते परीक्षा परीक्षा ते आत्मा' ए सिद्धान्तनूं एक पद मरिनें चोरी हुती ते छत्तीसीमें कही, ते सुणी म्लान थई गयो। इति।” अर्थात् समयसार जिनमतका चोर है, उसमें जो सिद्धान्तकी एकपदी चोरी है वह छत्तीसीमें कायम की। सुनकर भागमलदास श्रावक म्लान हो गया। इससे मालूम होता है कि ज्ञानसारजी अध्यात्ममत और नाटक समयसारको किस दृष्टिसे देखते थे।

ज्ञानसारजीकी अनेक रचनाओंमेंसे एक और छोटी-सी रचना भाव-छत्तीसी है। उसके अन्तिम दोहेका टिप्पण है—

“जैनगरे गोलछागोत्रे मुलतान मासके आश्रम जिनमत भणसिरे मुखद्रेषे जिनदत्तन आदरयो। वही हुं किसनगढ़ आयो तिवारे समयसार जिनमत विरुद्ध वांचतो सुन ए रचीने मूकी। तेऊए वांचीने वांचवूं मूकी दीधू” अर्थात् जयपुरमें गोलछा गोत्रके (ओसवाल) मुलतान श्रावकने आगरी मुखवृत्तिसे जिनदत्तन ग्रहण किया। फिर मैं किशनगढ़ चला आया, तब मैंने सुना कि वह जिनमतविरुद्ध समयसार बाँचता है तब यह भावछत्तीसी रचकर रख दी। उसने भी इसे पढ़कर समयसारका पढ़ना छोड़ दिया।

१—यह समयसारके इस दोहेको लक्ष्य करके है—

मीन भयो विरतारमें, उपजि न करवे चोर।
दीन भयो प्रभुपद जपै, मुकति करौमें दौर ॥ २२—निर्जरा द्वार

२—भागमलदास श्रावक (ओसवाल, लालानी)

३—नाहटाजी इस 'ज्ञानसारग्रन्थावली' में छपा रहे हैं।

४—ज्ञानसारजीका राजस्थानी भाषामें एक 'कामोद्दीपन' नामका ग्रन्थ है, जो जयपुरके राजा माधवसिंहके पुत्र प्रतापसिंहजीकी प्रशंसामें लिखा गया है। 'माधवसिंहदर्पण' नामकी एक छोटी-सी रचना उसकी प्रशंसामें भी है।

इस टिप्पणसे भी मालूम होता है कि इन्हें समयसारसे बहुत ही चिढ़ हो गई थी और वे यह बरदाश्त नहीं कर सकते थे कि कोई श्रावक उसे पढ़े। मानछत्तीसीके दोहोंमें भी नाटक समयसारकी उक्तियोंकी प्रतिध्वनि है।

आगे हम दिगम्बर सम्प्रदायके उन लेखकों और उनके ग्रन्थोंका परिचय देते हैं जिन्होंने अध्यात्म मतका विरोध किया है।

जिस तरह श्वेताम्बर विद्वानोंने अध्यात्म मतपर आक्रमण किये हैं उसी तरह दिगम्बरोंने भी। परन्तु दिगम्बरोंने उसे 'अध्यात्म मत' न कहकर 'तेरापंथ' कहा है।

तेरापंथका विरोध

१–पं० बखतरामजी—पं० बखतरामजी चाटसूके रहनेवाले थे और जयपुरमें आकर रहने लगे थे। उनके पिताका नाम प्रेमराज था। उनका बनाया हुआ 'मिथ्यात्व-खंडन नाटक' है जो पूस सुदी पंचमी रविवार सं० १८२१ को रचा गया था। उसका सारांश यह है—

पहले एक दिगम्बर मत था, उसमेंसे श्वेताम्बर निकला। दोनोंमें भारी झगड़ा (अनबन) हुई जिसे सभी जानते हैं। उसीमें बरस (तर्क) करके तेरह पंथ चल पड़ा। उसकी उत्पत्तिका कारण बतलाते हुए लिखा है कि पहले यह मत आगरेमें सं० १६८१ में चला। वहाँ कितने ही श्रावकोंने किसी पंडितसे कितने ही अध्यात्म ग्रंथ सुने और वे श्रावकोंकी क्रियाओंको छोड़कर मुनियोंके मार्गपर चलने लगे फिर उसीके अनुसार यह कामांमें चल पड़ा।

१—प्रेम अमल रहस श्रगि जो चाटसु पायो बास।
बखतराम बरनन कियो पेमराज सुत तास ॥ १४ १ ॥
आदि चाटसू नगरके, बसी जिनको जानि।
हाल सवाई जयनगर, माहि बसे हैं आनि ॥ १४ २ ॥

२— नाटक नाम भर है, नाटकका इसमें कुछ नहीं है।

३—अठारहसौ बीस इक सुभ संवत रविवार।
पौष मास तिथि पंचमी रच्यौ ग्रन्थ यह सार ॥ १४ ३ ॥

४—प्रथम चल्यो मत आगरै श्रावक मिले कितेक।
सोलहसौ छियासिये, गहि कितेक मिलि टेक ॥ २

इन्होंने सनातनकी रीति छोड़कर पापकारी नई रीति पकड़ ली। पहले तो थोड़ी छोड़ीं, एक जिनचरणोंमें केसर लगाना और दूसरे गुरुको नमन करना। आमेरके भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिके समयमें यह पापधाम कुपन्थ चला। उस समय आमेरके निमित्त जितने ही महाजन आमेरमें रहते थे और अध्यात्मी बन जाते थे। वे एक साथ मिलकर चुपचाप चर्चा किया करते थे।

जयपुरके निकट सांगानेर पुराना नगर है। वहाँ अमरचन्द नामके एक ब्रह्मचारी थे। उनके निकट अनेक श्रावक धर्मकथा सुना करते थे, जिनमें एक गोदीका गोत्रका अमरा भौंसा था। उसे धनका बड़ा घमंड था, सो उसने जिनवानीका अविनय किया। इसपर श्रावकोंने उसे मन्दिरमेंसे निकाल दिया। इससे कोपित होकर उसने प्रतिज्ञा की कि मैं नया पंथ चलाऊँगा। उस १२ अध्यात्मी मिल गये, जिन्हें आमन्त्रण देकर उसने अपने मतमें मिला लिया। एक नया मन्दिर बनवा लिया और पूजा-पाठ भी रच लिये। सं० १७०१ में इस तरह यह अपवाद मत स्थापित किया। राजाका एक मंत्री भी उसे मिल गया। उसने सहायता देकर और द्रव्य खर्चकर इस पन्थको बढ़ाया।

बखतरामजीका दूसरा ग्रन्थ बुद्धिविलास है जो गुणकीर्ति मुनिकी आज्ञासे सं० १८२७ में लिखा गया है। इसमें भी तेरहपंथकी प्रायः वही बातें हैं जो मिथ्यात्व-खण्डनमें हैं। मिथ्यात्व-खण्डनमें गुरुनमस्कार और केसर लगाना इन दो बातोंको छोड़नेकी बात लिखी है, पर इसमें उनके सिवा लिखा है—

१—केसर जिनपद चरचिये, गुरु नमिये जग सार।
प्रथम तजी यह दोय विधि, मन मद ठानि असार॥ २१

२—भट्टारक आमेरके, नरेन्द्रकीरति नाम।
यह कुपन्थ तिनके समै, नयो चल्यो अघधाम॥ २५

३—तिनमें अमरा भौंसा जाति गोदीका बड़ ग्योत कहाति॥ १
धनको गरब अधिक तिन धरयो, जिनवानीको अविनय करयो॥
तब यहाँ श्रावकनि विचारि, जिनमंदिरतें दयो निकारि।

४—तबहि सो मिलाचरे तन्त्र, मत चाल्यो ऐसें अपवाद॥ ३४

५—भोजन सहित चढ़ाय नहिं लगायो नहिं स्थापन।
दीपक धूप ओर तजे, तिनके मिटे खेद॥ १८

बुद्धिविलासमें काफी बड़ा ग्रन्थ है पर उसमें कोई सिलसिला नहीं है। जहाँ जिस विषयकी लहर आई है वहीं वही लिख दिया है। आमेर और जयपुरका बहुत विस्तारसे वर्णन किया है और वहाँके कछवाहे राजाओंकी वंशावली देकर उनके विषयमें अनेक कवियोंकी लिखी हुई प्रशंसाएँ भी उद्धृत की हैं। श्यामराम नामक ब्राह्मणके द्वारा, जो राजाका पुरोहित था, जैन मंदिरोंके नष्ट भ्रष्ट किये जानेका विवरण भी दिया है। एक जगह लिखा है जैसे बिल्ली और चूहोंमें बैरभाव है, वैसा ही (बीस पंथका) बैरी तेरहपंथ है। बीसपन्थमेंसे तेरह पन्थ उसी तरह प्रकट हुआ जैसे हिन्दुओंमेंसे यवनोंका कुपन्थ। हिन्दुओंकी क्रियाएँ जैसे यवन नहीं मानते उसी तरह तेरहपन्थियोंने भी क्रियाएँ मानना छोड़ दीं। तेरहपन्थ ऐसा कपटी है कि वह भगवान्से भी कपट करता है और नारियलकी रंगी हुई गिरीको दीप बनाकर चढ़ाता है।

१–पं० पन्नालालजी—बखतरामजीके बाद पं० पन्नालालजीका 'तेरहपंथ-खंडन' नामका ग्रन्थ है, जो पं० कस्तूरचन्दजी शास्त्रीकी सूचनाके अनुसार

नासन करत न जिनकी हानि है भांति अनेक।
मली तबी खोटी गही ते जो करैं अटेक ॥ २९
तिनिके गुरु नाहीं कहूँ, कही न पंडित कोइ।
नहीं भक्तिकी भारती, प्रतिमा पूजत जोइ ॥ ३
ये ही प्रतिमा पंथ है तिनिमें यवन कियाइ।
हानि औरकी और ही, दोनों पंथ कहाइ ॥ ३१

१—इस ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रति मुझे स्व० बाबा नेमिनाथपाध्येने सन् १९१ के लगभग बारसी (सोमपुर) के मंदिरसे लेकर भेजी थी।

संवत अठारह सतक, ऊपर पचाईस।
मास मागसिर पख सुकल, तिथि द्वादसी सरीस।

२ जैसे बिल्ली ऊंदरा बैरभावको संग। तैसें बैरी प्रगट है तेरापन्थ निसंग ॥ बीसपन्थमें निकसकर भयको तेरापन्थ। हिंदुनमेंसे ज्यों भए यवनमलेछको पंथ ॥ हिन्दुनकी ज्यों किया यवन न मान कोइ। तैसें तेरापंथ भी किरिया छांडी सोइ ॥ कपटी तेरापन्थ है, जिनसौं कपट करंत। गिरी नारेकी दीप करै, चोखे मतको पंथ ॥

'मिथ्यात्वखंडन' के आधारपर ही लिखा गया है और अपने मतकी पुष्टिके लिए उसके कुछ पद्योंको भी उद्धृत किया है। यह जयपुरी गद्यमें है। इसका प्रारंभ देखिए—

" दिगम्बराम्नाय है सो शुद्धाम्नाय है। या विषै भी तेरहपंथीको अशुद्ध आम्नाय है सो याकी उत्पत्ति तथा श्रद्धा ज्ञान आचरण कैसे हैं ताका समाधान—पूर्वरीतिकूं छांडि नई विपरीत आम्नाय चलाई तातैं अशुद्ध है। पूर्वरीति तेरह थीं तिनकौं उठा विपरीत चले, तातैं तेरापंथी भये, तेरह पूर्व किसी, ताका समाधान—

> इक दिगपाल उथापि १ गुरुचरणां नहि नमे २।
> केशरचरणां नहि धरे ३ पुष्पपूजा फुनि त्यागे ४ ॥
> दीपक अर्चा छांडि ५, आसिका ६ माल न करही ७।
> जिन न्हावन ना करे ८ रात्रिपूजा परिहरही ९ ॥
> जिनशासनदेव्या तजी १०, रांध्यो अन्न चढ़ावैं नहीं ११।
> फल न चढ़ावैं हरित फुनि १२ बैठिर पूजा करें नहीं १३ ॥
> ये तेरे उत्थापि पंथ तेरे उपथ्ये।
> जिन धारक इन सिद्धांतमांहि मम वचन उथप्पे ॥

अर्थात् उक्त तेरह बातोंको छोड़ देनेसे यह तेरहपंथ चल चला।"

कामांकी चिट्ठी—इसके आगे पद्यकी छन्दमें कामांसे सांगानेरको लिखी हुई एक चिट्ठी दी है। कामांसे लिखनेवाले हैं—हरिकिशन चिन्तामणि देवीदास, और जगनाथ और सांगानेरवालोंके नाम हैं मुकुन्ददास दयाचन्द, महासिंह जगन्नाथ, सुन्दर और गिरधारीलाल। सांगानेरवालोंसे आग्रह किया गया है कि हमने इतनी बातें छोड़ दी हैं, सो आप भी इन्हें छोड़ देना—जिन चरणोंमें केशर लगाना, बैठकर पूजा करना, चैत्यालयमें भंडार रखना प्रभुको चाँवलपर रखकर चरण धोवना, क्षेत्रपाल और नवग्रहोंकी पूजा करना मन्दिरमें जुआ खेलना और पंखेसे हवा करना, प्रभुकी माला लेना मन्दिरमें भोजनोंको आने देना, भोजनको

१—मिथ्यात्वखंडनसे तो ऐसा मालूम होता है कि बारह अध्यात्मी मिले और तेरहवाँ अमरा भौंसा, इस तरह तेरह अध्यात्मियोंके कारण यह तेरहपंथ कहलाया। परंतु बख्तरामजी कहते हैं कि इन तेरह बातोंको छोड़ देनेसे तेरहपंथ हुआ।

द्वारा बाजे बजवाना, चौका हुआ अनाज चढ़ाना, पालोंकी करना, मन्दिरमें भोजन करना, रात्रिको पूजन करना, रथयात्रा निकालना, मन्दिरमें सोना आदि। यह चिट्ठी फागुन सुदी १४ सं० १७४९ को लिखी गई बतलाई है—

भाई सांगानेर पत्री बनायकैं लिखी।

फागुन चौदसि है, सत्रहसै उनचास सुदि ॥ २६

४—चम्पारामजी — बखतराम और पन्नालालके सिवाय चम्पारामजी पंडितने अपने ग्रन्थ चर्चासागरमें जो सं० १९११ में रचा गया है तेरहपंथका खंडन किया है। पं० शिवजीलालने भी इसी समयके आसपास तेरहपंथ-खंडन नामका ग्रन्थ लिखा है। और भी कुछ ग्रन्थोंके पढ़नेकी सिफारिश पं० पन्नालालजीने अपने तेरहपंथखंडनमें की है—वसुनन्दि श्रावकाचार वचनिका, चर्चासार, पूजाप्रकरण श्रावकाचार वचनिका, दर्शनसार वचनिका, चर्चासमाधान, मिथ्यात्वखंडन, श्रावकक्रिया, बोधसार, सुबुद्धिप्रकाश, सारसंग्रह। उक्त ग्रन्थ मिले नहीं परन्तु उनमें भी इनसे अधिक कुछ होगा, ऐसा नहीं जान पड़ता।

५—चन्द्रकवि— 'कवित तेरापंथको' नामकी छोटी-सी रचना एक गुटकेमें लिखी हुई मिली है जिसके कर्ता कोई चन्द्र नामक कवि हैं। उसमें लिखा है कि जब सांगानेरमें नरेन्द्रकीर्ति भट्टारकका चातुर्मास था तब उनके व्याख्यानके समय अमरा (भौंसा) गोदीकाका पुत्र, जो धर्मसिद्धान्त पढ़ा हुआ था, बीचबीचमें बहुत बोलता था तब उसे व्याख्यानमेंसे उठे मारकर निकाल दिया। इससे चिढ़कर उसने तेरह बातोंका उत्थापन करके तेरहपंथ चलाया। यह घटना कार्तिक अमावास्या सं० १७०५ की है[1]।

१—संवत सोलहसै पचोत्तरे कार्तिकमास अमावस कारी।
कीर्ति नरेन्द्र भट्टारक सोभित चातुर्मास सांगानेरि भारी॥
गोदीकाको ढमरो अमरेसुत, शास्त्रविवेक पढ़ायो भारी।
बीच ही बीच बखानमें बोलत मारि निकार दियो गुरु भारी॥ १
तरि तेरह बात उथापि धरी, इह आदि अनादिको पंथ निवारयो।
लिखुके मारे भरोस्यो क्यौं रोकन ऐसे तमोलस पंथ (?) पुकारयो ॥ २
पागरस्या मानि जिनागमसे सिवारि किए ताके कुभाव बगरि न माने गुरु कटोकों।
बढ्यो दंभ घर्ट फिरे ठठ ही विराग भरें जाके मांहि रीत आनहार कुलटीकों।

मिथ्यात्वखंडन और तेरहपंथखंडनमें भी इस घटनाका उल्लेख है। इतना अन्तर है कि उनमें तेरहपंथकी उत्पत्तिका समय १७०७ दिया है जब कि बखतरामने १६८३। यह अन्तर क्यों पड़ा? हमारी समझमें ये सब लेखक बहुत पीछे हुए हैं और उक्त घटना इन सबसे पहलेकी है, जो परम्परासे सुन-सुनाकर लिखी गई है। पर बखतका लिखा हुआ समय सत्यके अधिक नजदीक मालूम होता है, क्योंकि जिस अमर (भौंसा) गोदीकाके पुत्रको मन्दिरमेंसे निकाल देनेकी बात लिखी है उसका पूरा नाम जोधराज गोदीका है और उसके दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं एक सम्यक्त्व-कौमुदी कथा और दूसरा प्रवचनसार भाषा। दोनों ही ग्रन्थ पद्यबद्ध हैं। पहला १७२४ का लिखा हुआ है और दूसरा १७२६ का। दोनोंमें ही जोधराजने सांगानेरका निवासी और अमरका पुत्र बतलाया है। सम्यक्त्वकौमुदीमें लिखा है—

" अमरपूत जिनवर-भगत जोधराज कवि नाम।
वासी सांगानेरको करी कथा सुखधाम ॥
संवत् सत्तरहसौ चौबीस, फागुन वदि तेरस शुभ दीस।
सुखकारको पूरन भई, इही कथा समकित गुन ठई ॥
इति श्रीसम्यक्त्वकौमुदीकथायां साहजोधराजगोदीकाविरचितायां "

प्रवचनसारमें कहा है—

' संवत् सत्रहसै छबीस शुभ, विक्रम साक प्रमान।
भादव मासौ सुदि पंचमी पूरन ग्रंथ बखान ॥
सुनत धरम ही सुवचन, सब भूपनि सिर भूप।
मानसिंह जग सिंघसुत, राजसिंघ सुखरूप॥
ताके राज सुचैनसों, कियो ग्रंथ यह जोध।
सांगानेरि सुथानमें, हिरदे धारि सुबोध॥
इति श्रीप्रवचनसारसिद्धान्ते जोधराजगोदीकाविरचिते. "

---

१ – चन्द कविने अमरा गोदीकाका पुत्र लिखा है पुत्रका नाम नहीं दिया। पर बखतरामने अमरा भौंसा (पिता) को ही मन्दिरसे निकाल देनेकी बात लिखी है। भौंसा खण्डेलवालोंका एक गोत्र है।

२ – महावीरजी क्षेत्रकमेटी जयपुरद्वारा प्रकाशित प्रशस्ति-संग्रह, पृष्ठ २६१-२६२। ३—प्रशस्तिसंग्रह पृ २१७-१८।

प्रवचनसारमें लिखा है कि पं० हेमराजजीने संस्कृतटीकाको देखकर तत्त्वदीपिका नामकी अतिशय सुगम वचनिका लिखी और उसके आधारसे फिर मैंने 'किए कवित्त सुखधाम।' इससे मालूम होता है कि जोधराज पं० हेमराजजीके ही समान अध्यात्मी थे और इसलिए व्याख्यानमें तर्क-वितर्क करनेसे उनका अपमान किया गया होगा।

इससे मालूम होता है कि जोधराज गोदीकाके समयमें संवत् १७२ के आसपास ही यह घटना घटित हुई होगी। भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति शायद आमेरकी गद्दीके ही भट्टारक होंगे। तेरापंथका चलाया हुआ समय १७०१ गलत जान पड़ता है।

जोधराज गोदीकाके प्रवचनसारके अन्तमें एक सवैया दिया हुआ है, जो बहुत विचारणीय है —

कोई देखी नतपाख जीवाहनि मानत है,
कोई छत्री पिग सीखमलों कहे भेद है।
कोई कहें साखको कबीरपथ कोई गावै,
कोई दादूपंथी होइ परे मोहफेरा है॥
कोई ल्यावे पीर माने, कोई पंथी नानकके,
कोई कहें महाप्रभु महाराज चेरा है।
याही भांत पंथमें भरमि रह्यो सबै लोक,
कहे जोध भयो जिन तेरापंथ डेरा है॥

१— वा टीकाकों देखिके हेमराज सुखधाम।
करी वचनिका अति सुगम, तत्त्वदीपिका नाम।
देखि वचनिका हरखियो, जोधराज कवि नाम।

२—पं० हेमराजजीके चौरासी बोल की एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके भंडारमें है जिसके अन्तमें लिखा है— 'लिखतं स्वामी वेणीदास औरंगाबाद मध्ये सं० १७२१ पौष सुदी पंचमी या पोथी साह जोधराज जी के सुपाठ सांगानेर मध्ये।'

३—आमेरके भट्टारकोंकी पट्टावलीसे नरेन्द्रकीर्तिका ठीक समय मालूम हो सकता है।

अर्थात् सारे लोग सती, क्षेत्रपाल आदिके बारह पर्वोंमें मग्न रहते हैं परन्तु तोलकमी कहता है कि हे जिनदेव, तुम्हारे बारह पर्वोंसे अलग 'तेरापंथ' तेरा है।

यद्यपि तेरहपन्थकी यह व्युत्पत्ति भी उसी ढंगकी और कल्पनाप्रसूत है जिस तरह केसर चढ़ाना आदि तेरह बातोंके छोड़नेकी या बारह अध्यात्मियोंके साथ तेरहवें अमरा भौंसाके मिल जानेकी परन्तु पूर्वोक्त सवैया बतलाता है कि सं० १७२१ में जोधराजके प्रवचनसारकी रचनाके समय अध्यातम-मत तेरापंथ कहलाने लगा था और यह अध्यात्म-मत वही था जिसे बनारसी आदिने आगरेसे चलाया था।

अध्यात्ममत और तेरापंथ

अध्यात्ममत और तेरापंथ दोनों एक ही हैं। ऐसा जान पड़ता है कि अध्यात्ममत ही किसी कारण तेरापंथ कहलाने लगा है। श्वेताम्बर विद्वानोंने तो इस अध्यात्ममत ही कहा है तेरापंथ नहीं परन्तु दिगम्बरोंने तेरापंथ कहा है, साथ ही यह भी बतलाया है कि यह पहले आगरेमें चला, वहीं किसीसे अध्यात्म-ग्रन्थ सुनकर लोग अध्यात्मी बन गए और तेरापंथी हो गये। तेरापंथ नामकी अनेक व्युत्पत्तियाँ बतलाई गई हैं, परन्तु समाधानयोग्य उनमें एक भी नहीं है।

यद्यपि प्रारंभमें इसके अनुयायी श्वेताम्बर सम्प्रदायके ही अधिक थे परन्तु उनमें जो विचार-क्रान्ति हुई थी वह जान पड़ता है राजमल्लजीकी समयसारकी बालावबोधटीकाके कारण हुई थी और दूसरे अध्यात्म ग्रन्थ भी जिनकी चर्चा उनकी ज्ञानगोष्ठियोंमें होती थी दिगम्बर सम्प्रदायके थे इस लिए श्वेताम्बर विद्वानोंको इसे दिगम्बर ठहराने और विरोध करनेमें सुगमता हो गई। इस विरोधमें जो कुछ लिखा गया है उसका अधिकांश उन्हीं मान्यताओंको लेकर है जिनमें दिगम्बर और श्वेताम्बरोंमें मतभेद है और अध्यात्मसे जिनका बहुत ही कम सम्बन्ध है। वास्तवमें देखा जाय तो अध्यात्म ज्ञानोंका समन्वय एकसा है। स्त्रीमुक्ति केवलिभुक्ति आदि विवादग्रस्त बातोंमें अध्यात्मी पड़े ही नहीं। उन्होंने तो जैनधर्मके मूल आध्यात्मिक स्वरूप पकड़नेकी ही चेष्टा की थी। उस समय यतियों और भट्टारकोंकी कृपासे बाहरी क्रियाकाण्ड और आडम्बरोंमें छुप गया था। उन्हें जैनधर्मकी दृढ़ प्रतीति थी, पर वे न

प्रवचनसारमें लिखा है कि पं. हेमराजजीने संस्कृतटीकाको देखकर तत्त्वदीपिका नामकी अतिशय सुगम वचनिका लिखी और उसके आधारसे फिर मैंने किए कवित्त सुखधाम। इससे मालूम होता है कि जोधराज पं. हेमराजजीके ही समान अध्यात्मी थे और इसलिए व्याख्यानमें तर्क-वितर्क करनेसे उनका अपमान किया गया होगा।

इससे मालूम होता है कि जोधराज गोदीकाके समयमें संवत् १७२ के आसपास ही यह घटना घटित हुई होगी। भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति बहुत करके आमेरकी गद्दीके ही भट्टारक होंगे। बखतरामका बतलाया हुआ समय १७०१ गलत जान पड़ता है।

जोधराज गोदीकाके प्रवचनसारके अन्तमें एक सवैया दिया हुआ है, जो बहुत विचारणीय है —

कोई भेषी लटपाट मोहपासनि मानत है
कोई छती बिन छीलमतों करे भेष है।
कोई करै जाको कबीरपंथ धर्म गावै,
कोई दादूपंथी होइ धरै मोरभेष है॥
कोई खावे पीर मानै, कोई पंथी नानकके,
कोई कहैं महाप्रभु महाराज भेष है।
याही भारा पंथमें भरमि रहो सबै लोक,
कहै जोध अहो जिन तेरापंथ तेरा है॥

१— जा टीकाकौं देखिकै, हेमराज सुखधाम।
करी वचनिका अति सुगम तत्त्वदीपिका नाम।
देखि वचनिका हरखिकै, जोधराज कवि नाम।

२—पं. हेमराजजीके चौरासी बोल की एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके भंडारमें है, जिसके अन्तमें लिखा है—"लिखितं स्वामी केसौदास अमरगरमध्ये मिति सं १७२१ पोष सुदी पंचमी या पोथी साह जोधराज जी के सुगम सांगानेर मध्ये।"

३—आमेरके भट्टारकोंकी पट्टावलीसे नरेन्द्रकीर्तिका ठीक समय मालूम हो सकता है।

अर्थात् सारे लोग छली, क्षेत्रपाल आदिके बारह पन्थोंमें भ्रम रहे हैं, परन्तु जोधकवि कहता है कि हे जिनदेव, उक्त बारह पंथोंसे अलग 'तेरापंथ' तेरा है।

यद्यपि तेरहपंथकी यह व्युत्पत्ति भी उसी तरहकी और कल्पनाप्रसूत है जिस तरह कवर चढ़ाना आदि तेरह बातोंके छोड़नेकी या बारह अध्यात्मियोंके साथ तेरहवें अमरा भौंसाके मिल जानेकी; परन्तु पूर्वोक्त सवैया बतलाता है कि सं. १७२१ में जोधराजके प्रवचनसारकी रचनाके समय अध्यात्म-मत तेरापंथ कहलाने लगा था और यह अध्यात्म मत वही था जिसे बखतराम आदिने आगरेसे चला बतलाया है।

अध्यात्ममत और तेरापंथ

अध्यात्ममत और तेरापंथ दोनों एक ही हैं। ऐसा जान पड़ता है कि अध्यात्ममत ही किसी कारण तेरापंथ कहलाने लगा है। श्वेताम्बर विद्वानोंने तो इसे अध्यात्ममत ही कहा है तेरापंथ नहीं परन्तु दिगम्बरोंने तेरापंथ कहा है, साथ ही यह भी बतलाया है कि यह पहले आगरेमें चला, वहीं किसीसे अध्यात्म-ग्रन्थ सुनकर लोग अध्यात्मी बन जाए और तेरापंथी हो गये। तेरापंथ नामकी अनेक व्युत्पत्तियाँ बतलाई गई हैं, परन्तु समाधानयोग्य उनमें एक भी नहीं है।

यद्यपि प्रारंभमें इसके अनुयायी श्वेताम्बर सम्प्रदायके ही अधिक थे परन्तु उनमें जो विचार-क्रान्ति हुई थी वह जान पड़ता है राजमल्लजीकी समयसारकी बालबोधटीकाके कारण हुई थी और दूसरे अध्यात्म ग्रन्थ भी जिनकी चर्चा उनकी ज्ञानगोष्ठियोंमें होती थी दिगम्बर सम्प्रदायके थे इस लिए श्वेताम्बर विद्वानोंको इसे दिगम्बर ठहराने और विरोध करनेमें सुगमता हो गई। इस विरोधमें जो कुछ लिखा गया है उसका अधिकांश उन्हीं मान्यताओंको लेकर है जिनमें दिगम्बर और श्वेताम्बरोंमें मतभेद है और अध्यात्मसे जिनका बहुत ही कम सम्बन्ध है। वास्तवमें देखा जाय तो अध्यात्म दोनोंका लगभग एकसा है। स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि विवादग्रस्त बातोंमें अध्यात्मी पड़े ही नहीं। उन्होंने तो जैनधर्मके मूल आध्यात्मिक रूपको पकड़नेकी ही चेष्टा की जो उस समय यतियों और भट्टारकोंकी कृपासे बाहरी क्रियाकाण्ड और आडम्बरोंमें छुप गया था। उन्हें जैनधर्मकी दृढ़ प्रतीति थी, पर वे न

प्रवचनसारमें लिखा है कि पं. हेमराजजीने रूपचंदजीको देखकर उस दीपिका नामकी अतिशय सुगम वचनिका लिखी और उनके आग्रहसे फिर मैंने[1] 'किए कवित सुखधाम।' इससे मालूम होता है कि कौरपाल पं. हेमराजजीके ही समान अध्यात्मी थे और इसलिए व्याख्यानमें तर्क-वितर्क करनेसे उनका अपमान किया गया होगा।

इससे मालूम होता है कि कौरपाल गोदीकाके समयमें संवत् १७२ के आसपास ही यह घटना घटित हुई होगी। भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति शुरू करके आमेरकी गद्दीके ही भट्टारक होंगे। बखतरामका कथनसा हुआ समय १७०१ सत्य जान पड़ता है।

कौरपाल गोदीकाके प्रवचनसारके अन्तमें एक सवैया दिया हुआ है, जो बहुत विचारणीय है —

> कोई ऐसी श्वेतपाट पीताम्बरनि मानत है
> कोई रक्ती पिय सीतअम्बरी कहे मेरा है।
> कोई कहै छापमें कबीरपंथ कोई गनि,
> कोई दादूपंथी होइ परे मोहजेय है ॥
> कोई ख्वाजे पीर माने, कोई पंथी नानकके,
> कोई कहै महाबाहु महाराज मेरा है।
> याही भरत पंथमें भरमि रह्यो सबै लोक,
> कहै कौर भरो जिन तेरापंथ तेरा है ॥

१— या टीकाकों देखिके, हेमराज सुखधाम।
करी वचनिका अति सुगम, तत्त्वदीपिका नाम।
देखि वचनिका हरखियो कौरपाल कवि नाम।

२—पं. हेमराजजीके चौरासी बोल की एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके भंडारमें है जिसके अन्तमें लिखा है—"लिखतं स्वामी जेतसिंह अमरचंद मिति सं. १७२१ पोष सुदी पंचमी या पोथी साह कौरपाल जी के सुपठनार्थ सांगानेर मध्ये।"

३—आमेरके भट्टारकोंकी पट्टावलीसे नरेन्द्रकीर्तिका ठीक समय मालूम हो सकता है।

अवश्य ही इनमेंके नाममाला और अनेकार्थकोष धनंजयके ही होंगे। क्यों कि उनकी श्लोकसंख्या दो सौ करीब है, जो वास्तवमें धनंजय नाममालाकी श्लोकसंख्या है[1]। आगे संवत् १६७१ में जौनपुरके नवाब किलीच खाँके बड़े बेटेको उन्होंने नाममाला और श्रुतबोध पढ़ाया था। इससे भी मालूम होता है कि वे धनंजयनाममालासे अच्छी तरह परिचित थे। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यह नाममाला धनंजय नाममालाका अनुवाद है। हमने दोनोंको मिलान करके देखा तो मालूम हुआ कि इसमें न संस्कृत नाममाला तथा अनेकार्थ नाममालाका शब्दक्रम है और न संस्कृतके सभी शब्द लिये हैं। बल्कि जैसा कि उन्होंने कहा है इसमें शब्दसिन्धुका मन्थन करके और यथास्थित शब्दोंका अर्थ-विचार करके भाषा, प्राकृत और संस्कृत तीनोंके शब्द लिये हैं।

२ नाटक समयसार—आचार्य कुन्दकुन्दके प्राकृत ग्रंथ समयसारप्राभृत पर अमृतचन्द्रसूरि नामकी विशद टीका है जिसके कर्ता अमृतचन्द्र हैं। इस टीकाके अन्तर्गत मूल गाथाओंका भाव विशद करनेके लिए, उन्होंने जगह जगह स्वरचित संस्कृत पद्य दिये हैं जो 'कलशा' कहलाते हैं। उनकी संख्या २७७ है और वे समयसारकलशा नामसे स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें भी मिलते हैं।

१—पंडित देवदत्तके पास। किछु विद्या तन करी अभ्यास। १६८
पढ़ी नाममाला दै ठाई। और अनेकारथ अवलोइ॥

२—कछु नाममाला पढ़े छन्दकोश श्रुतबोध।
कर कृपा नित एकसी, कबहुं न होइ विरोध॥ ४२९ अ. क.

३—यह नाममाला वीर सेवामन्दिर दिल्लीसे प्रकाशित हो चुकी है।

४—शब्दसिन्धु मंथान करि, प्रगट सु अर्थ विचारि।
भाषा करे बनारसी निज मति गति अनुसारि॥ २
भाषा प्राकृत संस्कृत त्रिविध सुशब्द समेत।
...ानि' ...ानि' 'सुबान ... ए पद्यपूरनदेत॥ ३

५—समयसार (कलशा) के १ अंक हैं और उनमें क्रमसे ४६ ५४ ११, १२ ८, १ १७ ११ और ८५ इस तरह सब मिलाकर २०७ संस्कृत पद्य हैं, जब कि बनारसीके नाटक समयसारमें ७२७ छन्द।

श्वेताम्बर थे और न दिगम्बर। म० मेघविजयजीने अपने युक्तिप्रबोधमें (१९ वीं गाथाकी टीकामें) कहा है कि "अध्यात्मी या बाणारसीय कहते हैं कि हम न दिगम्बर हैं और न श्वेताम्बर, हम तो तत्त्वार्थी—तत्त्वकी खोज करनेवाले—हैं। इस महीमण्डलमें मुनि नहीं हैं। भट्टारक आदि जो मुनि कहलाते हैं वे गुरु नहीं हैं। अध्यात्म मत ही अनुसरणीय है आगमिक पन्थ प्रमाण नहीं है, साधुओंके लिए वनवास ही ठीक है।"

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अध्यात्मी न दिगम्बर थे और न श्वेताम्बर। वे अपनेको केवल जैन समझते थे और उनकी दृष्टिमें श्वेताम्बर यति मुनि और दिगम्बर भट्टारक दोनों एक-से थे जैनत्वसे दूर थे और इसीलिए इन दोनों सम्प्रदायोंके धनी धोरियोंने अपने स्वच्छन्द शासनोंकी नींव डिगती देखी और उनकी रक्षाका प्रबन्ध किया।

श्वेताम्बरोंके समान दिगम्बर सम्प्रदायके विचारशील लोगोंने भी इस अध्यात्म मतको अपनाया और उनमें यह तेरापंथ नामसे प्रचलित हुआ। आगरा, सांगानेर जयपुर आदिमें यह पहले फैला और उसके बाद धीरे धीरे सर्वत्र फैल गया।

बनारसी-साहित्यका परिचय

१-नाममाला—बनारसीदासजीकी उपलब्ध रचनाओंमें यह सबसे पहली है जो आश्विन सुदी १० संवत् १६७० को समाप्त हुई थी। अपने परम विचक्षण मित्र नरोत्तमदास खोबरा और थानमल खोबराके अनुरोधसे उनकी इसमें प्रवृत्ति हुई थी। धनंजयकी संस्कृत नाममालाके ढंगका यह एक छोटा-सा पद्यबद्ध शब्दकोष है और बहुत ही सुगम है।

अपनी आत्मकथामें उन्होंने लिखा है कि जब उनकी अवस्था चौदह वर्षकी थी तब पं० देवदत्तके पास उन्होंने नाममाला और अनेकार्थकोष पढ़ा था।

१—मित्र नरोत्तम थान परम विचक्षण धरमनिधि (धन)।
तासु वचन परवान, कियो निबंध विचार मन॥ १७
सोरहसै सत्तरि समै असो मास सित पच्छ।
विजै दसमि ससिवार तह स्रवन नछत्र परतच्छ॥ १७१
दिन दिन तेज प्रताप जय सदा अखंडित आन।
पातसाह थिर नूरदी, जहांगीर सुलतान॥ १७२ — नाममाला

‘यह मंदिर यह कलश कहावे’—समयसार मन्दिर है और यह उसका कलश है। अमृतचन्द्रसूरिकी टीकामें समयसारको शान्तरसका नाटक कहा है और उसमें जीव अजीवके स्वांग दिखलाए हैं और इसीलिए बनारसीदासने इसका नाम ‘नाटक समयसार’ रक्खा है। कलशोंपर भट्टारक शुभचन्द्र (१६ वीं शताब्दि) की एक ‘परमाध्यात्मतरंगिणी’ नामकी संस्कृत टीका भी है। पाण्डे राजमल्लजीने कलशोंकी एक बालबोधिनी भाषाटीका भी लिखी थी, जो बनारसीदासजीको प्राप्त हुई थी।

उनके आगरानिवासी पाँच मित्रोंने कहा कि—

> नाटकसमैसार हितजीका, सुगमरूप राजमलटीका।
> कवितबद्ध रचना जो होई, भाषा ग्रंथ पढ़ै सब कोई॥ १४

और तब बनारसीदासजीने इस ग्रन्थकी रचना की।

इसमें ११ दोहा-सोरठा, २४५ इकतीसा कवित्त, ८६ चौपाई, ३७ तेईसा सवैया, २ छप्पय, १८ घनाक्षरी, ७ अडिल्ल और ४ कुंडलिया, इस तरह सब मिलाकर ७२७ पद्य हैं, जब कि मूल कलशा २७७ हैं। क्योंकि इसमें मूल ग्रन्थके अभिप्रायोंको खूब स्वतन्त्रतासे एक तरहकी मौलिकता प्रदान किया है, इसलिए स्वाभाविक है कि पद्यपरिमाण बढ़ जाय। इसके सिवाय ग्रन्थके चौदहवें गुणस्थान अधिकारको स्वतन्त्र रूपसे लिखा है जिसमें १११ पद्य हैं। फिर अन्तमें उपसंहाररूप ४ पद्य और हैं। प्रारम्भमें भी उत्थानिका रूप ५ पद्य हैं।

इस तरह कुन्दकुन्दके प्राकृत समयपाहुड, अमृतचन्द्रके समयसारकलश और राजमल्लजीकी बालबोध भाषाटीकाके आधारसे इस मनोरम नाटक समयसारकी रचना हुई है और इस दृष्टिसे यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है फिर भी एक मौलिक ग्रन्थ जैसा मालूम होता है। कहीं भी क्लिष्टता, भावहीनता और परमुखापेक्षा नहीं दिखलाई देती।

अर्थात् बनारसीदासजीने समयसारके कलशोंका अनुवाद ही नहीं किया है, उसके मर्मको अपने ढंगसे इस तरह व्यक्त किया है कि वह बिलकुल स्वतंत्र जैसा मालूम होता है और यह कार्य वही लेखक कर सकता है जिसने उसके मूलभावको अच्छी तरह हृदयंगम करके अपना बना लिया है। हम नीचे इस

यहाँके कुछ कलश राजमलजीकी बालबोधिनी टीका और समयसारके पद्य पाठकोंके सामने उपस्थित कर रहे हैं। बालबोधिनी टीकाकी भाषा कैसी थी, सो भी इससे मालूम हो जायगा और यह भी कि उसका कितना सहारा लिया गया है—

कलश—नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥ १ ॥

बा० बो०—समयसाराय नमः। समयसार कहिये पदार्थ, पदार्थ संज्ञा छ। शुद्धस्वरूप कहु तिहिसे यो अर्थ ठहरायो जु कोई जानस्यो वस्तुरूप होहि म्हाँको नमस्कार। सो वस्तुरूप किसो छै चित्स्वभावाय चित् कहिये चेतना सोई छै स्वभाव सर्वस्व तिहिको तिहिंपै म्हाको नमस्कार। इहि विशेषण कहतां दोइ समाधान होहि छै। एक तो भाव कहतां पदार्थ ते पदार्थ केई चेतन छै केई अचेतन छै। तिहि माहे चेतनपदार्थ नमस्कार करिवा योग्य छै इसो अर्थु उपजै छै। दूजो समाधान इसो जु यद्यपि वस्तुको गुण वस्तु ही माहि गर्भित छै। वस्तु गुण एक ही सत्व छै। तथापि भेदु उपजाइ कहिवा ही योग्य छै। विशेषण कहिवा पाखै वस्तुको ज्ञानु उपजै नाही। पुनः किं विशिष्टाय भावाय और किसो छै भाव, समयसाराय। यद्यपि समय शब्दका बहुत अर्थ छै तथापि एनै अवसर समय शब्दै सामान्यपनै जीवादि सकल पदार्थ जानिवा। तिहि माहे जु कोई सार छै सार कहतां उपादेय छै जीव वस्तु तिहिको म्हाको नमस्कार। इहि विशेषणको यो भावार्थ सारपनो जानि चेतन पदार्थ है नमस्कार प्रमाण राख्यो, असार पदार्थ जानि अचेतन पदार्थको नमस्कार निषेध्यो। आगे कोई वितर्क करिसी जु सब ही पदार्थ आपना आपना गुणपर्याय विराजमान छ स्वाधीन छै, कोई किसीकै आधीन नहीं जीव पदार्थको सारपनो क्यों घटे छै। तिहिको समाधान करिवाकहु दोइ विशेषण कह्या। पुनः किं विशिष्टाय भावाय और किसो छै भाव, स्वानुभूत्या चकासते सर्वभावान्तरच्छिदे। एनै अवसर स्वानुभूति कहतां निराकुलत्व लक्षण शुद्धात्मपरिणमनरूप अतीन्द्रिय सुख जानिवो तिहिरूप चकासते कहतां अवस्था है तिहिकी इसो छै। सर्वभावान्तरच्छिदे सर्वभाव कहतां अतीत अनागत वर्तमान पर्यायसहित अनंत गुण विराजमान जे त जीवादिपदार्थ तिहिको अंतर छेदी एक समय माहि युगपत् प्रत्यक्षपनो जाननशील जु कोई इस जीव वस्तु तिहिको म्हाको नमस्कार। इस जीवकहु सारपनो घटे छ। सार

अपेक्षा छै। तिहि सुनतां जीवादि पदार्थको सत्यश्रद्धान क्यो उपजै छै त्यो ही वानिम्यो। वाणीको पूज्यपणो भी छै। किं विशिष्टस्य प्रत्यगात्मनः किसो छै अथवा चिद्रूप। अनन्तधर्मणः अनंत कहतां अति बहुत छै धर्म कहतां गुण जिहिको इसो छै, भावार्थ इसो जो कोई मिथ्यावादी कहै छै परमात्मा निर्गुण छै गुण विनाश हुवा परमात्मापणो होय छै सो इसो मानिबो झूठो छै। जिहिते गुण विनसां द्रव्यको भी विनाश छ।

सवा०—जग परे रहे जोगसौ भिन्न अनंत गुनातम केवलग्यानी।
तासु हृदै द्रह सौं निकसी, सरिता सम ह्वै श्रुतसिन्धु समानी॥
यातैं अनंत नयातम लच्छन सत्यस्वरूप सिधंत बखानी।
बुद्धि लखै न लखै दुरबुद्धि, सदा जगमांहि जगै जिनवानी॥ १ मोक्षद्वार

पृथ्वी—क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत्॥ १ साध्यसाधकद्वार

खं टी०—भावार्थ इसो—हहि आत्मको नाम नाटक समयसार छै, जिहिते यथा नाटकविषै एक भाव अनेकरूप करि दिखाइये छै तथा एक जीव द्रव्य अनेक भावकरि साधिये छै। मम तत्त्वं सहजं, कहतां म्हारो ज्ञानमात्र जीव वस्तु सहज ही इसो छै, किसो छ। क्वचित् मेचकं लसति—कहतां कर्मसंयोगपणो रागादिभावरूप परिणतिके देखतां अशुद्ध इसो आस्वाद आवे छै। पुनः कहतां एतावन्मे इसो ही छै यो नहीं छै, इसो पुनि छै। क्वचित् अमेचकं, कहतां एक वस्तुमात्र रूप देखतां शुद्ध छै एतावन्मन। इसो पुनि न छै तो किसो छै। क्वचित्मेचकामेचकं—कहतां अशुद्ध परिणतिरूप, वस्तुमात्ररूप एक ही बारके देखतां अशुद्ध पुनि छै शुद्ध पुनि। इसो दोऊ विकल्प घटै छै इसो क्यो छै। तथापि कहतां तो पुनि अमलमेधसां तत् मनः न विमोहयति—अमलमेधसां कहतां सम्यग्दृष्टि जीवनको, तत् मनः कहतां ज्ञानस्वरूप छै जो बुद्धि, न विमोहयति कहतां संशयरूप नहीं करे छै।

कायासे विचारै प्रीति मायाहीसौं हारि जीति, लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी।
चुंगलके जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि, त्यौंही पाय गाड़ै पै न छांड़ै टेक पकरी॥
मोहकी मरोरसौं भरमकौ न ठौर पावै, धावै चहुं ओर ज्यौं बढ़ावै जाल मकरी।
ऐसे दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि, फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी॥
बात सुनि चौंकि उठै बातहीसौं भौंकि उठै, बातसौं नरम होइ बातहीसौं अकरी।
निंदा करै साधुकी प्रसंसा करै हिंसककी, साता मानै प्रभुता असाता मानै फकरी॥
मोख न सुहाइ दोष देखै तहां पैठि जाइ, कालसौं डराइ जैसे नाहरसौं बकरी।
ऐसी दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि, फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी॥

केइ कहैं जीव छनभंगुर, केई कहैं करम करतार।
केइ करमरहित नित जंपहिं, नय अनंत नाना परकार॥
जे एकांत गहैं ते मूरख, पंडित अनेकांत पख धार।
जैसे भिन्न भिन्न मुकतागन, गुनसौं गहत कहावै हार॥
यथा सूतसंग्रह बिना, मुकतमाल न होइ।
तथा स्यादवादी बिना, मोख न साधै कोइ॥ ४ स वि द्वार

इन सब उदाहरणोंसे समझमें आ जाता है कि नाटक समयसार भावानुवाद होकर भी अनेक अंशोंमें मौलिक है।

इस ग्रन्थका प्रचार श्वेताम्बर सम्प्रदायमें अधिक रहा है और अबसे कोई अस्सी बरस पहले (दिसम्बर सन् १८७६ में) इसे भीमसी माणिक नामके श्वेताम्बर सज्जनने ही गुजराती टीकासहित[1] प्रकाशित किया था। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भी अनेक श्वेताम्बर साधुओंकी लिखी हुई मिलती हैं।[2] दिगम्बर सम्प्र

१—यह टीका मुनि रूपचन्दजीकी हिन्दी टीकाके आधारसे लिखी गई थी।

२— विशाल भारत मार्च १९४७ में मुनि कान्तिसागरजीका 'कविवर बनारसी-दास और उनके ग्रन्थोंकी हस्तलिखित प्रतियाँ' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें जिन प्रतियोंका परिचय दिया है वे प्रायः सभी श्वे० मुनियों या आचार्यों द्वारा लिखी गई हैं। नाटक समयसारकी एक प्रति खरतरगच्छीय [illegible] के शिष्य [illegible] ने सं० १७१० में

संवत् १६७ (अ क पद्य ३८६–८७ के अनुसार)

१—अजितनाथके छन्द
२—नाममाला[1]

संवत् १६८ (५९१ ९७)

३—ज्ञानपचीसी
४—ध्यानबत्तीसी
५—अध्यात्मके गीत
६—शिवमन्दिर (कल्याणमंदिर)

सं १६८–९९ के बीच (६९५ २८)

७—सूक्तिमुक्तावली
८—अध्यातमबत्तीसी
९—पैड़ी (मोक्षपैड़ी)
१०—फाग धमाल (अध्यातम फाग)
११—(भव) सिन्धुचतुर्दशी
१२—प्रास्ताविक फुटकर कविता
१३—शिवपचीसी
१४—सहस्रअठोत्तर नाम (सहस्रनाम)
१५—करमछत्तीसी
१६—झूलना (परमार्थ हिंडोलना)
१७—अन्तर रावन राम (राग सारंग)
१८—दोय विध भाने (राग गौरी)
१९—दो वचनिका (परमार्थ वचनिका, उपादान निमित्तकी चिट्ठी)
२०—अष्टक गीत (शारदाष्टक)
२१—अवस्थाष्टक
२२—षट्दर्शनाष्टक
२३—गीत बहुत (अध्यात्मपदपंक्तिके ११ पद)

१—'नाममाला' बनारसीविलासमें नहीं दी गई है, अलग है।
२—जयपुरसे प्रकाशित बनारसीविलासमें ७ ही पद छपे हैं, शेष छूट गये हैं।

४८ वैद्य आदि भेद

४९ निमित्त उपादानके दोहे

५ मल्हार (सोरठ राग)

अध्यात्मपदपंक्तिमें २१ पद हैं। उनमें भैरव, रामकली बिलावल तो पद हैं, पर १७ वाँ आसावरी है जो दोनोंमें है। [illegible] भैरव आदि नाम तो हैं पर आसावरी नहीं है। सो उस पदपंक्तिसे अलग गिनना चाहिए। इन सब रचनाओंके नाम अर्धकथानकमें नहीं दिये, पर यदि हम नीचे लिखी पंक्तियोंके 'और' 'अनेक', और बहुत के भीतर इन सबको समझ लें, तो इनका रचनाकाल १६८ से १६९२ तक मान लेना अनुचित न होगा—

> तब फिर और कवीसुरी, करी अध्यातममाहिं। ४१९
> अरु इस बीच कवीसुरी, कीनी बहुरि अनेक। ६२५
> ख्याल गीत बहुत किए, कहौं कहाँलौं सोइ ॥ ६२८

१ जिनसहस्रनाम—विष्णुसहस्रनाम शिवसहस्रनाम आदिके समान जिनसेन, हेमचन्द्र, आशाधर आदिके बनाये हुए अनेक जिनसहस्रनाम हैं, पर वे सब संस्कृतमें हैं। इनका नित्य पाठ करनेकी पद्धति है। यदि यह भाषामें हो, तो पाठ करनेवालोंको ज्यादा श्रम हो असंस्कृतज्ञ भी जिन-गुणोंका स्मरण सुगमतासे कर सकें, इस सदाशयसे यह रचा गया है। भाषामें यह शायद उनका सबसे पहला प्रयत्न है। इसमें भाषा, प्राकृत और संस्कृत तीनों प्रकारके शब्द हैं और कहा है कि एकार्थवाची शब्दोंकी द्विरुक्ति हो, तो दोष न समझना चाहिए। इसमें छप्पय हैं और दोहा, चौपई पद्धरी आदि सब मिलकर १ १ छन्द हैं।

१—केवल पदमहिमा कहौं करौं सिद्ध गुनगान।
भाषा संस्कृत प्राकृत, त्रिविध शब्द परमान ॥ २
एकारथवाची शब्द, अरु द्विरुक्ति जो होइ।
नाम कथनके कवितमें, दोष न लागै कोइ ॥ ३

२ सूक्त-मुक्तावली—यह इसी नामके संस्कृत ग्रन्थका जिसे 'सिन्दूर प्रकर' भी कहते हैं पद्यानुवाद है। मूल ग्रन्थके कर्ता सोमप्रभ हैं, जो श्वेताम्बर थे। बनारसीदासने अपने मित्र कुँवरपालके साथ मिलकर इसे बनाया है। इसके ४८ वें पद्य तकके २१ पद्योंमें तो 'बनारसीदास' नाम दिया है और उनके बाद ५१ ६४, ६७, ७८ ८ और ८२ नम्बरके ६ पद्योंमें कौंर या कुँवरपाल। यह एक तरहका सुभाषित है और सबके लिए उपयोगी है।

३ ज्ञान-बावनी—यह पीताम्बर नामक किसी सुकविकी रचना है और बनारसीविलासमें इसलिए संग्रह कर ली गई है कि इसमें बनारसीदासका गुन-कीर्तन किया गया है। यह स्वयं बनारसीकी रची हुई नहीं है।

४ वेदनिर्णयपंचासिका—इसमें चार अनुयोगोंको—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगको चार वेद बतलाया है और उनके कर्ता ऋषभदेवको ' आदिब्रह्मा ' कहकर कुलधर्म और कुलकरो आदिका वर्णन रि ष के अनुसार किया है। ५१ दोहा चौपाई, कवित्त आदि छन्द हैं।

५ त्रेसठशलाका पुरुषोंकी नामावली—दोहा सोरठा वस्तु छन्दोंमें शलाका-पुरुषोंके नाम दिये हैं। प्रभु मल्लिनाथ त्रिभुवनतिलक पदसे मालूम होता है कि रचयिता मल्लिनाथ तीर्थंकरको स्त्री नहीं मानते।

६ मार्गणाविधान—इसमें १४ मार्गणा और उनके ६२ भेदोंका चौपाई छन्दमें वर्णन है।

७ कर्मप्रकृतिविधान—१७५ पद्योंका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मालूम होता है। यह गोम्मटसार कर्मकाण्डके आधारसे लिखा गया है और इसमें आठों कर्मोंकी प्रकृतियोंका स्वरूप बहुत सुगम पद्धतिसे समझाया है। यह कविकी अन्तिम रचना संवत् १७ के फागुन मासकी है।

१—ये अजितदेवके प्रशिष्य और विजयसेनके शिष्य थे। अजितदेवको जैन-धर्म-धुरन्धर दिगम्बर विशेषण अनुवादकोंने अपनी तरफसे जोड़ दिया है।

२—कुँवरपाल बनारसी मित्र युगल इकचित्त।
तिन गिरंथ भाषा कियो, बहुविध छंद कवित्त॥

८ शिवमन्दिर (कल्याणमन्दिर)—यह कुमुदचन्द्रके संस्कृत स्तोत्रका भावानुसार चौपई छन्दमें किया गया है, जो बहुत सुगम और सुन्दर है। इसका बहुत प्रचार है।

९ साधुवन्दना—२८ मूलगुणोंका २ चौपई और ४ दोहामें वर्णन है जिससे स्पष्ट होता है कि कवि उस समय भट्टारकों या यतियोंके प्रति श्रद्धालु नहीं हैं।

१० मोक्षपैड़ी—यह रचना इकतारा लेकर गानेवाले साधुओंके ढंगकी है जिसमें कुछ पंजाबी विभक्तियोंका उपयोग हुआ है।—

इक्कसमै रुचिवंतनो गुरु अक्खै सुन मल्ल।
जो तुझ अंदर चेतना वहै तुसाडी अल्ल ॥ १
ए जिनवचन सुहावने सुन चतुर छयल्ल।
अक्खै रोचक सिक्खनै गुरु दीनदयल्ल ॥
इस बुझै बुधि लक्खनै, नहि रहै मयल्ल।
इसदा मरम न जानई, सो दुपद बयल्ल ॥ २
घर सद्गुरुकी देशना, कर आतमकी वाडि।
उसकी पैड़ी मोक्खकी, करम कपाट उघाडि ॥ २१

११ करम-छत्तीसी—३६ दोहोंमें जीव और अजीवका वर्णन बड़ी मार्मिकतासे किया गया है और बतलाया है कि अजीव पुद्गलकी पर्याय ही कर्म है और जीव उनसे जुदा है। इनके भेदको समझना चाहिए। पुद्गलके संसर्गसे जीवकी कैसी दशायें होती हैं—

पुद्गलकी संगति करै, पुद्गल ही सौं प्रीत।
पुद्गलकौं आपा गनै, यहै भरमकी रीत ॥ १७
जे जे पुद्गलकी दशा, ते निज मानै हंस।
याही भरम विभावसौं, बढ़ै करमकौ वंश ॥ १८
ज्यौं ज्यौं करम विपाकवश, ठानै भ्रमकी मौज।
त्यौं त्यौं निज संपति दुरै, जुरै परिग्रह फौज ॥ १९
ज्यौं वानर मदिरा पियै, बीछी डंकित गात।
भूत लगै कौतुक करै, त्यौं भ्रमको उतपात ॥ २

भ्रम संनिकि-मूर्छासौं, लखै न सहज सुजीव ।
करमरोग समुझै नहीं, यह संसारी जीव ॥ २१

१२ ध्यान-बत्तीसी—इसमें पहले रूपस्थ, पदस्थ, पिंडस्थ और रूपातीत और फिर आर्त रौद्र आदि कुध्यानों और शुकल ध्यानोंका वर्णन है। अन्तमें कहा है—

शुकल ध्यान औषध लगै, मिटै करमको रोग ।
कोइला छांडै कालिमा, होत अगनि-संजोग ॥ ३१

इसके प्रारम्भमें गुरु भानुचन्द्रका स्मरण किया है।

१३ अध्यातम-बत्तीसी—३२ दोहोंमें चेतन जीव और अचेतन पुद्गलका भेद समझाया है—

चेतन पुद्गल यौं मिले, ज्यौं तिलमैं खलि तेल ।
प्रगट एकसे देखिए, यह अनादिको खेल ॥ ४
ज्यौं सुवरन पाषाणमैं, दही-दूधमैं घीव ।
पावक काठ-पखानमैं त्यौं शरीरमैं जीव ॥ ७
मतवादी जानै नहीं, देव धरम गुरु भेद ।
परचौ मोहके फंदमें, करै मोखको खेद ॥ ९
देव धरम गुरु हैं निकट, मूढ़ न जानै ठौर ।
बंधी दिष्टि मिथ्यातसौं, लखै औरकी और ॥ २२
भेषधारिकौं गुरु कहै, पुन्यवंतकौं देव ।
धरम कहै कुलरीतिकौं यह कुकर्मकी टेव ॥ २३

१४ ज्ञान-पचीसी—अपने मित्र उदयकरणके और अपने हितके लिए २५ दोहोंमें ज्ञानगम उपदेश दिया गया है—

सुर-नर तिरयक योनिमैं, नरक निगोद भ्रमंत ।
महामोहकी नींदसौं सोए काल अनंत ॥ १
जैसैं ज्वरके जोरसौं भोजनकी रुचि जाइ ।
तैसैं कुकरमके उदै धरमवचन न सुहाइ ॥ २

ज्यों सूप कुरके गए, रविसौं छेद अहार ।
अशुभ गए शुभके लगे जाने धर्मविचार ॥ ३

जैसें पवन झकोरतें, जलमें उठे तरंग ।
त्यों मनसा चंचल भई, परिग्रहके परसंग ॥ ४
जहाँ पवन नहिं संचरे, तहाँ न जलकल्लोल ।
त्यों सब परिगह त्यागसौं, मन-सर होइ अडोल ॥ ५

१५ शिवपचीसी—इसमें जीवको शिवस्वरूप बतलाया है और शिव या महादेवके निरूपणपरसे शंकर, शम्भु, त्रिपुरारि, मृत्युंजय आदि नामोंको सार्थक कहा है—

शिवस्वरूप भगवान अवाची शिवमहिमा अनुभवमति सांची ।
शिवमहिमा जाके घर भासी सो शिवरूप हुआ अविनाशी ॥ १
जीव और शिव और न होई, सोई जीव वस्तु शिव सोई ।
जीव नाम कहिए व्योहारी, शिवस्वरूप निहचै गुणधारी ॥ ४

१६ भवसिन्धु-चतुर्दशी—१४ दोहोंमें संसार-समुद्रको पारकर शिवद्वीपमें पहुँचनेपर जोर दिया है—

जैसें काहू पुरुषकों पार पहुँचवे काज ।
मारगमांहि समुद्र तहाँ कारणरूप जहाज ॥ १
तैसें समकितवंतको और न कछू इलाज ।
भवसमुद्रके तरनकों मन जहाजसौं काज ॥ २
मन जहाज घटमें प्रगट, भवसमुद्र घटमांहि ।
मूरख मरम न जानहीं बाहर खोजन जांहि ॥ ३

१७ अध्यातम फाग—इसमें १८ दोहे हैं और उनके पहले तीसरे चरणके अन्तमें 'हो' और चौथे चरणके बाद 'मन अध्यातम बिन क्यों पाइए' यह टेक रक्खी है—

विषम विरष पूरो भयो हो, आयो सहज वसंत ।
प्रगटी सुरुचि सुगंधिता हो मनमधुकर मयमंत ॥
मन अध्यातम बिन क्यों पाइए ॥ १

१८ सोलह तिथि—इसमें पड़िवा (प्रतिपदा) दूज, तीज आदिसे लेकर पूनो तककी तिथियोंका अर्थ परमार्थ दृष्टिसे बतलाया है—

परिवा प्रथम कला घट भागी, परम प्रतीत रीत रस पागी।
प्रतिपद परम मीत उपजावै, वही प्रतिपदा नाम कहावै॥ १
आठैं आठ महामद भंजै, अष्टसिद्धिरसिसौं नहिं रंजै।
अष्ट करममल मूल बहावै, अष्टगुणातम सिद्ध कहावै॥ ८

१९ तेरह काठिया—इसके प्रारंभमें कहा है—

जे बटपारे बाटमें, करैं उपद्रव जोर।
तिन्हें देस गुजरातमें कहैं काठिया चोर।
त्यौं ए तेरह काठिया करैं धरमकी हान,
तातें कछु इनकी कथा, कहौं विशेष बखान॥

फिर जुआ आलस, शोक भय कुकथा कौतुक, क्रोध, कृपणता अज्ञान, भ्रम, निद्रा, मद और मोहको चोर बतलाकर कहा है—

एही तेरह करम ठग लेहिं रतनत्रय छीन।
यातैं संसारी दशा कहिए तेरह तीन।

२ अध्यात्म गीत—यह गीत राग गौरीमें है। इसकी टेक है, "मेरे मनका प्यारा जो मिलै, मेरा सहज सनेही जो मिलै।" सुमतिरूप सीता आतम रामसे कहती है—

मैं विरहिन पियके आधीन, यौं तलफौं ज्यौं जलबिन मीन॥ मेरा १
बाहर देखूं तौ पिय दूर, घट देखूं घटमें भरपूर॥ मेरा ४
मैं जग हेरूं फिरी सब ठौर, पियके पटतर रूप न और॥ ११
पिय जगनायक पिय करतार, पियकी महिमा अगम अपार॥ १२

२१ पंचपदविधान—दो दोहों और १ चौपई छन्दोंमें अरहंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधुका साधारण वर्णन है।

२२ सुमतिदेवीके अष्टोत्तरशत नाम—पाँच दोहा और एक छप्पैमें सुमतिदेवीके १०८ नाम दिये हैं—सुमति, सुबुद्धि, सुधी सुबोधनिधिसुता दोमुनी, स्याद्वादिनी, आदि।

२३ शारदाष्टक—आठ भुजंगप्रयात छन्दोंमें सरस्वतीकी विविध नाम लेकर स्तुति की है—

जिनादेशजाता जिनेन्द्रा विख्याता विशुद्धा प्रबुद्धा नमों लोकमाता।
दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ २

२४ नवदुर्गाविधान – कालिका चंडी कामाख्या योगमाया आदि नौ दुर्गाओंको सुमतिदेवीके रूपमें नौ कवित्तोंमें बताया है—

यहै परमेश्वरी परम रिद्धिसिद्धि साधे, यहै योगमाया व्यवहार डार करनी।
यहै पद्मावती पद्म ज्यों अलेप रहै यहै गुन शक्ति मिथ्यातकी कतरनी।
यहै जिनमहिमा बखानी जिनशासनमें, यहै अकलंकित चित्तमहिमा अमरनी।
यहै रम्यमोहिनी वियोगमें वियोगिनी है यही देवी सुमति अनेक भांति बरनी ॥९

२५ नामनिर्णयविधान—इसके ११ पद्योंमें नामकी अस्थिरता और असत्यताको अच्छे ढंगसे व्यक्त किया है—

जगतमें एक एक जनके अनेक नाम एक एक नाम देखिए अनेक जनमें।
वा जनम और या जनम और आगे और, फिरता रहै पै याकी थिरता न तनमें॥
कोई कल्पना कर कोई नाम धरे याको, कोई बीच कोई नाम माने सिद्ध मनमें।
ऐसो विरतंत लखि संतसों सुगुरु कहै, तेरो नाम भ्रम तू विचार देखि मनमें ॥७

२६ नवरत्न कवित्त—जो उत्तम छन्दोंमें जो सुभाषित हैं और उन्हें अमर, घटकर्पर वेताल, वररुचि शंकु, वराहमिहिर, कालिदासके समान नौ रत्न बतलाया है। एक सुभाषित यह है—

व्यसनसक्त हठ गहै निधन परिवार बढ़ावै।
विनय कर गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै ॥
वृद्ध न समुझै धरम, नारि भरता अपमानै।
पंडित क्रियाविहीन राव दुरबुद्धि प्रमानै ॥
कुलवंत पुरुष कुलविधि तजै बंधु न मानै बंधुहित।
संन्यास धारि धन संग्रहै ये जगमें मूरख विदित ॥ ११

२७ अष्टप्रकारी जिनपूजा—जल, चन्दन, अक्षत पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घरूप आठ प्रकारकी पूजा जिन प्रतिमाके आगे की जाती है, जो इन दोहोंमें बतलाया है—

मलिन वस्तु उज्जल करै, यह सुभाव जलमाँहि।
जलसौं जिनपद पूजतैं, इत्यादिक सिरि बाहि॥ १

२८ दस दान विधान—या सुवर्ण, दासी, मकान, गज तुरग, कुलकलत्र, तिल, भूमि, और रथ इन चीजोंके लोकप्रचलित दानोंका आध्यात्मिक अर्थ समझाया है। गजदान यथा—

अष्ट महामद पुरके साथी ए कुकर्म कुवचनके हाथी।
इनको त्याग करै जो कोई, गजदातार कहावै सोई॥ ७

समस्त गोदान यथा—

गो कहिए इंद्रिय अभिधाना मदरा उमंग मौग मधवाना।
जो इसके रसमांहि न राचा, सो समस्त गोदानी साचा॥ १

२९. दस बोल—दस दोहोंमें जिन, जिनपद धर्म जिनधर्म, जिनागम, वचन, जिनवचन, मत और जिनमतका स्वरूप कहा है। मतके विषयमें यथा—

थापै निजमतकी क्रिया, निदै परमतरीत।
कुमत्तधारनसों कपि रहै यह मतकी परतीत॥ १

३० पहेली—यह अवरा नामाकी चालमें कुमति सुमति नामक दो सखियोंके बीच उपस्थित की गई पहेली है जिनका पति अध्यात्मी है—

कुमति सुमति दोऊ ब्रजबनिता, दोऊको पत अभागी।
यह अजान पति मरम न जानै यह भरतारों रागी॥ १
यह सुबुद्धि आपा परिपूरन आपा-पर पहिचानै।
लखि लालनकी चाल चपलता, सौत साल उर आनै॥ २
करै विलास हास कौतूहल, अगणित संग सहेली।
काहू समै पाइ सखियनसौं, कहै पुनीत पहेली॥ ३

३१ प्रश्नोत्तर दोहा—इसमें पाँच प्रश्न और पाँच ही उनके उत्तर दिये हैं। यथा—

प्रश्न — कौन वस्तु वपुमांहि है कहाँ आवै कहाँ जाइ।
ग्यानप्रकाश कहा लखै कौन ठौर ठहराइ॥

उत्तर — चिदानंद वपुमांहि है भ्रममें आवै जाइ।
ग्यान प्रगट आपा लखै, आपमांहि ठहराइ॥

१२ प्रश्नोत्तरमाला—उद्धव-हरि-संवादके रूपमें २१ पद्योंमें है। पहलेके ९ दोहोंमें समता, दम, तितिक्षा, धीरज आदिके २४ प्रश्न हैं और फिर अन्तकी १२ चौपाइयोंमें उनके उत्तर हैं। यथा—

समता-ध्यान-सुधारस पीजै, दम इंद्रिनको निग्रह कीजै।
संकटसहन तितिक्षा धीरज रसना मदन जीतबो धीरज ॥

अन्तमें कहा है—

इति प्रश्नोत्तरमालिका, उद्धव-हरिसंवाद।
भाषा कहत बनारसी भानु सुगुरुपरसाद ॥ २१

१३ अवस्थाष्टक—इसके आठ दोहोंमें कहा है कि निश्चयनयसे चेतन द्रव्य जीव सब एक जैसे हैं, पर व्यवहार नयसे मूढ़ विचक्षण और परम ये तीन भेद हैं। मूढ़ एक प्रकार, विचक्षण तीन प्रकार और परमात्मा जंगम और अविचल दो प्रकार, इस तरह छह प्रकारके जीव हैं। फिर सबका स्वरूप बतलाया है। अन्तमें कहा है—

जिहि पदमें सब पद मगन ज्यों जलमें जलबुंद।
सो अविचल परमातमा निराकार निरबुंद ॥ ८

१४ षट्दर्शनाष्टक—इसमें शैव बौद्ध, वेदान्त न्याय, मीमांसक, और जैनमतका स्वरूप एक एक दोहेमें दिया है। जैनमत यथा—

देव तीर्थंकर गुरु जती, आगम केवलिबैन।
धरम अनन्तनयातमक, जो जानै सो जैन ॥ ७

१५ चातुर्वर्ण्य—पाँच दोहोंमें ब्राह्मणादि चार वर्णोंका वास्तविक अर्थ बतलाया है। ब्राह्मण यथा—

जो निश्चै मारग गहै, रहै ब्रह्मगुनलीन।
ब्रह्मदृष्टि सुख अनुभवै, सो ब्राह्मन परवीन ॥

१६ अजितनाथके छन्द—यह कविकी संभवतः सबसे पहली रचना है। यह उन्होंने अपनी ससुराल खैराबादमें लिखी थी। इसमें अजितनाथको

४२ गोरखनाथके वचन — इसकी प्रत्येक चौपाईके अन्तमें 'कह गोरख' 'गोरख बोले' कहकर सच्ची वैसी अटपटी बातें कही हैं। देखिए—

धी सब देख भामिनी माने, स्त्री देख सो पुरुष बखाने ।
जे बिन लिंग नपुंसक जोता कह गोरख तीनों घर खोया ॥ १
जो घर त्याग कहावे जोगी, घरवासीको कहे जो भोगी ।
अंतर भाव न परखै कोइ, गोरख बोले मूरख सोई ॥ २
माया जोर कहै मैं ठाकर, माया गए कहावे चाकर ।
माया त्याग होइ जो दानी कह गोरख तीनों अभिमानी ॥ ४
कोमल पिंड कहावे चेला । कठिन पिंड सो ठलमेला ।
बूढ़ा पिंड कहावे बुड्ढा, कह गोरख ये तीनों मूढ़ा ॥ ५
सुन रे बाबा दुनिया मुनिया, उलट वेदसौं उलटी दुनिया ।
सतगुरु कहैं सहजका धंधा वादविवाद करे सो अंधा ॥ ७

४१ वैद्य ज्योतिषादि कविता — इसमें ४१ पद्य हैं। पहले वैद्य, ज्योतिषी, वैष्णव, मुसलमान गदम्बर आदिके लक्षण कहे हैं। मुसलमानके लक्षणमें कहा है—

जो मन मूसे आपनो, साहिबके रुख होइ ।
ज्ञान मुसल्ला गह टिके, मुसलमान है सोइ ॥
एकत्व हिन्दू तुरक, दूजी दशा न कोइ ।
मनकी दुविधा मानकर, भए एकसौं दोइ ॥
दोऊ भूले भरममें, करैं वचनकी टेक ।
राम राम हिंदू कहैं तुर्क सलामालेक ॥
इनके पुस्तक बाँचिए, वेहू पढ़ैं किताब ।
एक वस्तुके नाम दो, जैसे शोभा शैब ॥
तनकौं दुविधा, ज्यौं लखै, रंग बिरंगी चाम ।
मेरे नैनन देखिए, घट घट अंतरराम ॥
यहै गुप्त यह है प्रगट, यह बाहर यह माँहि ।
जब लगि यह कछु है रहा, तब लगि यह कछु नाँहि ॥ ११

भाग १ इसीमें अध्यात्मभावके सुन्दर सुभाषित हैं।

४४ परमार्थ वचनिका—यह लगभग ९ पृष्ठोंमें गद्यमें है। इससे बनारसीदासजीकी, गद्यरचनाशैलीका पता लगता है। यह प राजमल्लजीकी समयसारकी बालबोधिनी गद्यटीकाके लगभग पचास वर्ष बादकी रचना है। बालबोधिनीके गद्यके नमूने हमने अन्यत्र दिये हैं। भाषाशास्त्रियोंके अध्ययनमें ये दोनों सहायक होंगे। देखिए—

'मिथ्यादृष्टी जीव अपनो स्वरूप नहीं जानतो तातैं पर-स्वरूपविषै मगन होइ करि कार्य मानतु है, ता कार्य करतौ छतौ अशुद्ध व्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टी अपनो स्वरूप परोक्ष प्रमानकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसौं अपनो कार्य नहीं मानतो संतौ जोगद्वारकरि अपने स्वरूपको ध्यान विचाररूप क्रिया करतु है ता कार्य करतौ मिश्रव्यवहारी कहिए। केवलज्ञानी यथाख्यात चारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमनशील है तातैं शुद्ध व्यवहारी कहिए, जोगारूढ अवस्था विद्यमान है तातैं व्यवहारी नाम कहिए। शुद्ध व्यवहारकी सरहद त्रयोदशम गुणस्थानकसौं लेइ करि चतुर्दशम गुणस्थानपर्यंत जाननी। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहारः।"

'इन बातनको ब्यौरो कहांताईं लिखिए, कहां ताईं कहिए। वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत तातैं यह विचार बहुत कहा लिखहिं। जो ग्याता होयगो सो थोरो ही लिख्यो बहुत करि समुझैगो, जो अग्यानी होयगो सो यह चिट्ठी सुनैगो सही परन्तु समुझैगो नहीं। यह वचनिका यथाका यथा सुमति प्रवान केवली वचनानुसारी है। जो याहि सुनैगो समुझैगो सरदहैगो ताहि कल्यानकारी है भाग्यप्रमान"।

जान पड़ता है यह वचनिका चिट्ठीके रूपमें लिखकर कहींको भेजी गई थी।

४५ उपादान निमित्तकी चिट्ठी—यह भी गद्यमें लिखी हुई है और छपे हुए १-७ पृष्ठोंमें है। कुछ अंश देखिए—

प्रथम ही कोऊ पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ताको ब्यौरो निमित्त तो संयोगरूप कारन उपादान वस्तुकी सहजशक्ति, ताको ब्यौरो—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान एक पर्यायार्थिक निमित्त उपादान ताको ब्यौरो—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान एक पर्यायार्थिक निमित्त उपादान ताको ब्यौरो

द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुनभेदकल्पना । पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परयोगकल्पना ।"

४५—निमित्त उपादानके दोहे—निमित्त और उपादानका पुराना विवाद है। इन दोहोंमें दोनोंको स्पष्ट किया गया है—

> गुरु उपदेश निमित्त बिन, उपादान बलहीन ।
> ज्यौं नर दूजे पाँव बिन, चलवेकौं आधीन ॥ १
> हौं जानै था एक ही, उपादानसौं काज ।
> थकै सहाई पौन बिन, पानी मांहि जहाज ॥ २

४६ अध्यात्मपदपंक्ति—इसमें भैरव, रामकली, बिलावल, आसावरी, धनाश्री, सारंग गौरी, काफी आदि रागोंमें २१ पद या भजन हैं जो बहुत मार्मिक और सुन्दर हैं। नमूनेका एक पद देखिए—

> हम बैठे अपनी मौनसौं ।
> दिन दसके महमान जगतजन, बोलि बिगारैं कौनसौं ॥ हम बै० १
> गए बिलाय भरमके बादर, परमारथपथ पौनसौं ।
> अब अन्तरगति भई हमारी परचे राधारौनसौं ॥ हम० २
> प्रगटी सुधापानकी महिमा, मन नहिं लागै बौनसौं ।
> छिन न सुहाइ और रस फीके, रुचि साहिबके लौनसौं ॥ हम० ३
> रहे अघाय पाय सुखसंपति, को निकसै निज भौनसौं ।
> सहज भाव सद्गुरुकी संगति सुरझे आवागौनसौं । हम० ॥ ४

इसके आगे पद्य नंबर ५ देकर ८ दोहे और हैं जो जिनमुद्रा या जिनप्रतिमाके ही सम्बन्धके हैं। जान पड़ता है पूर्वोक्त दो दोहे और ये आठ दोहे एक ही पदके हैं। दो दोहोंके बाद "इहि बिधि देव अदेवकी मुद्रा लख लीजे।" यह टेक दी है और उसको रागबिलावल बतलाया है।

इसमें पदको राग बद्ध किया है। यह बनारसीदासजीने अपने मित्र थानमल्ल और नरोत्तमके लिए रचा है—

१—बनारसीविलासकी इस समय कोई हस्तलिखित पुरानी प्रति नहीं मिली। ये नमूने छपी हुई प्रतिपरसे दिये गए हैं।

जपचा गाइ सुनाएउ चेतन चेत ।
कहत बनारसि मान नरोत्तम हेत ॥ २६

प्रारंभ इस प्रकार किया है—

बंदौं शारदस्वामिनि औ गुरु ' मान ' ।
कछु कथ्या परमारथ कहौं बखान ॥ बाम्हन ४
काम नगरिया भीतर चेतन भूप ।
करम लेप लिपटाएउ, चोखिस्वरूप ॥ बाम्हन

२१ में पद ' राग काफी ' में आगरेके ' चिन्तामन स्वामी ' की मूर्तिकी स्तुति है—

चिंतामन स्वामी साँचा साहब मेरा ।
सोक हरे तिहु लोकको, उठि लीजतु नाम सबेरा ॥ चि
बिंब बिराजत आगरे, थिर थान थयो शुभ बेरा ।
ध्यान धरे बिनती करे, बानारसि बंदा तेरा ॥ चि

५७ ५८ परमारथ हिंडोलना और राग मल्हार तथा सोरठ—बनारसीविलासमें ये भी दोनों पद ही हैं, परन्तु पदपंक्तिमें शामिल नहीं किये गये, अलग रखे गये हैं अन्य पदोंके ही समान ये हैं ।

इस तरह बनारसीदासकी समस्त रचनाओंका संक्षिप्त परिचय दिया गया । पाठक देखेंगे कि इनमें कविको ठीक ठीक समझनेके लिए काफी

१—अबसे ५२ वर्ष पहले सन् १९ ५ में मैंने इसे सम्पादित करके और विस्तृत भूमिका लिखकर जैनग्रन्थरत्नाकरद्वारा प्रकाशित किया था । यद्यपि परिश्रम बहुत किया था परन्तु साधनोंकी कमीसे, एक ही हस्तलिखित प्रतिका आधार मिलनेसे और पुरानी भाषाका ठीक ज्ञान न होनेसे वह बहुत ही त्रुटिपूर्ण रहा । उसके पचास वर्ष बाद सन् १९५५ में जब यह जयपुरसे प्रकाशित हुआ तो देखा कि मेरे उस पहले एडीशनको ही प्रेसमें देकर छपा लिया गया है, दूसरी प्रतियोंके सुलभ होनेपर भी उनका उपयोग नहीं किया गया और उसमें पहलेसे भी अधिक अशुद्धियाँ और त्रुटियाँ भर गई हैं । इससे बड़ा क्षोभ हुआ । अब भी इसका एक प्रामाणिक संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होनेकी आवश्यकता है ।

सामग्री है। इस अध्ययनसे उनके क्रमविकासका, कवित्वशक्तिके विकासका और तत्कालिक साम्प्रदायिक विभ्रमका भी पता लगता है।

४ अर्धकथानक

चौथा ग्रन्थ यह 'अर्ध कथानक' है जो एक तरहसे उनका आत्मचरित और उनके समयके उत्तरभारतकी सामाजिक अवस्था और राजा प्रजाके सम्बन्धोंपर प्रकाश डालता है। आश्चर्य यह है कि भारतीय साहित्यकी इस अद्वितीय आत्म-कथाका प्रचार बहुत ही कम हुआ है। पिछले दो तीनसौ वर्षोंमें जैन ग्रन्थकारों तकको भी इसका पता नहीं रहा है ग्रन्थ-भण्डारोंमें भी इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ बहुत कम देखी गई हैं। इसका कारण साम्प्रदायिक कट्टरता और विचार-संकीर्णता ही जान पड़ता है।

१—सन् १९१० में बनारसीविलासकी विस्तृत भूमिकामें 'अर्ध कथानक' का सारभूत अनुवाद दे दिया था परन्तु मूल पाठ उसमें नहीं था। यह कोई ३८ वर्षोंके बाद सन् १९४३ में प्रकाशित हो सका। लगभग उसी समय प्रयागके सुप्रसिद्ध विद्वान् डा. माताप्रसाद गुप्तने उसे 'अर्द्धकथा' नामसे प्रकाशित किया और उसकी खोजपूर्ण भूमिका लिखी। 'अर्द्धकथा' केवल एक ही प्रतिके आधारसे सम्पादित हुई थी, इस लिए उसमें पाठकी अशुद्धियाँ बहुत रह गई हैं और बहुतसे पाठ भी छूटे गये हैं। १९२ वें का 'मोती हार लियो हुलो' आदि दोहा नहीं है, ५५९ से ५६६ नम्बरके ८ पद्य बिल्कुल गायब हैं, ६२२ ६२३ और ६६५ नम्बरके पद्य भी छूटे हैं और आगे ६७१ वें पद्य 'नगर आगरेमें बसै' आदि दोहा नहीं है। इस तरह सब मिलकर १३ पद्य कम हैं और सम्पूर्ण पद्योंकी संख्या ६६२ है। इधर डॉ. गुप्त लिखते हैं कि "यद्यपि रचनाके अन्तमें उसकी छन्दसंख्या ६७५ कही गई है पर वह वास्तवमें है ६६२ ही। और कहींपर ज्ञात नहीं होता कि पंक्तियाँ छूटी हुई हैं क्यों कि कथाकी धारा अबाध रूपसे प्रवाहित होती है। ऐसी दशामें दो बातें संभव ज्ञात होती हैं या तो कोई समस्त प्रसंग—एक या अधिक—ग्रन्थ-निर्माणके बाद कभी स्वयं लेखक या किसी अन्य व्यक्तिद्वारा इस प्रकार निकाल दिया गया कि वस्तु विन्यासमें कोई व्यवधान उपस्थित न हुआ, अथवा कविसे ही छन्दसंख्या लिखते उनमें उनसे कोई गणनाकी भूल हो गई। पाठ प्रमाद

५ नवरसरचना

यह पोथी सं० १६५७ में लिखी गई थी जब कि कविकी अवस्था चौदह वर्षकी थी।

"पोथी एक बनाई नई, मित हजार दोहा चौपई।
तामैं नवरसरचना लिखी, पै बिसेस बरनन आसिखी।
ऐसे कुकवि बनारसी भए। मिथ्या ग्रंथ बनाए नए ॥१७९॥"

अर्थात् इस पोथीमें इश्क (प्रेम मुहब्बत) का विशेष वर्णन था। विवेक हो जानेपर सं० १६६२ में जब इसे गोमती नदीमें बहा दिया गया, तब लिखा है कि—

मैं तो कल्पित वचन अनेक।
कहे झूठ सब साचु न एक ॥ २६६

एक झूठ बोलनेवालेको नरकदुःख भोगना पड़ता है, पर मैंने तो इतने अनेक कल्पित वचन लिखे हैं जो सब ही झूठ हैं तब मेरी बात कैसी बनेगी!

भी उक्त लेखके सम्बन्धमें असंभव नहीं कहा जा सकता।' इसपर हमारा निवेदन है कि सर्व कवि गणनाकी ऐसी भूल नहीं कर सकते। उन्होंने अपने दूसरे ग्रन्थ नाटक समयसारमें भी छन्दोंकी संख्या ७२७ दी है और वह ठीक ही है। ग्रन्थकी प्रतिलिपि करनेवालेने ही ११ छन्द छोड़ दिये हैं। रही कथा विभागमें कोई व्यवधान उपस्थित न होनेकी बात, सो बारीकीसे विचार करनेसे व्यवधान साफ नजरमें आ जाते हैं। १९१ वें छन्दमें कहा है कि बहुत उद्यम करने पर भी अच्छा कपड़ा जब नहीं बिका, तब कवि एकाएक ऐसा विचार कैसे कर सकता है कि जवाहरातका व्यापार अच्छा है। छूटे हुए १९२-९३ छन्दमें कहा है कि मोतीहार जो ४२ रुपयामें खरीदा था, वह ७० में बिका और उसमें पौने-दूने हो गये इस लिए जवाहरातका धंधा अच्छा। इसी तरह ५५८ वें छन्दके बाद एकाएक तीसरे दिन नेमनदासका उत्तमसिंहके पास जाना भी खटकता है कि बीचमें बहुत कुछ रह गया है। ६२१ के बाद के ११ और १२ छन्दकी बात समझानेवाले दो छन्द छूटे हुए हैं जिनका छूटना पकड़में आ सकता है, इसी तरह ६७० वें छन्दके बाद 'ताके मन आई यह बात' में 'ताके' का सम्बन्ध तभी बैठ सकता है जब बीचमें ६७१ वाँ छन्द हो।

इससे ऐसा मालूम होता है कि वह कोई मुक्तक काव्य होगा और उसमें कल्पनाके सहारे खड़े किये गए किसी प्रेमी-युगल (आशिक-माशूक) की नवरसयुक्त कथा लिखी होगी, जो एक हजार दोहा-चौपाइयोंमें पूरी हुई थी। कल्पितको ही वे झूठ कहते जान पड़ते हैं। जिस चीजको उन्होंने रहने ही नहीं दिया, जहाँ जिसका अस्तित्व ही नहीं है, उसके विषयमें अधिक और क्या कहा जा सकता है ?

'बनारसी' के नामकी कई अन्य रचनाएँ

इधर बनारसीके नामवाली कई रचनाएँ प्रकाशमें आई हैं जिनके विषयमें कहा जाता है कि वे इन्हीं बनारसीदासकी रची हुई हैं। यहाँ उनकी जाँच कर लेना आवश्यक मालूम होता है।

१—मोहविवेकयुद्ध[1]—यह दोहा और चौपाई छन्दोंमें है और सब मिलाकर इसमें ११ पद्य हैं। पहले इसके प्रारंभके तीन दोहोंपर विचार कीजिए—

> बहुमें बरनि बनारसी, विवेक मोहकी सैन।
> ताहि सुनत श्रोता सबै, मनमें मानहिं चैन ॥ १
> पूरब भए सुकवि मल्ह, लालदास गोपाल।
> मोह-विवेक किए सु तिन्ह वाणी वचन रसाल ॥ २
> तिनि तीनहु ग्रंथनि महा सुगम सुगम लखि देख।
> सारभूत संक्षेप अब, साधि लेउ हौं सेष ॥ ३

अर्थात् मुझसे पहले सुकवि मल्ल, लालदास और गोपालने मोहविवेक (युद्ध) बनाये हैं उनको देखकर सारभूत संक्षेपमें इसे रचता हूँ।

१—पं० कस्तूरचन्दजी कासलीवालने लिखा है कि जयपुरके बड़े मन्दिरके शास्त्रभंडारमें इसकी पाँच प्रतियाँ हैं, तीन गुटकोंमें और दो स्वतन्त्र। वीरवाणीके वर्ष १ के अंक २१-२४ में श्रीअगरचन्दजी नाहटाने इसे पूरा प्रकाशित कर दिया है। वीर-पुस्तक-भंडार, मनिहारोंका रास्ता जयपुरने इसे पुस्तकाकार भी निकाला है। मेरे पास भी इसकी एक अधूरी कापी (७७ पद्य) है जो स्व० गुरुजी (पन्नालालजी बाकलीवाल)ने जयपुरसे ही नकल करके भेजी थी।

इन तीनोंमेंसे पहले सुकवि मल्ल हैं, जिनका 'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक' भाषाके किसी दिगम्बर भंडारमें है; जिसे देखकर श्री अगरचन्दजी नाहटाने उसका परिचय भेजनेकी कृपा की है। प्रतिमें प्रबोधचन्द्रोदयके साथ उसका दूसरा नाम 'मोह-विवेक' भी दिया है। मल्ल कविका प्रसिद्ध नाम मथुरादास और पिताका नाम देवीदास था। वे अन्तर्वेदके निवासी थे। ग्रन्थमें सब मिलाकर ४१७ चौपाइयाँ हैं। यह कृष्णमिश्र यतिके संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदयके आधारसे लिखा गया है। ९५ पत्रोंका ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल नाहटाजी संवत् १६ ? बतलाते हैं।

संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटककी रचना बुन्देलखंडके चन्देलराजा कीर्तिवर्माके समय हुई थी और कहा जाता है कि वि० सं० १११२ में यह उक्त राजाके समक्ष खेला भी गया था। इसके तीसरे अंकमें क्षपणक (जैनमुनि) नामक पात्रको बहुत ही निन्द्य और घृणित रूपमें चित्रित किया है। वह देखनेमें राक्षस जैसा है और श्रावकोंको उपदेश देता है कि तुम दूरसे चरण-वन्दना करो और यदि वह तुम्हारी स्त्रियोंके साथ अतिप्रसंग करे, तो तुम्हें ईर्ष्या न करनी चाहिए। फिर एक कापालिनी उससे लिपट जाती है जिसके आलिंगनको वह मोक्षसुख समझता है और फिर महा-भैरवके धर्ममें दीक्षित होकर कापालिनीकी जूठी शराब पीकर नाचता है।

१—मथुरादास नाम विस्तारयो देवीदास पिताको धारयो।
अन्तर्वेद देसमें रहै तीके नाम मल्ल कवि कहै ॥ ८

२—कृष्णभट्ट करता है जहाँ, गंगासागर मेटे तहाँ।

३ सोरहसै संवत जब भयऊ, तामहि बरस एक रहर्यं (!) भयौ।
कातिक कृष्णपक्ष दसमी ता दिन कथा जु मनमें बसी ॥

इसमें बरस पाठ कुछ समझमें नहीं आया, और तब यह संवत् १६ ? कैसे हो गया ?

४—निर्णयसागर प्रेस, बम्बईद्वारा प्रकाशित।

५—वादिचन्द्रसूरिने (जैन) ने शायद इन्हीं आक्षेपोंका उत्तर देनेके लिए 'ज्ञानसूर्योदय नाटक' संस्कृतमें लिखा है। मैंने इसका हिन्दी अनुवाद करके सन् १९१ के लगभग जैनग्रन्थरत्नाकर द्वारा प्रकाशित किया था।

दूसरे कवि हैं जनददास। ना॰ प्र॰ सभाकी खोज रिपोर्ट (१९ १)के अनुसार आगरेमें जनददास नामक कविने वि॰ सं॰ १७१४ में 'अवधविलास' नामका एक ग्रन्थ लिखा था। मोह-विवेक-युद्ध भी इन्हींका लिखा हुआ होगा, जिसकी प्रति नाहटाजीके ग्रन्थसंग्रहमें है। उन्होंने इसका आद्यन्त अंश भेजा है—

आदि—सकल साधु गुरुके पग परौं, रामचरन सिरऊपर धरौं।
गुरु परमानंदकौं सिर नाऊं, निरमल बुद्धि देहि गुन गाऊं॥

अन्त—जनददास परमादतैं सकल भए सब काज।
विष्णुभक्ति आनंद बढ्यौ अति विवेककौ राज॥
तब कथा जोगी जगतगुरु जब सभा रही उदास।
तब आगी आत्मा, जब गुरु जोगीदास॥

यह प्रति सं॰ १७९१ की लिखी हुई है, पर इसमें रचनाकाल नहीं दिया है।
नाहटाजी लिखते हैं कि आगरानिवासी जनददासके 'इतिहास भाषा' का निर्माणकाल सं॰ १६४१ है, सो वे ही जनददास मोहविवेकयुद्धके कर्ता होंगे।

उनका समय कोई भी हो, पर वे किसी वैष्णव सम्प्रदायके हैं।

तीसरे कवि हैं गोपाल। गोपालदास ब्रजवासी नामक कविकी दो रचनाओंका उल्लेख सभाकी खोज-रिपोर्ट (सन् १९ २) में किया गया है एक मोह-विवेक और दूसरी परिचय स्वामी दादूजी'। राजस्थानोदयमें भी इनके पद मिलते हैं। उन्होंने मोह-विवेक की रचना सं॰ १७ में की थी। ये सन्त दादू दयालके अनुयायी थे[1]।

इस परिचयसे हम समझ सकते हैं कि ये तीनों ही कवि अजैन हैं और ब्रजवासी दादूपंथी कृष्णभक्तिपंथी आदि हैं और जिस प्रबोधचन्द्रोदयको इन्होंने अपना आधार मानकर मोहविवेकयुद्ध लिखे हैं वह धनधर्मको बहुत ही घृणितरूपमें चित्रित करनेवाला है। तब क्या बनारसीदासजीको अपना मोह

1—नाहटाजी लिखते हैं कि दादूपन्थी जन गोपाल का समय खोज-रिपोर्टमें १६ ७ का मध्यम बतलाया है और उनके रचे हुए मोह-विवेक का उल्लेख दादू सम्प्रदायका संक्षिप्त इतिहास के पृ॰ ७६ पर किया है। पर 'जन गोपाल' और 'गोपाल' दो पृथक् भी हो सकते हैं।

विवेकजुद्ध' लिखनेके लिए इनसे अच्छा आधार और नहीं मिल सकता था। अवश्य ही मोहविवेक-युद्धके कर्ता ये बनारसीदास कोई दूसरे ही हैं और उक्त कवियोंकी ही किसी परम्पराके हैं।

इसके विरुद्ध दो बातें कही जाती हैं, एक तो यह कि मोहविवेकयुद्धकी प्रतियाँ अनेक जैनभण्डारोंमें पाई गई हैं और बीकानेरके खरतरगच्छीय जो भंडारके एक गुटकेमें बनारसीविलासके साथ यह भी लिखा हुआ है और दूसरी बात यह कि उसमें दो दोहे इस प्रकार हैं—

> श्री जिनभक्ति सुदृढ़ जहां सदैव मुनिवरसंग।
> कहो क्रोध तहां मैं नहीं, क्यों सु आतमरंग॥ ५८
> अविभिचारिणी जिनमगति आतम अंग सहाय।
> कहो काम ऐसी जहां मेरी तहां न बसाय॥ ६२

इसके सिवाय अन्तमें 'कनन बरत बनारसी समकित नाम सुभाय' भी पढ़ा हुआ है।

परन्तु एक तो जब जैनभंडारोंमें सैकड़ों अजैन ग्रन्थ संग्रह किये गये हैं तब उनमें इसका भी संग्रह आश्चर्यजनक नहीं और दूसरे उक्त दोहोंके पाठोंमें हमें बहुत सन्देह है। प्रतिलिपि करनेवाले 'हरिभगति' की जगह 'जिनभगति' पाठ आसानीसे बना सकते हैं। जिनभक्तिको 'अव्यभिचारिणी' विशेषण किसी जैन रचनामें अब तक नहीं देखा गया। यह हरिभक्ति रामभक्तिके लिए ही प्रयुक्त होता है।

इसके सिवाय मोह विवेक, काम, क्रोध आदि शब्दोंको देखकर ही तो इसपर जैनधर्मकी छाप नहीं लग सकती। ये शब्द तो प्रायः सभी धर्मों और सम्प्रदायोंमें समानरूपसे व्यवहृत हैं। इसका कर्ता जैन होता तो कहीं न कहीं क्रोध मान मायादिके अभाव करता, विवेकका सम्यग्ज्ञान करता पर इसमें कहीं भी किसी जैन पारिभाषिक शब्दका उपयोग नहीं किया गया है।

इसमें जो पौराणिक उदाहरण आये हैं वे भी विचारणीय हैं। काम कहता है—

> महादेव मोहिनी नचायो बरसीं ही भ्रमा भरमायो।
> सुरपति रावणे गुरुकी नारी, और काम को सके संहारी॥

सिंगी रिषिसे बनमहि मारे, मोतैं कौन कौन नहि हारे ।
मायामोह तबैं परकास मोतैं मानि बाहि बनवास ।
कंद-मूल जे भक्षन कराही तिनिहूकौं मैं छाडौं नाही ॥
इक नागा इक सेवड मारूं, जोगी जती तपी संघारू ॥

महादेव और मोहिनी इन्द्र और गुरुपत्नी अहल्या ब्रह्मा और उनकी कन्या, शृंगी ऋषि और वन आदिकी कथाएँ जैन ग्रन्थोंमें इस रूपमें कहीं नहीं आतीं, कन्दमूल भक्षण करनेवाले योगी जती तापस तो निश्चयसे यह बतलाते हैं कि इनका कर्ता जैन नहीं है ।

क्रोध कहता है—

देवी देवा क्रोध कराहीं बलिके जीव मूरख खाहीं ।
मुए पितर माँगैं जु तपावा, माँगहि पिंड भूत आपावा ॥ ६६
जती भक्षन जु पूजा माँगैं, जोगड मनो झूठैं सो भागैं ॥
जोगी रिद्धिपात्र सिध पावैं, संन्यासी तब ही आपावैं ॥ ६७
पंडित चारौं वेद बखाने, बहु समझाने भाउ न जाने ।
कंस ब्रह्म छठी जब माया बाढ़हि मन पूजामहि आया ॥ ६९

उक्त पंक्तियोंपर भी विचार करना चाहिए ।

यद्यपि बनारसीदासजीकी रचनाओंके साथ इसकी कोई तुलना नहीं हो सकती । न तो इसकी भाषा ही ठीक है और न छन्द ही । इसे उनकी प्रारम्भिक रचना मानना भी उनके साथ अन्याय करना है ।

२ नये पद—बनारसीविलासके प्रथम संस्करणमें मैंने तीन नये पदसंग्रह करके प्रकाशित किये थे और जयपुरके नये संस्करणमें उनके सम्पादकोंने दो और नये पद दिये हैं । परन्तु विचार करनेसे उक्त पाँचों ही पद किसी दूसरे 'बनारसी' के मालूम होते हैं और आश्चर्य नहीं जो वे मोहविवेकयुद्धके कर्ताके ही हों ।

३ ध्यांसा और पद—वीरवाणीके वर्ष ८, अंक १ में पं० कस्तूरचन्दजी काशलीवालने दीवान बधीचन्दजीके शास्त्रभण्डारके गुटकोंमें मिली हुई इस नामकी

१—ब्रह्म सुतं कर्मम्मिष्या ।

दो कवितायें प्रकाशित की हैं। 'माझा' में १३ पद्य हैं। भाषा सीधी ही सरल और पंजाबीमिश्रित है। इसकी चौथी पंक्तिकी लम्बाई देखकर सन्देह होता है कि इसमें दास बनारसी बनारसीकी छापसे आया गया है। पंक्ति यह है— 'कहत दास बनारसी अलप सुख कारने तैं नरभवबाजी हारी।' जब कि अन्य पंक्तियाँ इतनी लम्बी नहीं हैं। छठी पंक्ति है— 'मानुषजनम अमोलक हीरा, हार गँवायो खासा।' इसी वजनकी अन्य भी पंक्तियाँ हैं। 'पद' में कहा है—'कबहूँ ऐसी रीति चली। चक्रेसरो गांको बड़ी सो ऐसी बात खरी। ...' यह पद्य मधुर क्या है और किसी सन्तका ही मालूम होता है। कबीरके 'बाली मैं बाढ़ी कहै, नगर मासमें लोगा' का अनुकरण जान पड़ता है।

अप्राप्त रचनायें

डा० माताप्रसादजी गुप्तने अर्ध-कथानककी भूमिकामें कुछ रचनाओंके प्राप्त न होनेका संकेत किया है। वे लिखते हैं कि 'नाममाला, बारह व्रतके कवित्त अथवा व्यवहार कथन तथा चौदह बोल विधि' के पाठ प्राप्त नहीं हैं।" (इनके उल्लेख अर्ध-कथानकमें हैं।) परन्तु इसमें उन्हें कुछ भ्रम हुआ है। इनमेंसे 'नाममाला' तो प्राप्त है और प्रकाशित हो चुकी है। 'बारह व्रतके कवित्त' का जो उल्लेख है, वह इस प्रकार है—

नगर आगरे पहुँचे आइ, सब निज निज घर बैठे जाइ।
बनारसी गयौ पौसाल, सुनी जती श्रावककी चाल ॥ ५८६
बारह व्रतके किए कवित्त, अंगीकार किए धरि चित्त।
चौदह नेम संभाले नित, लागे दोष करै प्रायश्चित ॥ ५८७

अर्थात् यात्रासे लौटकर सब लोग आगरे आ गये। बनारसीदास पौसाल या उपाश्रयमें गये और वहाँ यतियों और श्रावकोंका आचार धर्म सुना, उसमें बारह व्रतोंके (किसीके) बनाये हुए कवित्त सुने और उन्हें चित्त लगाकर अंगीकार किया। फिर चौदह नियमोंका पालन करने लगे। यदि इनमें कहीं कोई दोष लगता था तो उसका प्रायश्चित करते थे। अर्थात् हमारी समझमें उपरोक्त बारह व्रतोंके कोई कवित्त ग्रन्थ नहीं बनाये, किसीके बनाये हुए सुने और उन व्रतोंको धारण किया। आगेकी 'चौदह नेम' आदि पंक्तिका सम्बन्ध भी इससे ठीक बैठ जाता है।

इसी अध्यात्मपदपंक्तिमें १ यही गीत 'राग बरवा' या बरवा छंद है, जिसका उल्लेख अर्द्ध-कथामें न होनेसे डा. गुप्तने यह कल्पना की है कि "यह असंभव नहीं कि 'बारह' 'बारव' या 'बरवा' का ही विकृत पाठ हो।" अर्थात् बारह पदके लिए कवित्त से मतलब 'बरवा छंद' ही हो।

हमारा विश्वास है कि बनारसीविलासका जो संग्रह दीवान जगजीवनने किया है उसमें बनारसीदासकी सभी रचनायें आगई हैं और यह संग्रह उनकी मृत्युके २५ दिन बाद ही कर लिया गया था। जगजीवन बनारसीदासजीकी अध्यात्म-शैलीके ही एक प्रतिष्ठित सभ्य थे और आगरेमें ही रहते थे। उसके कुछ ही समय पहले सं. १७०० की 'कर्मप्रकृतिविधान' रचना भी उन्होंने इसमें शामिल कर ली थी जिसका उल्लेख अर्धकथानकमें भी नहीं है। क्योंकि अर्ध-कथानक उससे पहले ही सं. १६९८ में लिखा जा चुका था और उसमें कविवरने अपनी सारी रचनाओंके सम्बन्धमें कि वे कब कब रची गई नाम दे दिये हैं और वे सभी बनारसीविलासमें संग्रह हो गई हैं।

अर्ध-कथानककी तिथियाँ

डा. माताप्रसादजी गुप्तने अर्ध-कथानकमें आई हुई चार तिथियोंकी जाँच की है कि वे शुद्ध हैं या नहीं—

१ खरगसेनकी जन्मतिथि—श्रावण सुदी ५, रविवार, वि. सं. १६०८।

२ बनारसीदासकी जन्मतिथि—माघसुदी ११, रविवार, सं. १६४३, [illegible] नक्षत्र रोहिणी तथा वृषके चन्द्रमा।

३ नरोत्तमदासके साझेकी समाप्ति—वैशाख सुदी ७, सोमवार, सं. १६७१।

४ अर्ध-कथानककी रचनातिथि—अगहन सुदी ५ सोमवार सं. १६९८।

वे लिखते हैं कि गणना-प्रणालीपर गणना करनेसे प्रथमके लिए दिन बुधवार, दूसरेके लिए मंगलवार, तीसरेके लिए शनिवार और चौथेके लिए पुनः शनिवार

१— "एकादसी वार रविनंद, नखत रोहिनी वृषको चंद।"

यह पाठ सब प्रतियोंमें है, केवल ब प्रतिमें 'एकादसी रविवार सुनन्द' पाठ है और शायद इसी प्रतिके आधारसे डा. गु. द्वारा सम्पादित अर्ध कथा. का पाठ बना है। रविनन्द=सूर्यपुत्रका अर्थ शनिवार होता है रविवार नहीं। ब प्रतिके पाठका सुनन्द निरर्थक भी लगता है।

४ बाबा शीतलदास नामक संन्यासीको बारबार नाम पूछकर चिढ़ाना और और उन्हें आत्मप्रसाद कहना।

५ दो दिगम्बर मुनियोंको बारबार उँगली दिखाकर अशान्त करना और इस तरह उनकी परीक्षा करना।

६ गोस्वामी तुलसीदासका अपने शिष्योंके साथ आगरे आना, कविवरसे मिलकर अपना रामचरितमानस (रामायण) भेंट करना और इनके बाद बनारसीदासका 'विराजै रामायण घटमाहिं' आदि पद रचकर सुनाना।

७ देहत्यागके समय कण्ठ अवरुद्ध हो जानेपर कविवरका 'जाके बनारसीदास फेर नहिं आवना' आदि लिखकर लोगोंके इस भ्रमको निवारण करना कि उनका मन मायामें अटक रहा है।

इस तरहकी अनेक किंवदन्तियाँ थोड़ेसे हेरफेरके साथ अन्य अन्य महात्माओंके सम्बन्धमें भी लिखी और सुनी गई हैं परन्तु चूँकि बनारसीदासजीने अपनी आत्मकथामें इनका कोई उल्लेख तो क्या संकेत भी नहीं किया है। उल्लेख न करनेका कोई कारण भी नहीं मालूम होता इसलिए इनके सच होनेमें बहुत सन्देह है। पहले खयाल था कि आत्मकथा लिखनेके बाद वे बहुत समय तक जीवित रहे होंगे और इसलिए ये घटनाएँ उसके बाद घटित हुई होंगी। परन्तु अब तो यह निश्चय हो चुका है कि वे उसके बाद ज्यादा दो वर्ष ही जिये हैं और इस थोड़ेसे समयमें इन सातों घटनाओंको मान लेनेमें संकोच होता है।

यदि गोस्वामी तुलसीदाससे साक्षात् होनेकी बात सच होती तो उसका उल्लेख अर्धकथानकमें अवश्य होता। क्योंकि तुलसीदासका देहोत्सर्ग वि० सं० १६८० में हुआ था और अर्धकथानक १६९८ मे लिखा गया है। इसी तरह जहाँगीरकी मृत्यु भी १६८४ मे हो चुकी थी। ज्ञानी पातशाह वाला कवित्त नाटकसमयसार (चतुर्दश गुणस्थानाधिकार पद्य ११५) में है और यह ग्रन्थ १६९३ मे पूर्ण हुआ था।

कुछ समय पहले जयपुरके स्व० पं० हरिनारायण शर्मा बी० ए० ने स्व० सुन्दरदासजीकी तमाम रचनाओंका सुन्दर-ग्रन्थावली नामक बहुत ही सुसम्पादित संग्रह दो जिल्दोंमें प्रकाशित किया था। उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिकामें एक जगह लिखा है कि प्रसिद्ध जैनकवि बनारसीदासजीके साथ सुन्दरदासजीकी मैत्री थी। सुन्दरदासजी जब आगरे गये तब बनारसीदासजी सुन्दरदासजीकी योग्यता,

चमत्कार और यौगिक चमत्कारोंसे मुग्ध हो गये थे। तब ही उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठसे उन्होंने की थी। परन्तु जैसे ही त्यागी और मेधावी बनारसीदासजी भी थे। उनके गुणोंसे सुन्दरदासजी प्रभावित हो गये तब ही वैसी अच्छी प्रशंसा उन्होंने भी की थी।   नाटकसमयसारमे जो 'कीच सौ कनक जाके' पद्य है उसे बनारसीदासजीने सुन्दरदासजीको भेजा था और सुन्दरदासजीने उसके उत्तरमें दो छन्द भेजे थे 'भूख जैसो धन जाके' और 'कामहीन क्रोध जाके' तथा

---

१ कीचसौ कनक जाके नीचसौ नरेसपद
मीचसी मिताई गरुवाई जाके गारसी।
जहरसी जोगजाति कहरसी करामाति,
हहरसी हौंस पुदगलछवि छारसी॥
जालसौ जगबिलास भालसौ भुवनवास,
कालसौ कुटुंबकाज लोकलाज लारसी।
सीठसौ सुजसु जानै बीठसौ बखत मानै
ऐसी जाकी रीति ताहि बंदत बनारसी॥—बन्धद्वार १९

२ भूख जैसो धन जाके सूकरसो संसार सुख,
भूत जैसो माल देखे अंतकसी नारी है।
काम जैसी प्रभुताई साँप जैसो सनमान
बड़ाई हू बीछनीसी नागिनीसी नारी है॥
अग्नि जैसो इन्द्रलोक विघ्न जैसो विधिलोक,
कीरति कलंक जैसी सिद्धि सींटि डारी है।
बासना न कोऊ बाकी ऐसी मति सदा जाकी
सुन्दर कहत ताहि बन्दना हमारी है॥ १५

३—कामहीन क्रोध जाके लोभहीन मोह ताके
मदहीन मच्छर न कोउ न बिकारो है।
दुखहीन सुख मानै पापहीन पुन्य जानै
हरष न सोक आनै देहहीतें न्यारो है॥
निंदा न प्रसंसा करै रागहीन दोष धरै,
लेनहीन देन जाके कछु न पसारो है।
सुन्दर कहत ताकी अगम अगाध गति,
ऐसो कोऊ साधु सु तो रामजीको प्यारो है॥
—सवैया ग्रंथ पृ ४१४

‘ प्रीतिकी न पाती कोऊ ’। कोई कहते हैं पहले सुन्दरदासजीने लिखकर भेजा था। कुछ हो इनका आपसमें प्रेम था और दोनोंकी अध्यात्मसाधनामें एक, साम्य और विचारोंका साम्य स्पष्ट है। ये दोनों महात्मा आगरे कब मिले इसका पता नहीं है। हमको महन्त गंगारामजीसे तथा फतहपूरके श्रीमान सेठ अमोलकचन्दजीसे यह कथा प्राप्त हुई थी।" इस किंवदन्तीमें जिन पद्योंको एक दूसरेके पास भेजनेके लिए कहा गया है, उन पद्योंसे तो ऐसी कोई बात ध्वनित नहीं होती जिससे उसे सत्य माननेकी प्रवृत्ति हो सके। इस तरहके तो अनेक पद्य अनेक कवियोंकी रचनाओंमें मिलते हैं, परन्तु उससे यह नहीं माना जा सकता कि रचयिताओंने उन्हें एक दूसरेके पास भेजनेके उद्देश्यसे लिखा था। ये दोनों चारों पद्य जिन ग्रन्थोंके हैं उनमें वे अपने अपने स्थानपर सर्वथा उपयुक्त और प्रकरणके अनुकूल हैं, वहाँसे वे हटाये नहीं जा सकते।

सन्त सुन्दरदासजीका जन्म-काल वि. सं. १६५३ और मृत्यु-काल १७४६ है और ग्रन्थरचना-काल १६६४ से १७४२ तक माना जाता है, इसलिए बनारसीदासजीसे उनकी मुलाकात होना सम्भव तो है परन्तु जब तक कोई और प्रमाण न मिले तब तक इसे एक किंवदन्तीसे अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता।

१— प्रीतिकी न पाती कोऊ प्रेमको न फूल और,
चित्तको न चंदन सनेहको न सेहरा।
हृदैको न आसन सहजको न सिंहासन;
भावकी न सौज और सून्यको न गेहरा॥
सीलको सनान नाहिं ध्यानको न धूप और,
ज्ञानको न दीपक अज्ञान तमकेहरा।
मनको न माला कोऊ सोऽहंको न जाप और,
आत्माको देव नाहिं देहको न देहरा॥ १७
—साँचको अंग पृ. ५११

अर्द्ध-कथानक

(मूल पाठ)

अर्ध-कथानक

श्रीपरमात्मने नमः । अथ बनारसीदासकृत अर्ध-कथानक लिख्यते[1]

दोहा

पानि-जुगुल-पुट सीस धरि, मानि अपनपौ दास ।
आनि भगति चित जानि प्रभु, बंदौं पास-सुपास ॥ १ ॥

सवैया इकतीसा बनारसी नगरीकी सिफत[2]

गंगमांहि आइ धसी द्वै नदी बरुना असी,
बीच बसी बनारसी नगरी बखानी है ।
कसिवार देसमैं मध्य गांउ तातैं कासी नांउ,
श्रीसुपास-पासकी जनमभूमि मानी है ॥
तहां दुहु जिन सिवमारग प्रगट कीनौ,
तबसेती सिवपुरी जगतमैं जानी है ।
एसी बिधि नाम थपे नगरी बनारसीके,
और भांति कहै सो तौ मिथ्यामत-वानी है ॥ २ ॥

---

१ ड इ ओंनमः सिद्धेभ्यः । श्री जिनाय नमः । अथ बनारसी अवस्था लिख्यते।
२ ड नि

दोहरा

जिन पहिरी जिन-जनमपुर-नाम-मुद्रिका-छाप ।
सो बनारसी निज कथा, कहै आपसौं आप ॥ ३ ॥

चौपाई

जैनधर्म श्रीमाल सुबंस । बानारसी नाम नरहंस ।
तिनि मनमांहि विचारी बात । कहौं आपनी कथा विख्यात ॥ ४ ॥
जसी सुनी बिलोकी नैन । तैसी कछु कहौं मुख बैन ॥
कहौं अतीत-दोष-गुणवाद । बरतमानताईं मरजाद ॥ ५ ॥
भावी दसा होइगी जथा । ग्यानी जानै तिसकी कथा ॥
तातैं भई-बात मन आनि । थूलरूप कछु कहौं बखानि ॥ ६ ॥
मध्यदेसकी बोली बोलि । गर्भित बात कहौं हिय खोलि ॥
भाखूं पूरब-दसा चरित्र । सुनहु कान धरि मेरे मित्र ॥ ७ ॥

दोहरा

याही भरत सुखेतमैं, मध्यदेस सुभ ठांउ ।
बसै नगर रोहतगपुर, निकट बिहोली-गांउ ॥ ८ ॥
गांउ बिहोलीमैं बसै, राजबंस रजपूत ।
ते गुरु-मुख जैनी भए त्यागि करम अंधभूत ॥ ९ ॥
पहिरी माला मंत्रकी, पायौ कुल श्रीमाल ।
थाप्यौ गोत बिहोलिया, बीहोली-रखपाल ॥ १० ॥
भई बहुत बंसावली, कहौं कहाँ लौं सोइ ।
प्रगटे पुर रोहतगमैं, गांगा गोसल दोइ ॥ ११ ॥
तिनके कुल बस्ता भयौ, जाको जस परगास ।
बस्तापालके जेठमल, जेठके जिनदास ॥ १२ ॥

१ ड रहतग्गपुर । २ ड गुरमुख । ३ म अधभूत । ४ ब म हैं गोसल गाढो ।

मूलदास बिनदासके, भयौ पुत्र परधान ।
पढ्यौ हिंदुगी पारसी, भागवान बलवान ॥ १३ ॥

मूलदास बीहोलिआ, बनिक वृत्तिके भेस ।
मोदी ह्वै के मुगलकौ, आयौ मालवदेस ॥ १४ ॥

चौपई

मालवदेस परम सुखधाम । नरवर नाम नगर अभिराम ।
तहाँ मुगल पाई जागीर । साहि हिमाऊंकौ बरै बीर ॥ १५ ॥
मूलदाससौं बहुत कृपाल । करै उचापति सौंपै माल ।
संवत सोलहसै अठ जान । आठ बरस अधिके परवान ॥१६॥
सावन सित पंचमि रविवार । मूलदास-घर सुत अवतार ।
भयौ हरख खरचे बहु दाम । खरगसेन दीनौं यहु नाम ॥ १७
सुखसौं बरस दोइ चलि गए । घनमल नाम और सुत भए ।
बरस तीन जब बीते और । घनमल काल कियौ तिस ठौर ॥ १८

दोहरा

घनमल घन-दल उड़ि गए, काल-पवन-संजोग ।
मात-तात तरुवर तए, लहि आतप सुत-सोग ॥ १९

चौपई

दुहु-सुत-सोक कियौ असराल । मूलदास भी कीनौं काल ॥
तेरहोत्तरे संवत बीच । पिता-पुत्रकौं आइ मीच ॥ २०

---

१ ह हिंदर । २ ड आया । ३ अ प्रतिमें हांसियेपर इस शब्दका अर्थ 'अमराउ' दिया है । ४ ब पंचैं ।

खरगसेन सुत माता साथ। सोक-बिआकुल भए अनाथ॥
मुगल गयौ थो' कतहू गांउ। यह सब बात सुनी तिस ठांउ॥ २१

दोहरा

आयौ मुगल उतावलौ, सुनि मूलाकौ काल।
मुहर-छाप घर खालसै, कीनौ लीनौ माल॥ २२
माता पुत्र भए दुखी, कीनौ बहुत कलेस।
ज्यौं त्यौं करि दुख देखते, आए पूरब देस॥ २३

चौपई

पूरबदेस जौनपुर गांउ। बसै गोमती-तीर सुठांउ।
तहां गोमती इहि बिध बहै। ज्यौं देखी त्यौं कविजन कहै॥ २४

दोहरा

प्रथम हि दच्छिनमुख बही, पूरब मुख परबाह।
बहुरौं उत्तरमुख बही, गोवै नदी अथाह॥ २५

गोवै नदी त्रिविधिमुख बही। तट रमनीक सुविस्तर मही।
कुल पठान जौनासह नांउ। तिन तहां आइ बसायो गांउ॥ २६
कुतबा पढ्यौ छत्र सिर तानि। बैठि तख्त फेरी निज आनि।
तब तिन तख्त जौनपुर नांउ। दीनौ भयौ अचल सो गांउ॥ २७
चारौं बरन बसैं तिस बीच। बसहिं छतीस पौंनि कुल नीच।
बांभन छत्री बैस अपार। सूद्र भेद छत्तीस प्रकार॥ २८

छतीस पौंन कथन। सवैया इकतीसा

सीसगर, दरजी तंबोली, रंगवाल, ग्वाल,
बाढ़ई, संगतरास, तेली, धोबी, धुनिया।

---

१ ब थो ई हो। २ स घर। ३ ब दच्छिन, म दखिन। ४ ब फिरबर, ई फिरि। ५ म गोमइ। ६ ब रमनीक, ई रमनीक।

कंदोई, कहार, काछी, कलाल, कुलाल, माली,
कुंदीगर, कागदी, किसान, पटबुनियां ॥
चितेरा, बंधेरा, बारी, लखेरा, ठठेरा, राज,
पटुवा, छप्परबंध, नाई, भार-भुनियां ।
सुनार, लुहार, सिकलीगर, हवाईगर,
धीवर, चमार एई छत्तीस पैठनियां ॥ २९

चौपाई

नगर जौनपुर भूमि सुचंग । मठ मंडप प्रासाद उतंग ।
सोभित सप्तखने गृह घने । सघन पताका तंबू तने ॥ ३०
जहां बावन सराइ पुरकने । आसपास बावन परगने ।
नगरमाहिं बावन बाजार । अरु बावन मंडई उदार ॥ ३१
अनुक्रम भए तहां नव साहि । तिनके नांउ कहौं निरबाहि ।
प्रथम साहि जौनासह जानि । दुतिय बबक्करसाहि बखानि ॥ ३२
त्रितिय भयौ सुरहर सुलतान । चौथा दोस महम्मद खान ॥
पंचम भूपति साहि निजाम । छट्ठम साहि बिराहिम नाम ॥ ३३
सप्तम साहिब साहि हुसैन । अट्ठम गाजी सज्जित सैन ॥
नवम साहि बख्या सुलतान । बरती जोंसु अखंडित आन ॥ ३४ ॥
ए नव साहि भए तिस ठांउ । यातें तख्त जौनपुर नांउ ॥
पूरब दिसि पटनालौं आन । पश्चिम हद इटावा थान ॥ ३५ ॥

---

१ ख छप्परबंद । २ ख धीमर । ३ बापजीने पदमाजमें मोहम पउनियोंके ११ गुनोंका संकेत किया है । ४ ख बाबन । ५ ई उमरि । ६ ख पच्छिम ।

दच्छिन विंध्याचल सरहद । उत्तर परमित घाघर नद ॥
इतनी भूमि रोज विख्यात । बरिस तीनिसैकी यहु बात ॥ ३६ ॥
हुते पुरुष पुरखा परधान । तिनिके वचन सुने हम कान ॥
बरनी कथा जथाश्रुत जेम । मृषा दोष नहिं लागै एम ॥ ३७ ॥

यह सब बरनन पाछिलौ, भयौ सुकाल वितीत ।
सोरहसै सौं अधिक, सभै कथा सुनु मीत ॥ ३८ ॥
नगर जौनपुरमैं बसै, मदनसिंघ श्रीमाल ।
जैनी गात चिनालिया, बनजै हीरा-लाल ॥ ३९ ॥
मदन जौहरीकौ सदनु, ईहत बूझत लोग ।
खरगसेन मातासहित, आए करम-संजोग ॥ ४० ॥
छत्रमलै नाना सेर्मेकौ, ताकौ भ्रमम एह ।
दीनौ आदर अधिक तिन[6], कीनौ अधिक सनेह ॥ ४१ ॥

चौपई

मदन कहै पुत्री सुनु एम । तुमहिं अवस्था व्यापी केम ॥
कहै सुता पूरब विरतंत । एहि बिधि मुए पुत्र अर कंत ॥ ४२ ॥
सरवस लूटि लियो ज्यौं मीर । सो सब बात कही धरि धीर ॥
कहै मदन पुत्रीसौं रोइ । एक पुत्रसौं सब किछु होइ ॥ ४३ ॥
पुत्री सोच न करु मनमांह । सुख दुख दोऊ फिरती छांह ॥
सुता दोहिता कंठ लगाइ । लिए बसन भूखन पहिराइ ॥ ४४ ॥
सुखसा रहहि न व्यापै काल । जैसा घर तैसी ननसाल ॥
बरिस तीनि बीते इह भांति । दिन दिन प्रीति रीति सुख सांति ॥४५

१ भ ड दच्छिन। २ स पछु। ३ भ चकमछ। ४ भ प्रतिके हाशियेमें इस शब्दका अर्थ खरगसेन लिखा है। ५ भ ड भाई। ६ ड तिन।

आठ बरसकौ बालक भयौ । तब चटसाल पढ़नकौं गयौ ॥
पढ़ि चटसाल भयौ वितपन्न । परखै रतन-टका-सोवन्न ॥ ४६ ॥
भइ उपापति लिखै बनाइ । भत्तो जमा कहै समुझाइ ॥
लैना देना विधिसौं लिखै । बैठै हाट सराफी सिखै ॥ ४७ ॥
बरिस च्यारि जब बीते और । तब सु चले उदरमैंकी दौर ॥
पूरब दिसि बंगाला थान । सुलेमान सुलतान पठान ॥ ४८ ॥
ताकौ साला लोदी खान । सो तिन राख्यौ पुत्र समान ॥
सिरीमाल ताकौ दीवान । नांउ राइ धंना जग जान ॥ ४९ ॥
चौधरि गोत्र बंगाले बसै । सबै सिरीमाल पांचसै ॥
पोतदार कीए तिन सब । भोग्य-संजोग कमावहिं दर्ब ॥ ५० ॥
करै विसास न लेखा लेइ । सबकौं फारकती लिखि देइ ॥
पोसइ-पड़िकौंनासौं पेम । नौतन गेह करनकौ नेम ॥ ५१ ॥

दोहरा

खरगसेन चौदोलिया, सुनी राइकी बात ।
निज मातासौं मंत्र करि, चले निकसि परभात ॥ ५२ ॥
माता किछु खरची दइ, नाना जानै नाहिं ।
ले घोरा असवार होइ, गए राइकी पाहिं ॥ ५३ ॥
जाइ राइजीकौं मिल्यौ, कह्यौ सकल विरतंत ।
करी दिलासा बहुत तिन धरी बात उर अंत ॥ ५४ ॥
एक दिवस काहू समै मनमैं सोचि विचारि ।
खरगसेनकौं रायनैं, दिए परगने च्यारि ॥ ५५ ॥

---
१ ब चुरतम । २ ब उवम ब ड उरम । ३ ब बसनै । ४ स भग्यसौंम, ड भागसौंम । ५ ब कर विस्वास ।

चौपई

पोतदार कीनौं निज सोइ, दीने साथि कारकुन दोइ ।
जाइ परगनै कीनौं काम, करहि अमल तहसीलहि दाम ॥ ५६ ॥
जोरि खजाना भेजहि तहां, राइ तथा लोदीखां जहां ॥
इहि विधि बीते मास छ सात, चले समेतसिखरिकी जात ॥ ५७ ॥

दोहरा

संघ चलायौ रायजी, दियौ हुकम सुलतान ।
उहां जाइ पूजा करी, फिरि आए निज थान ॥ ५८ ॥
आइ राइ पट-भौनमैं, बैठे संध्याकाल ।
विधिसौं सामाइक करी, लीनौं कर जपमाल ॥ ५९ ॥
चौविहार करि मौन धरि, जपै पंच नवकार ।
उपजी सूल उदरविषैं, हूओ हाहाकार ॥ ६० ॥
कही न मुखसौं बात किछु, तही मृत्यु ततकाल ।
गही भौर थिति आइ तिनि, ढही देह-दीवाल ॥ ६१ ॥

सवैया तेईसा

पुंन संजोग जुरे रथ पाइक, माते मतंग तुरंग तबेले ।
मानि विभौ अंगयौ सिर भार, कियौ बिसतार परिग्रह ले ले ॥
बंध बढ़ाइ करी थिति पूरन, अंत चले उठि आपु अकेले ।
हारे हमालकी पोटसी डारि कै, और दिवालकी ओट ह्वै खेले ॥ ६२ ॥

चौपई

इहि विधि राइ अचानक मुआ । गांठ गांठ कोलाहल हुआ ॥
खरगसेन सुनि बहु बिलखंत । गया भागि घेर त्यागि तुरंत ॥ ६३ ॥

१ छ पम ।

कीनौं दुखी देखि ही भेख। लीनौं उलट पंथ परदेस ॥
नदी गांठ धन बरषत घूमि। आए नगर जौनपुर-भूमि ॥ ६४ ॥
रजनी समै गेह निज आइ। गुरुजन-चरननमैं सिर नाइ ॥
किछु अंतर-धनु हुतौ जु साथ। सो दीनौं माताके हाथ ॥ ६५ ॥
यहि बिधि बरस च्यारि चलि गए। बरस अठारहके जब भए।
कियौ गवन तब पच्छिम दिसा। संवत सोलह से छब्बिसा ॥ ६६ ॥
आए नगर आगरेमांहि। सुंदरदास पीतिया पांहि।
खरगसेनसौं राखै प्रेम। करै सराफी बेचै हेम ॥ ६७ ॥
खरगसेन भी बैठी करी। दुहू मिलाइ दामसौं भरी।
दोऊ सीर करहिं बेपार। कला निपुन धनवंत उदार ॥ ६८ ॥
उभय परस्पर प्रीति गहंत। पिता पुत्र सब लोग कहंत।
बरस च्यारि ऐसी बिधि भए। तब मेरठिपुर ब्याहन गए ॥ ६९ ॥

छप्पै

सूरदास श्रीमाल ढोर मेरठी कहावै।
ताकी सुता बियाहि, सेन अर्गलपुर आवै ॥
आइ हाट बैठे कमाइ, कीनी निज संपति।
पापीसौं नहिं बनी, लियौ न्यारो घर दंपति ॥
इस बीचि बरस द्वै तीनिमैं, सुंदरदास कलत्रसुत।
मरि गए त्यागि धन धाम सब, सुता एक, नहिं कोउ सुत ॥ ७० ॥

दोहरा

सुता कुमारी जो हुती, सो परनाई सेनि।
दान मान बहुबिधि दियौ दीनी कंचन रैनि ॥ ७१ ॥

---

१ ड दारिदी। २-३ ब दौल, उज्जीन। ४ ब बरत। ५ ब गुन।

चौपई

पोतदार कीनौं निज सोइ, दीनै सामि कारकुन दोइ।
जाइ परगनें कीनौं काम, करहि अमल तहसीलहि दाम ॥ ५६ ॥
जोरि खजाना भेजहि तहां, राइ तथा लोदीखां जहां ॥
इहि विधि बीते मास छ सात, चले समेतसिखरिकी जात ॥ ५७ ॥

दोहरा

सब चलायौ रायजी, दियौ हुकम सुलतान।
उहां जाइ पूजा करी, फिरि आए निज थान ॥ ५८ ॥
आइ राइ पट-भौनमें, बैठे संध्याकाल।
विधिसौं सामाइक करी, लीनौं कर जपमाल ॥ ५९ ॥
चौविहार करि मौन धरि, जपै पंच नवकार।
उपजी सूल उदरविषै हूमो हाहाकार ॥ ६० ॥
कही न मुखसौं बात किछु, उही मृत्यु ततकाल।
गही और विधि आइ तिनि, ढही देह-दीवाल ॥ ६१ ॥

सवैया तेईसा

पुन संजोग जुरे रथ पाइक, माते मतंग तुरंग तबेले।
मानि विभौ अंगयौ सिर भार, कियौ बिसतार परिग्रह ले ले ॥
बंध बढाइ करी थिति पूरन, अंत चले उठि आपु अकेले।
हारे हमालकी पोटसी डारिकै, और दिवालकी ओट ह्वै खेले ॥ ६२ ॥

चौपई

यहि विधि राइ अचानक मुआ। गांउ गांउ कोलाहल हुआ ॥
खरगसेन सुनि यहु विरतंत। गयौ भागि घेर लागि तुरंत ॥ ६३ ॥

१ ऊ धन।

तब सुधि करी सतीकी बात । खरगसेन फिर दीनी भात ॥
संवत सोलहसै सताल । माघ मास सित पक्ष रसाल ॥ ८३
एकादसी वार रवि-नंद । नखत रोहिनी वृषको चंद ॥
रोहिनि त्रितिय चरन अनुसार । खरगसेन-घर सुत अवतार ॥ ८४
दीनों नाम विक्रमाजीत । गावहिं कामिनि मंगल-गीत ॥
दीजहि दान भयौ अति हर्ष । जनम्यौ पुत्र आठंए वर्ष ॥ ८५
गहि विधि बीते मास छ सात । चले सु पार्स्वनाथकी जात ॥
कुल कुटुंब सब लीनौं साथ । विधिसौं पूजे पारसनाथ ॥ ८६
पूजा करि जोरे जुग पानि । आगे बालक राख्यौ आनि ॥
तब कर जोरि पुजारा कहै । बालक चरन तुम्हारे गहै ॥ ८७
चिरजीवि कीजे यह बाल । तुम्ह सरनागतके रखपाल ॥
इस बालकपर कीजै दया । अब यह दास तुम्हारा भया " ॥ ८८
तब सु पुजारा साधे पौन । मिथ्या ध्यान करायौ मौन ॥
घरी एक जब भई वितीत । सीस घुमाइ कहै सुनु मीत ॥ ८९
" सुपिनेमें कछु आयौ नाहि । सो सब बात कहौं मैं तोहि ॥
प्रभु पारस जिनवरको जक्ष । सो मो पै आया परतक्ष ॥ ९० ॥
तिन यह बात कही मुझपाहि । इस बालककौं चिंता नाहि ॥
जो प्रभु-पास जनमको गाउ । सो दीजै बालककौं नाउ ॥ ९१ ॥
तौ बालक चिरजीवी होइ । यह कहि लोप भयौ सुर सोइ ॥ "
तब यह बात पुजारे करी । खरगसेन जिय जानी खरी ॥ ९२ ॥

दोहा

हरषित कहै कुटुंब सब स्वामी पास सुपास ।
दुहुँको जनम बनारसी यह बनारसीदास ॥ ९३ ॥

[illegible]

संपति सुंदरदासकी, जु कछु लिखी मिलि पंच ।
सो सब दीनी बहिनिकौं, लेन न राखी रंच ॥ ७२ ॥
तेतीसै संवत समै, गए जौनपुर गाम ।
एक तुरंगम एक रथ, बहु पाइक बहु दाम ॥ ७३ ॥
दिन दस बीते जौनपुर, नगरमांहि करि हाट ।
साझी करि बैठे तुरित, कियौ बनजकौ ठाट ॥ ७४ ॥
रामदास बनिआ धनपती । जाति अगरवाला सिवमती ॥
सो साझी कीनौं हित मानें । प्रीति रीति परतीति मिलानें ॥ ७५ ॥
करहिं सराफी दोऊ गुनी । बनजहिं मोती मानिक चुनी ॥
सुखसौं काल भली बिधि गमै । सोलहसै पैंतीस समै ॥ ७६ ॥
खरगसेन घर सुत अवतर्यौ । खरच्यौ दरब हरस मन धर्यौ ॥
दिन दसम बहुर्यौ परलोक । कीना प्रथम पुत्रकौ सोक ॥ ७७ ॥
सैंतीसै संवतकी बात । खरतग गए सतीकी जात ॥
चोरन्ह लूटि लियौ पथमांहि । सर्वस गयौ रह्यौ कछु नांहि ॥ ७८
रहे बसन अरु रूपसि-देह । ज्यौं त्यौं करि आए निज गेह ॥
गए हुते मांगनकौं पूत । यहु फल दीनौं सती अऊत ॥ ७९
तऊ न समुझै मिथ्या बात । फिरि मानी उनहीकी बात ॥
प्रगट रूप देखै सब लोकै । तऊ न समुझै मूरख लोकै ॥ ८०
घर आए फिर बैठे हाट । मदनसिंघ चित भए उचाट ॥
माया तजी भई सुभ भांति । तीन बरस बीते इस भांति ॥ ८१
संवत सोलहसै इकताल । मदनसिंघनैं कीनौं काल ॥
धर्म कथा पढ़ी सब ठौर । बरस दोइ जब बीते और ॥ ८२

१ ब बाम । २ अ सोम । ३ अ वोय । ४ अ बीठी ।

एहि बिधि धरि बालककौ नांउ । आए पलटि जौनपुर गांउ ॥
सुख समाधिसौं बरतै काल । संमत सोलह सै अठताल ॥ ९४ ॥
पूरब करम उदै संजोग । बालककौं संग्रहनी रोग ।
उपज्यौ औषध कीनी घनी । तऊ न बिथा जाइ सिसुतनी ॥ ९५ ॥
बरस एक दुख देख्यौ बाल । सहज समाधि भई ततकाल ॥
बहुरौ बरस एकलौं भला । पंचासे निकसी सीतला ॥ ९६ ॥

दोहरा

बिथा सीतला उपसमी बालक भयौ अरोग ।
खरगसेनके घरि सुता, भई करम-संजोग ॥ ९७

आठ बरसकौ हूओ बाल । बिद्या पढ़न गयौ चटसाल ॥
गुर पांड़ेसौं बिद्या सिखै । अक्खर बांच लेखा लिखै ॥ ९८
बरस एक लौं बिद्या पढ़ी । दिन दिन अधिक अधिक मति बढ़ी ॥
बिद्या पढ़ि हूओ बितपन्न । संमत सोलह सै बावन्न ॥ ९९

दोहरा

खरगसेन बनिज रतन, हीरा मानिक लाल ।
इस अंतर नौ बरसकौ, भयौ बनारसि बाल ॥ १००
खैराबाद नगर बसै, ताम्बी परबत नाम ।
तासु पुत्र कल्यानमल, एक सुता तसैं धाम ॥ १०१ ॥
तासु पुरोहित आइयो लीनैं नाऊं साथ ।
पत्र लिखत कल्यानकौ, दियौ सेनके हाथ ॥ १०२ ॥
करी सगाई पुत्रकी, कीनौ तिलक लिलाट ।
बरस दोइ उपरांत लिखि, लगन ब्याहकी ठाट ॥ १०३ ॥

अ उपजी । २ अ लर । ३ ब बधु । ४ स ई नारि ।

भयौ भंवरा कोठौ एक । मध्य पदारथ और अनेक ॥
सकल वस्तु पूरन करि गेह । तिन दीनों करि बहुत सनेह ॥१२४॥
नागसेन हठ कीनौ महा । चरन पकरि तिन कीनी इहा ॥
अति आग्रह करि लीनौं सबै । विनय बहुत कीनी तजि गर्व ॥१२५॥

दोहरा

धन पायस पायस समे, दिन दीनौं निज भौन ।
साधिक महिमाकी कथा, मुखसौं वरने कौन ॥ १२६ ॥

चौपई

नागसेन तहां मुखसौं रहै । दसा विचारि कपीसुर कहै ॥
यह दुख दियौ नवाब किलीच । यह सुख साहिजादपुरवीच ॥१२७
एक दिष्टि बहु अंतर होइ । एक दिष्टि सुख-दुख सम दोइ ॥
जो दुख देखै सो सुख लहै । सुख भुंजै सोई दुख सहै ॥ १२८ ॥

दोहरा

सुखमैं माने मैं सुखी, दुखमैं दुखमय होइ ।
मूढ पुरुषकी दिष्टिमैं, दीसै सुख दुख दोइ ॥ १२९ ॥
ग्यानी संपति विपतिमैं, रहै एकसी भांति ।
ज्यौं रवि ऊगत आथवत, तजै न राती कांति ॥ १३० ॥
करमचंद माहुर बनिक, नागसेन श्रीमान ।
मन मिल दोऊ पुरुष रहै रयनि दिन ठान ॥ १३१ ॥
इहि विधि कीनौं मास दस साहिजादपुर धाम ।
फिर उठि चले प्रयागपुर बसै त्रिवेनी धाम ॥ १३२ ॥

१ च दो। १ अ अवर। १ अ मन।

आइ सबनि कीनौ मतौ, भागि जाहु तजि भौन ।
निज निज परिगह साथ लै, परै काल-मुख कौन ॥ ११४ ॥

चौपई

यह कहि भिन्न भिन्न सब भए । फूटि फाटिकै चहुंदिसि गए ॥
खरगसेन लै निज परिवार । आए पच्छिम गंगापार ॥ ११५ ॥
नगरी साहिजादपुर नांउ । निकट कड़ा मानिकपुर गांउ ॥
आए साहिजादपुर बीच । बरसै मघ भई अति कीच ॥ ११६ ॥
निसा अंधेरी बरसा घनी । आइ सराइ पसे गृह धनी ॥
खरगसेन सब परिजन साथ । करहिं रुदन ज्यौं दीन अनाथ ॥११७

दोहरा

पुत्र कलत्र सुता जुगल, अरु सेवदा अनूप ।
भोग-अंतराई-उदै, भए सकल दुखरूप ॥ ११८ ॥

चौपई

इस अवसर तिस पुर थानिआ । करमचंद माहुर बानिआ ॥
तिन अपनौं घर खाली कियौ । आपु निवास और घर लियौ ॥११९॥
गई बितीतै रैनि इक जाम । टेरै खरगसेनकौ नाम ॥
टेरत सुनत आयौ तहां । खरगसेनजी बैठे जहां ॥१२०॥
रामराम ' करि बैठ्यौ पास । बोल्यौ तुम साहब मैं दास ॥
चलहु कृपा करि मेरे संग । मैं सेवक तुम चढ़ौ तुरंग ॥ १२१ ॥
जथाजोग है डेरा एक । चलिए तहां न कीजै टेक ॥
आए हितसौं तासु निकेत । खरगसेन परिवारसमेत ॥ १२२ ॥
बैठ सुखसौं करि विस्राम । देख्यौ अति विचित्र सो धाम ॥
कोरे कलस धरे बहु माट । आदरि सौरि सुलाई खाट ॥ १२३ ॥

१ ई स पच्छिम। २ ड कड़ा, ब कही मानिकपुर। ३ ब माहोर। ४ ब बितीति।

चौपई

बसे प्रयाग त्रिवनी पास। जाको नाउ इलाहाबास ॥
तहां दानि बसुधा-पुरहुत। अकबर पातिसाहको पूत ॥ १३३ ॥
खरगसेन तहां कीनौ गौन। रोजगार कारन तजि मौन ॥
बनारसी बालक घरि रखौ। कौड़ी-बेच बनिजं तिन गखौ ॥१३४॥
एक टका द्वै टका कमाइ। काहूकी ना धरै समाइ ॥
जोरै नफा एकठा करै। लै दादीके आगैं धरै ॥ १३५

दोहरा

दादी बांटै सीरनी, लाडू नुकती नित।
प्रथम कमाई पुत्रकी, सती अऊत निमित्त ॥ १३६

चौपई

दादी मानै सती अऊत। जानै तिन दीनौ यह पूत ॥
देखै सुपिन करै सब सैन। आगे कहै पितरके बैन ॥ १३७
तासु बिचार करै दिन राति। ऐसी मूढ़ जीवकी जाति ॥
कहत न बनै कहै का कोइ। जैसी मति तैसी गति होइ ॥ १३८

दोहरा

मास तीनि औरौं गए, बीते तेरह मास।
चीठी आई सेनकी, करहु फतेपुर बांस ॥ १३९ ॥
छोटी द्वै भाडे करी कीनैं प्यारि मजूर।
सहित कुटुंब बनारसी, आए फत्तेपूर ॥ १४० ॥

चौपई

फत्तेपुरमैं आए तहाँ। ओसवालके घर हैं जहाँ ॥
वासू साह अध्यातम-ग्यान। बसे बहुत तिन्हकी संतान ॥१४१॥

१ ड ई अनव। २ म ब निकुडी। ३ व दक।

ताहि हुकम अकबरको भयौ । साहिजादा कोस्तूनन गयौ ॥
तातैं सो किछु कर द जेम । कोस्तूनन नहिं जाय सलेम ॥ १५१ ॥
एहि विधि अकबरको फुरमान । सीस चढ़ायौ नूरम खान ॥
तब तिन नगर जौनपुर बीच । भयौ गड़पती ठानी मीच ॥१५२॥
जहां तहां रूधी सब बाट । नाउ न चलै गौमती-घाट ॥
पुल दरवाजे दिए कपाट । कीनौ तिन विग्रहको ठाठ ॥ १५३ ॥
राखे बहु पायक असवार । चहु दिसि बैठे चौकीदार ॥
कोट कंगुरेन्ह राखी नाल । पुरमैं भयौ ऊँचलाचाल ॥ १५४ ॥
करी बहुत गड़ सयोजनी । अन्न दैख जलकी ढोवनी ॥
सिरह जीन बंदूक अपार । बहु दारू नाना हथियार ॥ १५५ ॥
खोठि खजाना खरचै दाम । भयौ आपु सनमुख संग्राम ।
प्रजाठोग सब व्याकुल भए । भागे चहु ओर उठि गए ॥ १५६ ॥
महा नगरि सो भई उजार । । भय आई मैंम आई धार ॥
सब जौंहरी मिले इक ठौर । नगरमांहि नर रहौ न और ॥१५७॥
क्या कीजै अब कौन विचार । मुसकिल भई सहित परिवार ॥
रहे न कुसल न भागे छेमें । पकरी सांप छछूंदरि जेम ॥१५८॥
सब सन मिलि नूरमके पास । गए जाइ कीनी अरदास ॥
नूरम कहै सुनहु रे साहु । भाव इहां रहौ क जाहु ॥ १५९ ॥
मेरी मरन बन्यौ है आइ । मैं क्या तुमका कहां उपाइ ॥
तब सब फिरि आए निज धाम । मागहु जो किछु करहि सो राम ॥१६०

१ स उचान्ध । २ ब बहु । ३ म आई बह । ४ म लेम । ५ म भारे इहां रहांगे बाहु ।

दोहरा

कै पढ़ना कै आसिखी, मगन दुहू रसमांहि ॥
खान-पानकी सुध नहीं, रोजगार किछु नांहि ॥ १८० ॥

चौपई

ऐसी दसा बरस द्वै रही । मात पिताकी सीख न गही ।
करि आसिखी पाठ सब पठे । संवत सोलह सै उनसठे ॥ १८१ ॥

दोहरा

भए पंचदस बरसके, तिस ऊपर दस मास ।
चले पाउजा करनकौं, कवि बनारसीदास ॥ १८२ ॥
चढ़ि डोली सेवक लिए, भूषन बसन बनाइ ।
खैराबाद नगरविषै, सुखसौं पहुचे आइ ॥ १८३ ॥

चौपई

मास एक जब भयौ वितीत । पौषे मास सितै पख रितु सीत ॥
पूरब करम उदै संजोग । आकसमात बातकौ रोग ॥ १८४ ॥

दोहरा

भयौ बनारसिदास-तनु, कुष्ठरूप सरबंग ।
हाड़ हाड़ उपजी बिथा, केस रोम भुव-भंग ॥ १८५ ॥
बिस्फोटक अगनित भए, हस्त चरन चौरंग ।
कोऊ नर साला ससुर, भोजन करै न संग ॥ १८६ ॥
ऐसी असुभ दसा भई, निकट न आवै कोइ ।
सासू और बिवाहिता, करहिं सेव तिय दोइ ॥ १८७ ॥

---

१ ड पोस। २ म रितु सिर पख सीत। ३ म पाप संजोग।

विद्या पढ़ि विद्यामें रमै । सोलह सै सतावन समै ॥
तजि कुल-कान लोककी लाज । भयौ बनारसि आसिखबाज ॥१७०

करै आसिखी धरि मन धीर । दरदबंद ज्यौं सेख फकीर ॥
इकटक देखि ध्यान सो धरै । पिता आपनेकौ धन हरै ॥ १७१ ॥

चोरै चूंनी मानिक मनी । आनै पान मिठाई घनी ॥
भेजे पेसकसी हित पास । आपु गरीब कहावै दास ॥ १७२ ॥

इस अंतर चौमास वितीत । आई हिमरितु ब्यापी सीत ॥
खरतर अभैधरम उवझाइ । दोइ सिष्यजुत प्रकटे आइ ॥ १७३ ॥

भानचंद मुनि चतुर विसेष । रामचंद बालक गृह-भेष ॥
आए जती जौनपुरमाहि । कुल श्रावक सब आवहिं जांहि ॥१७४

लखि कुल-धरम बनारसि बाल । पिता साथ आयौ पोसाल ॥
भानचंदसौं भयौ सनेह । दिन पोसाल रहै निसि गेह ॥ १७५ ॥

भानचंदपै विद्या सिखै । पचसंधिकी रचना लिखै ॥
पढ़ै सनातर विधि अस्तोन । फुट सिलोक बहु बरन कौन ॥१७६॥

सामाइक पडिकौना पंथ । छंद कोस स्रुतबोध गरंथ ॥
इत्यादिक विद्या मुखपाठ । पढ़ै सुद्ध साधै गुन आठ ॥ १७७ ॥

कबहू आइ सबद उर धरै । कबहू जाइ आसिखी करै ॥
पोथी एक बनाई नई । मित हजार दोहा चौपई ॥ १७८ ॥

तामैं नवरस-रचना लिखी । पै विसेस बरनन आसिखी ॥
ऐसे कुकवि बनारसि भए । मिथ्या ग्रंथ बनाए नए ॥ १७९ ॥

---

१ द्र आप ।

चौपई

मासि चारि ऐसी बिधि भए। खरगसेन पटनै उठि गए ॥
फिरि बनारसी खैराबाद। आए मुख लज्जित सविषाद ॥ १९७
मास एक फिरि दूजी बार। घरमैं रहे न गए बजार ॥
फिरि उठि चले नारि लै संग। एक सुखोली एक तुरंग ॥ १९८
आए नगर जौनपुर फेरि। कुल कुटंब सब बैठे घेरि ॥
गुरुजन लोग देंहि उपदेस। आसिखबाज सुनें दरवेस ॥१९९
बहुत पढ़ै बांभन अरु भाट। बनिकपुत्र तौ बैठे हाट ॥
बहुत पढ़ै सो माँगै भीख। मानहु पूत बड़ेकी सीख ॥ २००

दोहरा

इत्यादिक स्वारथ बचन, कहे सबनि बहु भांति।
मानै नहीं बनारसी रह्यौ सहज-रस मांति ॥ २०१

चौपई

फिरि पोसाल मानपै पढ़ै, आसिखबाजी दिन दिन बढ़ै ॥
काहू कह्यौ न मानै कोइ, जैसी गति तैसी मति होइ ॥ २०२
कर्माधीन बनारसि रमै, आयौ संवत साठा समै ॥
साठे संवत एती बात भई हु मरइ कहौं विख्यात ॥ २०३
साठे करि फर्नेर्यौ गौन। खरगसेन आए निज भौन ॥
साठे न्यादी बेटी भई। पितरी पहिली संपति गई ॥ २०४
बनारसीकैं बेटी हुई। दिवस छ-सातमांहि सो मुई ॥
अल्पमति परे बनारसिदास। कीर्न लंघन वीस उपास ॥ २०५

---

१ म बेटी भई। इस प्रतिकी टिप्पणीमें इस कन्याका नाम वीरबाई लिखा है।

जल-भोजनकी ठहि सुष, देहि आनि मुखमांहि ।
ओखद लावहिं अंगमैं, नाक मूंदि उठि जांहि ॥ १८८ ॥

चौपई

इस अवसर नर नापित कोइ । ओखद-पुरी खवावै सोइ ॥
चने अलूने भोजन देइ । पैसा टका किछू नहि लेइ ॥ १८९ ॥
चारि मास बीते इस भांति । तब निक्षु बिथा भई उपसांति ॥
मास दोइ औरौ चलि गए । तब बनारसी नीके भए ॥ १९० ।

दोहरा

न्हाइ धोइ ठाढ़े भए, दै नाऊकौं दान ।
हाथ जोड़ि बिनती करी, तू मुझ मित्र समान ॥ १९१
नापित भयौ प्रसन अति, गयौ आपने धाम ।
दिन दस खैराबादमैं, कियौ और बिसराम ॥ १९२
फिरि आए डोली चढ़े, नगर जौनपुरमांहि ।
सासु ससुर अपनी सुता, गौंनै भेजी नांहि ॥ १९३
आइ पिताके पद गहे मां राई उर ठोकि ।
जैसे चिरी कुरीजकी, त्यौं सुत-दसा बिलोकि ॥ १९४
खरगसेन लज्जित भए, कुवचन कहे अनेक ।
रोए बहुत बनारसी, रहे चकित छिन एक ॥ १९५
दिन दस बीस परे दुखी बहुरि गए पोसाल ।
लै पढ़ना के आसिखी, पकरी पहिली चाल ॥ १९६

---

१ ब देहमैं ।

बरस एक जब पूरा भया । तब बनारसी द्वारै गया ॥
नीची दिष्टि विलोकै मग । कहु दीनार न पावै पग ॥२१६॥

फिरि दूजे दिन आयौ द्वार । सुपने नहि देखै दीनार ॥
व्याकुल भयौ लोभके काज । चिंता बढ़ी न भावै नाज ॥२१७॥

कही मानसौं मनकी दुधा । तिनि जब कही बात यह मुधा ॥
तब बनारसी जांनी सही । चिंता गई छुधा लहलही ॥ २१८ ॥

जोगी एक मिल्यौ तिस भाइ । बानारसी दियौ भौंदाइ ॥
दीनी एक संखोली हाथ । पूजाकी सामग्री साथ ॥ २१९

कहै सदासिव मूरति एह । पूजै सो पावै सिव-गेह ॥
तब बनारसी सीस चढ़ाइ । लीनी नित पूजै मन लाइ ॥ २२०

न्हानि सनानि भगति चित धरै । अष्टप्रकारी पूजा करै ॥
सिव सिव नाम जपै सौ बार । आठ अधिक मन हरख अपार ॥२२१

दोहरा

पूजै तब भोजन करै, अनपूजे पछिताइ ।
तासु दंड अगिले दिवस, रूखा भोजन खाइ ॥ २२२

ऐसी विधि बहु दिन गए, करत गुपत सिवपूज ।
आयौ संवत इकसठा, चैत मास सित दूज ॥ २२३

साहिब साहि सलीमकौ हीरानंद मुकीम ।
ओसवाल कुल जौंहरी, बनिक वित्तकौ सीम ॥२२४

---

१ ब भनी । २ ब बिन पूजै । ३ ब भए । ४ ब ब वृत्ति ।

त्यागी क्षुधा पुकारे सोइ । गुरुजन पथ्य देइ नहि कोइ ॥
तन मांगे देखनकौ रोइ । आप सेरकी पूरी दोइ ॥ २०६
खाए हेठ ल परी दुराइ । सो बनारसी भखी चुराइ ॥
वाही पथमौं नीकौ भयौ । देख्यौ लोगनि कौतुक नयौ ॥२०७॥
साठे सघन करि ?? दियौं । खरगसेन इक सौदा लियौं ॥
तामैं भए सौगुने दाम । चहल पहल हुइ निज धाम ॥ २०८
यह साठे सघतकी कथा । ज्यौं मैखी मैं बरनी तथा ॥
समै उनसठे सावन बीच । कोऊ संन्यासी नर नीच ॥ २०९
आइ मिल्यौ सो आकस्मात । कही बनारसिसौं तिन बात ॥
एक मंत्र है मेरे पास । सो विधिरूप जपै जो दास ॥ २१
बरस एक लौं साधै नित्त । दिढ प्रतीति आनै निज चित्त ॥
जपै बैठि छेरछोमी माहि । भेद न भाखै किस ही पांहि ॥ २११
पूरन होइ मंत्र जिस बार । तिसके फलका कहूं विचार ॥
प्रात समय आवै गृहद्वार । पावै एक पड़या दीनार ॥ २१२
बरस एक लौं पावै सोइ । फिरि साधै फिरि ऐसी होइ ॥
यह सब बात बनारसि सुनी । जान्या महापुरुष है गुनी ॥ २१३
पकरे पाइ लोभके लिए । मांगै मंत्र बीनती किए ॥
तब तिन दीनौं मंत्र सिखाइ । अक्खर कागदमांहि लिखाइ ॥ २१४
यह प्रदेस उठि गयौ स्वतंत्र । सठ बनारसी साधै मंत्र ॥
बरस एक लौं कीनौ खेद । दीनौं नांहि औरकौं भेद ॥ २१५

१ अ करजूरी, इ करछोमी ।

बरस एक जब पूरा भया । तब बनारसी द्वारै गया ॥
नीची दिष्टि विलोकै धरा । कहु दीनार न पावै परा ॥२१६॥

फिरि दूजै दिन आयौ द्वार । सुपने नहि देखे दीनार ॥
व्याकुल भयौ लोभके काज । चिंता बढ़ी न भावै नाज ॥२१७॥

कही बानसौं मनकी दुधा । तिनि जब कही बात यह मुधा ॥
तब बनारसी मौनी सही । चिंता गई सुभा ल्हल्ही ॥ २१८ ॥

जोगी एक मिल्यौ तिस आइ । बानारसी वियौ भौंदाइ ॥
दीनी एक सखोली हाथ । पूजाकी सामग्री साथ ॥ २१९

कहै सदासिव मूरति एह । पूजै सो पावै सिव-गेह ॥
तब बनारसी सीस चढ़ाइ । लीनी नित पूजै मन लाइ ॥ २२०

न्हानि सनानि भगति चित धरै । अष्टप्रकारी पूजा करै ॥
सिव सिव नाम जपै सौ वार । आठ अधिक मन हरख अपार ॥२२१

दोहरा

पूजै तब भोजन करै, अनपूजै पछिताइ ।
तासु दंड अगिले दिवस, रूखा भोजन खाइ ॥ २२२

ऐसी विधि बहु दिन गए, करत गुपत सिवपूज ।
आयौ सपत इकसठा, चैत मास सित दूज ॥ २२३

साहिब साहि सलीमकौ हीरानंद मुकीम ।
ओसवाल कुल जौंहरी, बनिक विर्तकी सीम ॥२२४

---

१ ब मानी । २ ब बिन पूजे । ३ ब भए । ४ ब ड वृत्ति ।

हीरानंद लोग-मनुहारि । रहे जौनपुरमें दिन चारि ॥
पंचम दिवस पारके भाग । छट्ठे दिन उठि चले प्रयाग ॥ २४२

दोहरा

संघ फूटि चहुं दिसि गयौ, आप आपकौ होइ ।
नदी नाव संजोग ज्यौं, बिछुरि मिले नहिं कोइ ॥ २४३

चौपई

इहि बिधि दिवस कैकु चलि गए । खरगसेनजी नीके भए ॥
सुख समाधि बीते दिन घनें । बीचि बीचि दुख व्यापि न गनें ॥२४४

दोहरा

इस अवसर सुत भवतरचौ, बानारसिके गेह ।
मल पूरन करि मरि गयौ, तजि दुछम नरदेह ॥ २४५

चौपई

संवत सोलह स बासठा । आयौ कातिक पावस नठा ॥
छत्रपति अकबर साहि जलाल । नगर आगरे कीनौं काल ॥ २४६
आई खबर जौनपुरमांह । प्रजा अनाथ भई बिनु नाह ॥
पुरजन लोग भए भयभीत । हिरद व्याकुलता मुख पीत ॥ २४७

दोहरा

अकस्मात बानारसी सुनि अकबरकौ काल ।
सीढ़ी परि बठ्यौ हुतो, भयौ भरम चित चाल ॥ २४८

१ ड बेक । २ ड कालिग ।

माइ तेंवाळा गिरि परयौ सक्यौ न आपा राखि।
फूटि भाल लोहू चल्यौ, कह्यौ 'देव' मुख-भाखि॥ २४९॥
लगी चोट पाखानकी, भयौ गृहांगन लाल।
'हाइ हाइ' सब करि उठे, मात तात बेहाल॥ २५०

चौपई

गोद उठाय माइनैं लियौ। अंबर जारि घाउमैं दियौ॥
खाट बिछाइ सुवायौ बाल। माता रुदन करै असराल॥ २५१
इस ही बीच नगरमैं सोर। भयौ उदंगल चारिहु ओर॥
घर घर दर दर दिए कपाट। हटवानी नहिं बैठे हाट॥ २५२
भले बस्त्र अरु भूसन भले। ते सब गाड़े धरती तले॥
हंडवाई गाड़ी कहुं और। नगदी माल निभरमी ठौर॥ २५३
घर घर सबनि बिसाहे सस्त्र। लोगन्ह पहिरे मोटे बस्त्र॥
ओढ़ै कंबल अथवा खेस। नारिन्ह पहिरे मोटे बेस॥ २५४
ऊंच नीच कोउ न पहिचान। धनी दरिद्री भए समान॥
चोरि धारि दीसै कहुं नांहि। यौं ही अपभय लोग डरांहि॥ २५५

दोहरा

धूम धाम दिन दस रही, बहुरौ बरती सांति।
चीठी आई सबनिकौं, समाचार इम भांति॥ २५६
प्रथम पातिसाही करी, बावन बरस जलाल।
अब सोलहसै बासठै, कातिक हूवौ काल॥ २५७

---

१ ब 'बिलाप'। २ ब लोही ३ ब चोर धार।
४ यह [illegible] की राय है कि अकबरका ५२ बरसतक राज्य कर [illegible] लिखी उनकी दृष्टिसे बात पकता है जिसमें [illegible] गणना पकड़ी है। यों अकबरका ५० वर्ष राज्य करना सुविदित है।

तिनि प्रयागपुर नगरसौं, कीनौ उदम सार।
संघ चलायौ सिखिरकौं, उतरयौ गंगापार ॥ २२५

ठौर ठौर पत्री गई, भई खबर जितवित।
चीठी आई सेनकौं, आवहु जात-निमित्त ॥ २२६

खरगसेन तब उठि चले, ह्वै तुरंग असवार।
जाइ नंदजीकौं मिले, तजि कुटुंब घरबार ॥ २२७

चौपई

खरगसेन जात्राकौं गए। बानारसी निरंकुस भए॥
करैं कलह मातासौं नित। पारस जिनकी जात निमित्त ॥२२८
दही दूध घृत चावल चने। तेल तंबोल पहुप अनगने॥
इतनी वस्तु तजी ततकाल। पन लीनौ कीनौ हठ बाल ॥२२९

दोहरा

चंद मरदांने पन लियौ, बीते मास छ सात।
आई पून्यौ कातिकी, चले लोग सब जात ॥२३०

चले सिवमनी न्हानकौं, जैनी पूजन पास।
तिन्हके साथ बनारसी, चले बनारसिदास ॥ २३१

कासी नगरीमैं गए, प्रथम नहाए गंग।
पूजा पास सुपासकी कीनी धरि मन रंग ॥ २३२

जे जे पनकी वस्तु सब, ते ते मोल मंगाइ।
नेवज ज्यौं आगैं धरै, पूजे प्रभुके पाइ ॥ २३३

१ ब पारसनाथकी। २ ब सबमें न्यारे। ३ ब पन।

दिन दस रहे बनारसी, नगर बनारसमांहि ।
पूजा कारन द्योहरे, नित प्रभात उठि जांहि ॥ २३४
एहि बिधि पूजा पासकी, कीनी भगतिसमेत ।
फिरि आए घर आपने, लिए सखोली सेत ॥ २३५
पूजा संख महेसकी करकै तौ किछु खांहि ।
देस बिदेस इहां उहां, कबहूं भूली नांहि ॥ २३६

सोरठा

संखरूप सिवदेव, महा संख बानारसी ।
दोऊ मिले अबेव, साहिब सेवक एकसे ॥ २३७

दोहरा

इस ही बीचि उरे परे, खरगसेनके भौन ।
भयौ एक अल्पायु सुत, ताहि बखानै कौन ॥ २३८

चौपई

संवत सोलह सै इकसठे । आए लोग सबै सौं नठे ॥
केई उबरे केई मुए । केई महा जहमती हुए ॥ २३९
खरगसेन पटनैमौं आइ । जहमति परे महा दुख पाइ ॥
उपजी बिथा उदरम रोग । फिरि उपसमी आउर्बल-जोग ॥ २४०
संघ साथ आए निज धाम । नंद जौनपुर कियौ मुकाम ॥
खरगसेन दुख पायौ बाट । परम भाइ परे फिरि खाट ॥ २४१

१ ब कीनी । २ ब अमेव । ३ ब उबरके । ४ ब आउबल, ड आयुबल ।

हीरानंद लोग-मनुहारि । रहे जौनपुरमैं दिन चारि ॥
पंचम दिवस पारके बाग । छट्ठे दिन उठि चले प्रयाग ॥ २४२

दोहरा

संघ फूटि चहुं दिसि गयौ, आप आपकौ होइ ।
नदी नाव संजोग ज्यौं, बिछुरि मिलै नहिं कोइ ॥ २४३

चौपई

इहि बिधि दिवस कैकु चलि गए । खरगसेनजी नीके भए ॥
सुख समाधि बीते दिन घने । बीचि बीचि दुख जाहि न गने ॥ २४४

दोहरा

इस अवसर सुत अवतर्‌यौ, बानारसिकै गेह ।
अव पूरन करि मरि गयौ, तजि दुल्लभ नरदेह ॥ २४५

चौपई

संवत सोलह सै बासठा । आयौ कातिक पावस नठा ॥
छत्रपति अकबर साहि जलाल । नगर आगरे कीनौ काल ॥ २४६
आई खबर जौनपुरमांह । प्रजा अनाथ भई बिनु नांह ॥
पुरजन लोग भए भयभीत । हिरदै ब्याकुलता मुख पीत ॥ २४७

दोहरा

अकस्मात बानारसी, सुनि अकबरकौ काल ।
सीढ़ी परि बैठ्यौ हुतो, भयौ भरम चित चाल ॥ २४८

---

१ ब कैक । २ ब अमिग ।

माइ तैसाठा गिरि परयौ सक्यौ न आपा राखि ।
फुनि माठ लोट्टै घल्यौ, कयौ 'देव' मुख-भाखि ॥ २४९ ॥
लगी चोट पाखानकी, भयौ गृहांगन ठाल ।
'हाइ हाइ' सब करि उठे, मात तात बेहाल ॥ २५०

चौपई

गोद उठाय माइनैं लियौ । भघर जारि घाठम दियौ ॥
साग बिछाइ सुवायौ बाल । माता रुदन करै असराल ॥ २५१
इस ही बीच नगरमैं सोर । भयौ उदंगल चारिहु ओर ॥
घर घर दर दर दिए कपाट । हटवानी नहिं बैठे हाट ॥ २५२
भले वस्त्र अरु भूसन भले । ते सब गाडे धरती तले ॥
हंडवाई गाड़ी कहुं और । नगदी माल निभरमी ठौर ॥ २५३
घर घर सबनि विसाहे सस्त्र । लोगन्ह पहिरे मोटे वस्त्र ॥
ओढ़े कंबल अथवा खेस । नारिन्ह पहिरे मोटे वेस ॥ २५४
ऊच नीच कोउ न पहिचान । धनी दरिद्री भए समान ॥
चोरि धारि दीसै कहुं नांहि । यौं ही अपभय लोग डराहिं ॥ २५५

दोहरा

धूम धाम दिन दस रही बहुरौ बरती सांति ।
चीठी आई सबनिकै, समाचार इस भांति ॥ २५६
प्रथम पातिसाही करी, बावन बरस जलाल ।
भए सोलहसै बासठ, कातिक हूमो काल ॥ २५७

---

१ ब 'सिवाका । २ ब बीही ३ ब चोर धार ।
४ डा० वासुदेवशरणजीकी राय है कि अकबरका ५२ वर्षतक राज्य कर । [illegible] हिजरी सनकी दृष्टिसे ठीक बनता है जिसमें चान्द्रमासकी गणना चलती है । यों अकबरका ५० वर्ष राज्य करना सुविदित है ।

अकबरको नंदन बड़ो, साहिब साहि सलेम।
नगर आगरेमैं तखत, बैठौ अकबर जेम॥ २५८

नांउ धरायौ नूरदी, जहांगीर सुलतान।
फिरी दुहाई मुलकमैं, बरती जहं तहं आन॥ २५९॥

इहि विधि चीठीमैं लिखी, आई घर घर बार।
फिरी दुहाई जौनपुर, भयौ सु जयजयकार॥ २६०॥

चौपई

खरगसेनके घर आनंद। मंगल भयौ गयौ दुख-दंद॥
बानारसी कियौ असनान। कीजै उत्सव दीजै दान॥ २६१॥

एक दिवस बानारसिदास। एकाकी ऊपर आवास॥
बैठ्यौ मनमैं चिंतै एम। मैं सिव-पूजा कीनी केम॥ २६२॥

जब मैं गिरयौ परयौ मुरछाइ। तब सिव किछु न करी सहाइ॥
यहु विचारि सिव-पूजा तजी। लखी प्रगट सेवामें कजी॥ २६३॥

तिस दिनसौं पूजा न सुहाइ। सिव-संखोली धरी उठाइ॥
एक दिवस मित्रन्हके साथ। नौकृत पोथी लीनी हाथ॥ २६४॥

नदी गोमतीके विचै आइ। पुलके ऊपरि बैठे जाइ॥
बांचे सब पोथीके बोल। तब मनमैं यहु उठी कलोल॥ २६५॥

एक झूठ जो बोलै कोइ। नरक जाइ दुख देखै सोइ॥
मैं तो कलपित बचन अनेक। कहे झूठ सब साचु न एक॥२६६॥

कैसैं बनै हमारी बात। भइ बुद्धि यह आकस्मात॥
यहु कहि देखन लाग्यौ नदी। पोथी डार दई ज्यौं रदी॥ २६७॥

१ अ स मरदान। २ ब इ दर।

हाइ हाइ करि बोले मीत । नदी अथाह महाभयभीत ॥
तामैं फैलि गए सब पत्र । फिरि कहु कौन करै एकत्र ॥ २६८ ॥

घरी दक पछितानैं मित्र । कहैं कर्मकी चाल विचित्र ॥
यहु कहिकैं सब न्यारे भए । बनारसी आपुन घर गए ॥ २६९

खरगसेन सुनि यहु बिरतंत । हूए मनमैं हरषितसंत ॥
सुतके मन ऐसी मति जगै । घरकी नांउं रही-सी लगै ॥ २७०

दोहरा

तिस दिनसौं बानारसी, करै धरमकी चाह ।
तजी आसिखी फासिखी, पकरी कुलकी राह ॥ २७१ ॥

कहैं दोष कोउ न तजै, तजै अवस्था पाइ ।
जैसैं बालककी दसा, तरुन भए मिटि जाइ ॥ २७२ ॥

उदै होत सुभ करमके, भई असुभकी हानि ।
तातैं तुरित बनारसी, गही धरमकी बानि ॥ २७३ ॥

चौपई

नित उठि प्रात जाइ जिनभौन । दरसनु बिनु न करै दंतौन ।
चौदह नेम बिरति उचरै । सामाइक पड़िकौना करै ॥२७४

हरी जाति राखी परवांन । आवजीव बैंगन-पचखान ।
पूजाबिधि साधै दिन आठ । पढ़ै बीनती पद मुख-पाठ ॥ २७५

---

१ ब ड घरी । २ अ बनारसी अपने । ३ ब नाँउ । ४ अ वैसी ।
५ ड पूजापाठ पढ़ै मुखपाठ ।

दोहरा

इहि विधि जैनधरम कथा, कहै सुनै दिन रात।
होनहार कोउ न लखै, अलख जीवकी जात ॥ २७६

तब अपजसी बनारसी, अब जस भयौ विख्यात।
आयौ संवत चौसठा, कहौं तहांकी बात ॥ २७७

खरगसेन श्रीमालकै, हुती सुता द्वै ठौर।
एक बिवाही जौनपुर, दुतिय कुमारी और ॥ २७८

सोऊ ब्याही चौसठे, संवत फागुन मास।
गई पाडलीपुरविषै, करि चितादुखनास ॥ २७९

बानारसिके दूसरौ, भयौ और सुत कीर।
दिवस कैकुमैं उड़ि गयौ, तजि पिंजरा सरीर ॥ २८०

चौपई

कबहूं दुख कबहू सुख सांति। तीनि बरस बीते इस भांति ॥
ठग्घन भले पुत्रके लखे। खरगसेन मनमांहि हरखे ॥ २८१
संवत सोलह सै सतसठा। घरको माल कियौ एकठा ॥
खुला जवाहर और जड़ाउ। कागदमांहि लिख्यौ सब भाउ ॥२८२
द्वै पुड़ची द्वै मुद्रा बनी। चौबिस मानिक चौतिस मनी ॥
नौ नीले पन्ने दस-दुन। चारि गांठि चूंनी परचून ॥ २८३
एती वस्तु जवाहररूप। घृत मन बीस तेल द्वै कूप ॥
लिए जौनपुर होई दुकूल। मुद्रा द्वै सत लागी मूल ॥ २८४

---

१ ई पाडलीपुर। २ ब चौरसो। ३ ब चौबिस मानिक चौतिस मनी।
४ ब हीरे।

कछु परके कछु परके दाम । रोक उधार चलायौ काम ।
जब सब सौंजि भई तैयार । खरगसेन तब कियौ बिचार ॥ २८५
सुत बनारसी लियौ बुलाय । तासौं बात कही समुझाय ।
लेहु साथ यहु सौंजि समस्त । जाइ आगरे बेचहु बस्त ॥ २८६
अब गृहभार कंध तुम लेहु । सब कुटंबकौं रोटी देहु ॥
यहु कहि तिलक कियौ निज हाथ । सब सामग्री दीनी साथ ॥२८७

दोहरा

गाड़ी भार लदाइकै, रतन जतनसौं पास ।
राखे निज कच्छाविषैं, चले बनारसिदास ॥ २८८
मिली साथ गाड़ी बहुत, पांच कोस नित जांहि ।
क्रम क्रम पंथ उलंघकरि, गए इटाएमांहि ॥ २८९
नगर इटाएके निकट, करि गाड़िन्हकौ घेर ।
उतरे लोग उजारमैं, हुई संध्या-बेर ॥ २९०
घन घमंडि आयौ बहुत, बरसन लाग्यौ मेह ।
भाग्नन लागे लोग सब, कहां पाइए गेह ॥ २९१
सौरि उठाई बनारसी, भए पयादे पाउ ।
आए बीचि सराइमैं, उतरे है उंबराउ ॥ २९२
भई भीर बाजारमैं, खाली कोठ न हाट ।
कहूं ठौर नहिं पाइए, घर घर दिए कपाट ॥ २९३
फिरत फिरत फावा भए, बैठन कहै न कोइ ।
तलै कीचसौं पग भरे, ऊपर बरसै तोइ ॥ २९४

१ ब सोब । २ ब दियौ । ३ ब भाइ बनारसी । ४ ब उमराव ।

अंधकार रजनी समै, हिम रितु अगहन मास।
नारि एक बैठन कह्यौ, पुरुष उठ्यौ लै बांस ॥ २९५
तिनि उठाइ दीनें बहुरि, आए गोपुर पार।
तहां झौंपरी तनकसी, बैठे चौकीदार ॥ २९६
आए तहां बनारसी, अरु श्रावक द्वै साथ।
ते बूझैं तुम कौन हौ, दुखित दीन अनाथ ॥ २९७
तिनसौं कहै बनारसी, हम ब्यौपारी लोग।
बिना ठौर ब्याकुल भए, फिरैं करम संजोग ॥ २९८

चौपई

तब तिनकै चित उपजी दया। कहैं इहां बैठौ करि मया ॥
हम सबेर अपने घर जांहि। तुम निसि बसौ झौंपरी मांहि ॥२९९
औरौं सुनौ हमारी बात। सरियति खबरि भएं परभात ॥
बिनु तहकीक आन नहि देहि। तब बकसीस बेहु सौ लेहि ॥३००
मानी बात बनारसि ताम। बैठे तहं पायौ बिश्राम ॥
जल मंगाइकै धोए पाउ। भीजे बसन्ह दीनी बाउ ॥ ३०१
त्रिन बिछाइ सोए तिस ठौर। पुरुष एक जोरावर और ॥
आयौ कहै इहां तुम कौन। यह झौंपरी हमारौ भौन ॥ ३०२
सैन करौं मैं खाट बिछाइ। तुम किस ठाहर उतरे आइ ॥
कै तौ तुम अब ही उठि जाहु। कै तौ मेरी चाबुक खाहु ॥३०३
तब बनारसी ह्वै हलबले। बरसत मेहु बहुरि उठि चले ॥
उनि दयाल होइ पकरी बांह। फिरि बैठाए छायामांह ॥३०४

---

१ ह तब नर [illegible]। २ ब बी।

दीनों एक पुरानो टाट । ऊपर आनि बिछाई खाट ।
कहै टाटपर कीजै सैन । मुझे खाट बिनु परै न चैन ॥ ३०५
'एवमस्तु' बनारसि कहै । जैसी जाहि परै सो सहै ॥
जैसा कातै तैसा बुनै । जैसा बोवै तैसा लुनै ॥ ३०६
पुरुष खाटपर सोया भले । तीनौं जनें खाटके तले ॥
सोए रजनी भई बितीत । ओढ़ी सौरि न व्यापी सीत ॥ ३०७
भयौ प्रात आए फिरि तहां । गाड़ी सब उतरी ही जहां ॥
बरसा गई भई सुख सौति । फिरि उठि चले नित्यकी भांति ॥ ३०८
आए नगर आगरे बीच । तिस दिन फिरि बरसा अरु कीच ।
कतरा तेल बीउ धरि पार । आपु छरे आए उर पौर ॥ ३०९
मन चिंतवै बनारसिदास । किस दिसि जांहि कहां किस पास ॥
सोचि सोचि यह कीनी ठीक । मोतीकटला कियौ रफीक ॥ ३१०
तहां चापसीके घर पास । लघु बहनेऊ बंदीदास ॥
तिसके डेरे जाइ तुरंत । सुनिए 'भला सुगा अरु संत' ॥ ३११
यह विचारि आए तिस पांहि । बहनेऊके डेरेमांहि ॥
दिनमैं पूछि बंदीदास । कतरा बीउ तेल किस पास ॥ ३१२
तब बनारसी बोलै खरा । उधरनकी कोठीमैं धरा ॥
दिवस कैकु जब बीते और । डेरा जुदा लिया इक ठौर ॥ ३१३
घर-गरगी राखी तिसमांहि । नित्य नखासे आवहि जांहि ॥
बग बचि जब छका किया । ब्याज-मूरै दे टोटा दिया ॥ ३१४

---

१ भ धार । २ क ई मूल ।

एक दिवस बानारसिदास । गए पार उघरनके पास ॥
बेचा घीऊ तेल सब झारि । चढ़ती नफा रुपैया च्यारि ॥ ३१५
हुंडी आई दीनैं दाम । बात उहांकी जानै राम ॥
बंधि खोंचि आए उर पार । भए जवाहर बेचनहार ॥ ३१६
देहिं ताहि जो मांगै कोइ । साधु कुसाधु न देखै टोइ ॥
कोऊ वस्तु कहूं लै जाइ । कोऊ लेइ गिरौं धरि खाइ ॥ ३१७
नगर आगरेकौ व्यौपार । मूल न जानै मूढ़ गंवार ॥
आयौ उदै असुभकौ जोर । घटती होत चली चहु ओर ॥ ३१८

दोहरा

नारे मांहि इजारके, बंध्यौ हुतौ दुल म्यान ।
नारा टूट्यौ गिरि परयौ, भयौ प्रथम यह ग्यान ॥ ३१९
खुलौ जवाहर जो हुतौ, सो सब थौ उसमांहि ॥
ठगी चोट गुपती सही, कही न किस ही पांहि ॥ ३२०
मानिक नरिके पटे बांध्यौ साटि[४] उचाटि ॥
धरी इजार अलंगनी, मूसा लै गयौ काटि ॥ ३२१
पहुंची दोइ जड़ाउकी, बेची गाहकमांहि ॥
दाम कलोरी लेइ रखौ, परि देवाले मांहि ॥ ३२२
मुद्रा एक जड़ाउकी, ऐसैं डारी खोइ ।
गांठि देत खाली परी, गिरी न पाई सोइ ॥ ३२३
रज परेकी वस्तु कछु, दुगधा लागे दोइ ॥
ईडवाई घरमैं रही, और बिसाति न कोइ ॥ ३२३

१ म अनायु। २ म ग्यौ। ३ प नारेके सके। ४ प सार उचार। ५ म चोरयौ।

चौपई

इहि बिधि उँदे भयौ जब पाप । इलइलाइके भाई ताप ॥
तब बनारसी जद्दमति फेरे । ठेकन बस निकोरेरे करे ॥ ३२५
फिर पय लीनौं नीके भए । मास एक बाजार न गए ॥
खरगसेनकी चीठी धनी । आवहिं पै न देइ आपनी ॥ ३२६

दोहरा

उत्तमचंद जवाहरी, दूल्हकौ लघु पूत ।
सो बनारसीका बड़ा, बहनेऊ अरिभूत ॥ ३२७
तिनि अपने घरकौं दिए समाचार लिखि लेख ।
पूंजी खोइ बनारसी, भए भिखारी भेख ॥ ३२८
उहां जौंनपुरमैं सुनी, खरगसेन यह बात ॥
हाइ हाइ करि आइ घर, कियौ बहुत उतपात ॥ ३२९
कलह करी निज नारिसा, कही बात दुख रोइ ॥
हम तौ प्रथम कही हुती, सुत आवै घर खोइ ॥ ३३० ॥
कहा हमारा सब भया, भया भिखारी पूत ।
पूंजी खोइ बेहदा, गया बनजका सूत ॥ ३३१ ॥
भए निरास उसास भरि, करि घर्में बकवाद ।
सुत बनारसीकी बहू पठई खैराबाद ॥ ३३२ ॥
ऐसी बीती जौनपुर, इहां आगरेमांहि ।
घरकी वस्तु बनारसी, बेचि बेचि सब खांहि ॥ ३३३ ॥

अस्त्र कुत्र जो किछु हुतौ, सो सब खायौ झोरि।
हुंडवाई खाई सकल, रहे टका द्वै चारि॥ ३३४॥

तब घरमैं बैठे रहैं, जांहि न हाट बजार।
मधुमालति मिरगावती, पोथी दोइ उदार॥ ३३५॥

ते बांचहिं रजनीसमै, आवहिं नर दस बीस।
गावहिं अरु बातैं करहिं, नित उठि देंहि असीस॥३३६॥

सो सामा घरमैं नहीं, जो प्रभात उठि खाइ।
एक कचौरीवाल नर, कथा सुनै नित आइ॥ ३३७॥

वाकी हाट उधार करि, लेंहि कचौरी सेर।
यह प्रासुक भोजन करहिं, नित उठि सांझ सवेर॥३३८॥

कबहू आवहिं हाटमंहि, कबहू डेरामांहि।
दसा न काहूसौं कहैं, करज कचौरी खांहि॥ ३३९॥

एक दिवस बानारसी, समौ पाइ एकंत।
कहै कचौरीवालसौं, गुपत गेह बिरतंत॥ ३४०॥

तुम उधार दीनौ बहुत, आगै अब जिनि देहु।
मेरे पास किछू नहीं, दाम कहांसौं लेहु॥ ३४१॥

कहै कचौरीवाल नर, बीस रुपैया खाहु।
तुमसौं कोउ न कछु कहै, जहं भावै तहं जाहु॥ ३४२॥

तब चुप भयौ बनारसी, कोउ न जानै बात।
कथा कहै बैठौ रहै, बीते मास छ-सात॥ ३४३॥

---

१ ब इ झारि। २ ब उधारि। ३ ब सखि। ४ अ प्रतिमें यहाँ ३४१ नम्बर पड़ा है और आगे अन्त तक यह ही नम्बरोंकी भूल चली गई है।

कहौं एक दिनकी कथा, तांबी ताराचंद ।
ससुर बनारसिदासकौ, परबतकौ फरजंद ॥ ३४४ ॥
आयौ रजनीके समै, बानारसिके भौन ।
जब लौं सब बैठे रहे, तब लौं पकरी मौन ॥ ३४५ ॥
जब सब लोग बिदा भए, गए आपने गेह ।
तब बनारसीसौं कियौ, ताराचंद सनेह ॥ ३४६ ॥
करि सनेह बिनती करी, तुम नेउते परभात ।
कालि उहां भोजन करौ, आयसु कहि यह बात ॥ ३४७ ॥

चौपई

यह कहि निसि अपने घर गयौ । फिरि आयौ प्रभात जब भयौ ॥
कहै बनारसिसौं तब सोइ । उहां प्रभात रसोई होइ ॥ ३४८ ॥
वार्त अब चलिए इस बार । भोजन करि आवहु बाजार ॥
ताराचंद कियौ छल एह । बानारसी गयौ तिस गेह ॥ ३४९ ॥
भेज्यौ एक आदमी कोइ । लटा कुटा ले आयौ सोइ ॥
बरखा भाड़ा दिया चुकाइ । पकरे बानारसिके पाइ ॥ ३५० ॥
कहै बिनैसौं तारा साहु । इस घर रहौ उहां जिन जाहु ॥
हठ करि राखे डेरामांहि । तहां बनारसि रोगी खांहि ॥ ३५१ ॥
इहि बिधि मास दोइ जब गए । धरमदासके साझी भए ॥
जस अमरसी भाई दोइ । ओसवाल दिलैवाली सोइ ॥ ३५२ ॥
करहिं जवाहर-बनज महंत । धरमदास लघु बंधु कपूत ॥
कुबिसन करै कुसंगति जाइ । खावै दाम अमल बहु खाइ ॥३५३॥

१ ब तु निश मिश । २ ब चलिए घर अब मत रहेद । ३ ब दिवाली ।
४ ब संघपूत ।

यह लखि कियौ सीरकौ संच । दी पूंजी मुद्रा सै पंच ॥
धरमदास बानारसि यार । दोऊ सीर करहिं ब्यौपार ॥ ३५४ ॥

दोऊ फिरैं आगरे मांझ । करहिं गस्त घर आवहिं सांझ ।
ल्यावहिं चूंनी मानिक मनी । बेंचहिं पहुंचि खरीदहिं धनी ॥३५५॥

लिखहिं रोजनामा खतिआइ । नामी भए लोग पतिआइ ॥
बेंचहिं लेहिं चलावहिं काम । दिए कचौरीवाले दाम ॥ ३५६ ॥

भए रुपैया चौदह ठीक । सब चुकाइ दीनै तहकीक ॥
तीनि बार करि दीनौं माल । हरषित कियौ कचौरीवाल ॥३५७॥

दोहरा

बरस दोइ साझी रहे, फिर मन भयौ विषाद ।
तब बनारसीकी चली, मनसा खैराबाद ॥३५८॥

एक दिवस बानारसी, गयौ साहुके धाम ।
कहै बठाऊ हम भए, लेहु आपने दाम ॥ ३५९ ॥

चौपई

जम्म साह तब दियौ जुबाब । बेचहु मैलीकी असबाब ॥
जब एकठे होहि सब थोक । हमकौं दाम देहु तब रोक ॥३६०॥

तब बनारसी बेची वस्त । दाम एकठे किए समस्त ॥
गनि दीनै मुद्रा से पंच । बाकी कछु न राखी रंच ॥३६१॥

दोहरा

बरस दोइमैं दोइ सै, अधिके किए कमाइ ।
बेची वस्तु बजारमें, पहुंता गयौ समाइ । ॥ ३६२ ॥

१ ब भौ । २ ब बनावहिं । ३ ब न विद्या ।

जो कछु दाम कमाए नए। खरच खाइ फिरि खाली भए॥
नारी कहै सुनौ हो कन्त। दुख सुखकौ दाता भगवंत॥३७३॥

दोहरा

समौ पाइकै दुख भयौ, समौ पाइ सुख होइ।
होनहार सो है रहै, पाप पुन्न फल दोइ॥ ३७४॥

चौपई

कहत सुनत अर्गलपुर-बात। रजनी गई भयौ परभात॥
लहि एकंत कंतके पानि। बीस रुपैया दीए आनि॥ ३७५॥
ए मैं जोरि धरे थे दाम। आए आज तुम्हारे काम॥
साहिब चिंत न कीजै कोइ। पुरुष जिए तो सब कछु होइ॥३७६॥
यह कहि नारि गई मां पास। गुपत बात कीनी परगास॥
माता काहूसौं जिनि कहौ। निज पुत्रीकी लज्जा वहौ॥३७७॥

दोहरा

थोरे दिनमैं लेहु सुधि, तो तुम मा मैं धीय।
नाहीं तौ दिन कैकुमैं, निकसि जाइगौ पीय॥ ३७८॥

चौपई

ऐसा पुरुष लजालू बड़ा। बात न कहै जात है गड़ा।
कहै माइ जिनि होइ उदास। द्वै से मुद्रा मेरे पास॥ ३७९॥
गुपत दउं तेरे करमाहि। जो वे बहुरि आगरे जांहि।
पुत्री कहै धन्य तू माइ। मैं उनकौं निसि दृगा आइ॥ ३८०॥

१ ब वनिता कहै सुनो तुम कंत। २ ब प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है।

जनी समै मधुर मुख भास । वनिता कहै बनारसि पास ।
कन तुम्हारो कहा बिचार । इहां रहौ कै करौ विहार ॥ ३८१ ॥
बानारसी कहै तिसमांहि । हम तुम साथ जौनपुर जांहि ।
वनिता कहै सुनहु पिय बात । उहां महा विपदा उतपात ॥ ३८२
तुम फिर आहु आगरेमांहि । तुमकों और ठौर कहुं नांहि ।
बानारसी कहै सुन तिया । बिनुं धन मानुषका धिग जिया ॥ ३८३
कै धीरज फिरि बोलै वाम । करहु खरीद देउं मैं दाम ॥
यह कहि दाम आनि गनि दिए । बात गुप्त राखी निज हिए ॥ ३८४॥
तब बनारसी वहुरौ जगे । एती बात करनकों लगे ॥
कर्इ खरीद घोवाय चीर । लेइं मोती मानिक हीर ॥ ३८५ ॥
जोरहिं 'अजितनाथके छंद'। लिखहिं 'नाममाला' भरि बंद ॥
च्यारों काज करहिं मन लाइ। अपनी अपनी बिरिया पाइ ॥ ३८६
इहि बिधि च्यारि महीनें गए । च्यारि काज संपूरन भए ॥
करी 'नाममाला' सै दोइ । राखे 'अजित छंद' उरपोइ ॥ ३८७
कपरा घोइ भयौ तयार । लियौ मोल मोतीको हार ॥
अगहन मास सुकल बारसी । चले आगरै बानारसी ॥ ३८८ ॥

दोहरा

पहुंचे आए आगरे फिरिकै दूजी बार ।
तब कटले परवेजके, आनि उतारयो भार ॥ ३८९ ॥

चौपई

कटलेमांहि समुरकी हाट । तहां करहि भोमनकी ठाठ ॥
रजनी सोवहि कोठीमांहि । दिन उठि प्रात नगरमें जांहि ॥ ३९०

१ अ [illegible] । २ [illegible] बिनु [illegible] ।
३ [illegible] ।

फरि फठहि बहु करै उपाइ । मंदा भसरा कछु न बिकाइ ।
आवहि जाहि करहि अति खेद । नहि समुझै मायीको भेद ॥ ३९१

दोहरा

मोती-हार लियौ हुतौ, दै मुद्रा चालीस ।
सौ बेच्यौ सतरि उठे, मिले रुपइया तीस ॥ ३९२ ॥

चौपई

तब बनारसी करै विचार । मन्ना जवाहरका व्यापौर ॥
हुए पौन दूनें इस माँहि । अब सौ वस्तु खरीदहि नाँहि ॥३९३॥
च्यारि मास लौं कीनौ धंध । नहिं बिकाइ कपरा पग बंध ॥
वैनीदास खोभरा गोत । ताकौ ' दास नरोत्तम ' पोत ॥ ३९४ ॥

दोहरा

सो बनारसीकौ हितू, और बदलिमा ' थान ' ।
रात दिवस क्रीड़ा करहिं, तीनौं मित्र समान ॥ ३९५ ॥

चौपई

चढ़ि गाड़ीपर तीनौं डौल । पूजा हेतु गए भर कौल ।
कर पूजा फिरि जोरे हाथ । तीनौं जनें एक ही साथ ॥ ३९६ ॥
प्रतिमा आगे मांगैं एहु । हमकौं नाथ लच्छिमी देहु ॥
जब लच्छिमी देहु तुम तात । तब फिरि करहिं तुम्हारी बात ॥
यह कहिक आए निज गेह । तीनौं मित्र भए इक देह ।
दिन अरु रात एकठे रहैं । आप आपनी बातें कहैं ॥ ३९८ ॥
आयौ फागुन मास विख्यात । बालचंदकी चली बरात ॥
ताराचंद मौठिया गोत । नेमाकौ सुत भयौ उद्दोत ॥ ३९९

१ ब ब्यौपार।

कही बनारसिसौं तिन बात । तू चलु मेरे साथ बरात ॥
तब अंतरधन मोती काढ़ि । मुद्रा तीस और दे बाढ़ि ॥ ४००
बेंचि खोचिकै आनैं दाम । कीनौ तब बरातिकौ साम ॥
चले बराति बनारसिदास । दूआ मित्र नरोत्तम पास ॥ ४०१
मुद्रा खरच भए सब तिहां । दे बरात फिरि आए इहां ॥
खैराबादी कपरा झारि । बेच्यौ घटे रुपइया च्यारि ॥ ४०२
मूल-ब्याज दे फारिक भए । तब सु नरोत्तमके घर गए ॥
भोजन करके दोऊ यार । बैठे कियौ परस्पर प्यार ॥ ४०३

दोहरा

कहै नरोत्तमदास तब रहौ हमारे गेह ।
भाईसौं क्या भिन्नता, कौरीसौं क्या नेह ॥ ४०४

तब बनारसी उत्तर भनै । तेरे घरसौं मोहि न बनै ।
कहै नरोत्तम मेरे भौन । तुमसौं बोलै एसा कौन ॥ ४०५
तब हठकरि राखे घरमांहि । भाई कहै जुदाई नांहि ॥
काहू दिवस नरोत्तमदास । ताराचंद मौठिए पास ॥ ४०६
बैठे तब उठि बोले साहु । तुम बनारसी पटनैं जाहु ॥
यह कहि रासि देइ तिस बार । टीका काढ़ि उतारे पार ॥४०७॥
भाइ पार बूझे दिन भले । तीनि पुरुष गाड़ी चढ़ि चले ॥
सेवकके कोउ न लीना गैल । तीनौं सिरीमाल नर छैल ॥ ४०८

---

१ ब दाम । २ ब बैठे बहुत कियौ तिनि प्यार । ३ ड तुमसौं बोले कौन ।
४ ब सेवक एकु कियौ तिन गैल ।

दोहरा

प्रथम नरोत्तमको ससुर, दुतिय नरोत्तमदास ।
तीजा पुरुष बनारसी, चौथा कोउ न पास ॥ ४०९

चौपई

भाड़ा किया पिरोजाबाद । साहिजादपुरलौं मरजाद ॥
चले साहिजादेपुर गए । रथसौं उतरि पयादे भए ॥ ४१० ॥
रथका भाड़ा दिया चुकाइ । सांझि भाईके बसे सराइ ॥
आगे और न भाड़ा किया । साथ एक लीया बोझिया ॥ ४११ ॥
पहर डेढ़ रजनी जब गई । तब तहं मकर चांदनी भई ॥
इनके मन आई यह बात । कहहिं चलहु हुआ परभात ॥ ४१२ ॥
तीनौं जनें चले ततकाल । दै सिर बोझ बोझिया नाल ॥
चारौं भूलि परे पथमांहि । दच्छिन दिसि जंगलमैं जांहि ॥ ४१३
महा बीझ बन आयौ जहां । रोवन लग्यौ बोझिया तहां ॥
बोझ डारि भाग्यौ तिस ठौर । जहां न कोऊ मानुष और ॥ ४१४
तब तीनिहु मिलि कियौ बिचार । तीनि भाग कीन्हा सब भार ॥
तीनि गांठि बांधी सम भाइ । लीनी तीनिहु जनें उठाइ ॥ ४१५
कबहूं कांधे कबहूं सीस । यह बिपति दीनी जगदीस ॥
अरध रात्रि जब भई बितीत । खिन रोवैं खिन गावैं गीत ४१६
चले चले आए तिस ठांउ । जहां बसै चोरनकौ गांउ ॥
बोला पुरुष एक तुम कौन । गए सूखि मुख पकरी मौन । ४१७

१ ब पच्छे गाजिबावपुर । २ ब एक । ३ ब महा बिकट । ४ ब मनु बियाबा । ५ ब रावि ।

इन्द परमेसुरकी ठौ रही । वह था चोरन्दका चौधरी ॥
तब बनारसी पढ़ा सिलोक । दी असीस उन दीनी धोक ॥ ४१८
कहै चौधरी आवहु पास । तुम्ह नारायन मैं तुम्ह दास ॥
आइ बसहु मेरी चौपारि । मोरे तुम्हरे बीच मुरारि ॥ ४१९
तब तीनौं नर आए तहां । दिया चौधरी थानक जहां ॥
तीनौं पुरुष भए भयभीत । हिरदैमांहि कंप मुख पीत ४२०

दोहरा

सूत काढ़ि डोरा बट्यौ, किए जनेऊ चारि ।
पहिरे तीनि तिहूं जनें, राख्यौ एक उबारि ॥ ४२१
माटी लीनी भूमिसौं, पानी लीनौं ताल ।
विप्र भेष तीनौं बनें, टीका कीनौं भाल ॥ ४२२ ॥

चौपई

पहर डोढ़ ठौं बैठे रहे । भयौ प्रात आदर पहपहे ॥
हय-आरूढ़ चौधरी-ईस । आयौ साथ और नर बीस ॥ ४२३ ॥
उनि कर जोरि नवायौ सीस । इन उठिकै दीनी आसीस ॥
कहै चौधरी पंडितराइ । आवहु मारग देहुं दिखाइ ॥ ४२४ ॥
पराधीन तीनौं उठि चले । मस्तक तिलक जनेऊ गले ॥
सिरपर तीनिहु लीनी पोट । तीन कोस जगलकी ओट ॥ ४२५ ॥
गयौ चौधरी कियौ निबाह । आई फतेपुरकी राह ॥
कहै चौधरी इस मगमांहि । जाहु हमहिं आग्या हम जांहि ॥४२६॥

---

१ म मीर ।

फतेपुर इन्द्र लच्छन तले । 'चिरं जीव' कहि तीनौं चले ॥
कोस दोइ दीसै लखैराउ । फिर द्वै कोस फतेपुर-गाउ ॥ ४२७॥
आइ फतेपुर लीनी ठौर । दोइ मजूर किए तहां और ॥
बहुरौं लागि फतेपुर-वास । गए छ कोस इलाहाबास ॥ ४२८॥
जाइ सराइ उतारा लिया । गंगाके तट भोजन किया ॥
बानारसी नगरम गयौ । खरगसेनकौ दरसन भयौ ॥ ४२९ ॥
दौरि पुत्रनैं पकरे पाइ । पिता ताहि लीनौ उर लाइ ॥
पूछे पिता बात एकंत । कह्यौ बनारसि निज बिरतंत ॥ ४३० ॥
सुतके बचन हिएमैं धरे । खाइ पछार भूमि गिरि परे ॥
मूर्छागति आई तत्काल । सुखमैं भयौ ऊधलाबाल ॥ ४३१ ॥
घरी चारि लौं बेसुध रहे । स्वासा जगी फेरि लहलहे ॥
बानारसी नरोत्तमदास । डोली करी इलाहाबास ॥ ४३२ ॥
खरगसेन कीनैं असवार । बेगि उतारे गंगापार ॥
तीनौं पुरुस पियादे पाइ । चले जौनपुर पहुंचे आइ ॥ ४३३ ॥
बानारसी नरोत्तम मित्त । चले बनारसि बनज निमित्त ॥
जाइ पास-जिन पूजा करी । ठाढे होइ बिरति उच्चरी ॥४३४॥

कवित्त

सांझसमै दुबिहार, प्रात नौकारसहि ।
एक अधेला पुन्न निरंतर नेम गहि ॥
नौकरवाली एक जाप नित कीजिए ।
दोष लगै परमात, तौ घीउ न लीजिए ॥ ४३५ ॥

---

१ ब लस्समुंद । २ ब बात ।

दोहरा

मारग घरत जथासकति, सब चौदसि उपवास ।
साखी कीनैं पास जिन, राखी हरी पचास ॥ ४३६॥
दोइ विवाह सुरित (?) है, आगैं करनी और ।
परदारा-संगति तजी, दुहू मित्र इक ठौर ॥ ४३७ ॥
सोलह से इकहत्तरे, सुकल पक्ष वैसाख ।
विरति धरी पूजा करी, मानहु पाए लाख ॥ ४३८ ॥

चौपई

पूजा करि आए निज थान । भोजन कीना खाए पान ॥
करै कछु ब्यौपार विसेख । खरगसेनकौ आयौ लेख ॥ ४३९ ॥
चीठीमांहि बात विपरीत । बांचन लागे दोऊ मीत ॥
बानारसीदासकी बाल । खैराबाद हुती पिउसाल ॥ ४४० ॥
ताके पुत्र भयौ तीसरौ । पायौ सुख तिनि दुख वीसरौ ॥
सुत जनमें दिन पंद्रह हुए । माता बालक दोऊ मुए ॥ ४४१ ॥
प्रथम बहूकी भगिनी एक । सो तिन भेजी कियौ विसेक ।
नाऊं आनि नारिअर दियौ । सो हम भले महूरत लियौ ॥४४२
एक बार ए दोऊ कथा । संडासी लुहारकी जथा ॥
छिनमंहि अगिनि छिनक जलपात । त्यौं यह हरख सोककी बात ।
यह चीठी बांची तब दुहूं । नगुल मित्र रोए करि उहूं ॥
बहुतै रुदन बनारसि कियौ । चुप ह्वै रहे कठिन करि हियौ ॥ ४४४

१ अ कीने । २ ब माफिक सिक्त आनि कर किनौ ।

बहुरौं लागे अपने काम । रोजगारको करन इलाज ।
लेंहि देंहि मोरा अरु घना । चूंनी मानिक मोती पना ॥ ४४५ ॥
कबहूं एक जौनपुर जाहि । कबहूं रहै बनारसमाहि ।
दोऊ सकृत रहैं इक ठौर । ठानहिं भिन्न भिन्न पग दौर ॥ ४४६ ॥
करहिं मसक्कति आलस नांहि । पहर तीसरे रोटी खांहि ॥
मास छ सात गए इस भांति । बहुरौं कछु भई उपसांति ॥ ४४७
घोरा दौरहि खाइ सवार । ऐसी दसा करी करतार ॥
चीनी किलिच खान उमराउ । तिन बुलाइ दीयौ सिरपाउ ॥ ४४८

दोहरा

बड़ा भाई किलीचको, च्यार हजारी मीर ।
नगर जौनपुरको धनी, दाता पंडित वीर ॥ ४४९ ॥
चीनी किलिच बनारसी, दोऊ मिले विचित्र ।
वह यासौं किरिपा करै, यह जानै मैं मित्र ॥ ४५० ॥
एहि बिधि बीते बहुत दिन, बीती दसा अनेक ।
बैरी पूरब जनमको, प्रगट भयौ नर एक ॥ ४५१ ॥
तिनि अनेक बिधि दुख दियौ, कहौं कहां लौं सोइ ।
जैसी उनि इनसौं करी, ऐसी करै न कोइ ॥ ४५२ ॥

चौपाई

बानारसी नरोत्तमदास । दुहुकौं लेन न देइ उसास ॥
दोऊ खेद खिन्न तिनि किए । दुख भी दिए दाम भी लिए ॥ ४५३
मास दोइ बीते इस बीच । कहूं गयौ थौ चीनि किलीच ॥
आयौ गइ मौवासा जीति । फिरि बनारसीसेती प्रीति ॥ ४५४ ॥

दोहरा

कबहुं नाममाला पढ़ै, छंद कोस सुतबोध ।
करै कृपा नित एकसौ, कबहुं न होइ विरोध ॥ ४५५ ॥

चौपई

बानारसी कही किछु नांहि । पै उनि भय मानी मनमांहि ॥
तब उन पंच बदे नर च्यारि । तिन्हि चुकाइ दीनी यह रारि ॥४५६
चूक्यौ झगरा भयौ अनंद । ज्यौं सुछंद खग छूटत फंद ॥
सोलह सै पहत्तरे बीच । भयौ कालबस चीनि किलीच ॥ ४५७॥
बानारसी नरोत्तमदास । पटनैं गए बनजकी आस ॥
मास छ सात रहे उस देस । थोरा सौदा बहुत किलेस ॥ ४५८ ॥
फिरि दोऊ आए निज ठांउ । बानारसी जौनपुर गांउ ॥
इहां बनज कीनौ अधिकाइ । गुपत बात सो कही न जाइ ॥ ४५९ ॥

दोहरा

आउ वित्त निज गृहचरित, दान मान अपमान ।
औषध मैथुन मंत्र निज, ए नव अकह-कहान ॥ ४६० ॥

चौपई

तातैं यह न कही विख्यात । नौ बातन्हमैं यह भी बात ॥
कीनी बात भली अरु बुरी । पटनैं कासी जौनापुरी ॥ ४६१ ॥
रहे बरस द्वै तीनिहु ठौर । तब किछु भई औरकी और ॥
आगानूर नाम उमराउ । तिसकौं साहि दियौ सिरपाउ ॥ ४६२ ॥
सो आवतौ सुन्यौ जब सोर । भागे लोग गए चहु ओर
तब ए दोऊ मित्र सुजान । आए नगर जौनपुर थान ॥ ४६३ ॥

---

१ इस प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है ।

घरके लोग कहूं छिपि रहे। दोऊ यार उत्तर दिसि बहे॥
दोऊ मित्र चले इक साथ। पांउ पियादे लाठी हाथ॥ ४६४॥
आए नगर अजोध्यामांहि। कीनी जात रहे तहां नांहि॥
चले चले रौनौंही गए। धर्मनाथके सेवक भए॥ ४६५॥

दोहरा

पूजा कीनी भगतिसौं, रहे गुपत दिन सात।
फिरि आए घरकी तरफ, सुनी पंथमंह बात॥ ४६६॥
आगानूर बनारसी, और जौनपुर बीच।
कियौ उदंगल बहुत नर, मारे करि अधमीच॥ ४६७॥
इक नाइक पकरे सबै, जड़िया कोठीवाल।
हुंडीवाल सराफ नर, अरु जौंहरी दलाल॥ ४६८
काहू मारे कोररा, काहू बेड़ी पाइ।
काहू राखे भाखसी, सबकौं देइ सजाइ॥ ४६९

चौपई

सुनी बात यह पंथिक पास। बानारसी नरोत्तमदास।
घर आवत हे दोऊ मीत। सुनि यह खबरि भए भयभीत॥ ४७०
सुरहुरैपुरसौं बहुरौं फिरे। चढ़ि घड़नाई सरिता तिरे।
जंगलमांहि हुवौ मौवास। जहां जाइ करि कीनौ वास॥ ४७१
दिन चालीस रहे तिस ठौर। तब लौं भई औरकी और॥
आगानूर गयौ आगरे। छोड़ि दिए प्रानी नागरे॥ ४७२
नर है चारि हुते बहुधनी। तिन्हकौं मारि दई अति घनी॥
बांधि ले गयौ अपने साथ। इक नाइक जानै जिननाथ॥ ४७३

१ स रौनाई। २ ब सुरहुरपुरसौं।

इस भन्तर ए दोऊ बने । भाए निरभय घर भापनें ।
सब परिवार भयौ एकत्र । आयौ सबलसिंघकौ पत्र ॥ ४७४
सबलसिंघ मौठिआ मसन्द । नेमीदास साहुकौ नंद ॥
लिख्यौ लेख तिन भपने हाय । दोऊ साझी भावहु साय ॥ ४७५

दोहरा

भब पूरबमैं जिनि रहौ, भावहु मेरे पास ।
यह चीठी माहू लिखी, पढ़ी बनारसिदास ॥ ४७६
भौर नरोत्तमके पिता, लिख दीनौ विरतंत ।
सो कागद आयौ गुपत, उनि बाच्यौ एकंत ॥ ४७७
बांचि पत्र बानारसी, के कर दीनौ आनि ।
बांचहु ए बाबा लिखे, समाचार निज पानि ॥ ४७८
पढ़ने लगे बानारसी, लिखी भाठ दस पांति ।
छेम खेम ताके तले, समाचार इस भांति ॥ ४७९
खरगसेन बानारसी, दोऊ दुष्ट विसेष ।
कपटरूप तुझकौं मिले, करि धूरतका भेष ॥ ४८०
इनके मत जो चलहिगा, तौ मांगहिगा भीख ।
तातैं तू हुसियार रहु, यहै हमारी सीख ॥ ४८१
समाचार बानारसी, बांचे सहज सुभाउ ।
तब सु नरोत्तम जोरि कर, पकरे दोऊ पाउ ॥ ४८२
कहै बनारसिदाससौं, तू बंधव तू तात ।
तू जानहि उसकी दसा क्या मूरखकी बात ॥ ४८३

१ छपरके 'पढ़न लगे' से लेकर यहाँ तककी ये चार पंक्तियाँ 'ब' प्रतिमें ४८१ के बाद लिखी हैं ।

तब दोऊ खुसहाल ह्वै, मिले होइ इक चित्त ।
तिस दिनसौं बानारसी, नित सराहै मित्त ॥ ४८४
रीझि नरोत्तमदासकौ, कीनौ एक कवित्त ।
पढ़ै रैन दिन भाटसौ, घर बजार जित कित्त ॥ ४८५

सवैया इकतीसा

नरोत्तमदासस्तुति—

नवपद ध्यान गुन गान भगवंतजीकौ,
करत सुजान दिढ़ग्यान जग मानियै ॥
रोम रोम अभिराम धर्मलीन आठौ जाम,
रूप-धन-धाम काम-मूरति बखानियै ॥
तनकौ न अभिमान सात खेत देत दान,
महिमान जाके जसकौ वितान तानियै ।
महिमानिधान प्रान प्रीतम बनारसीकौ,
चहुपद आदि अच्छरन्ह नाम जानियै ॥ ४८६

चौपई

बानारसि चिंतै मनमांहि । ऐसो मित्त जगतमैं नांहि ॥
इस ही बीच चलनकौ साज । दोऊ सांझी करहिं इलाज ॥ ४८७
खरगसेनजी जदमति परे । आइ असाधि बैदनैं करे ॥
बानारसी नरोत्तमदास । छाड़नि कछु कराइं तास ॥ ४८८
संवत तिहत्तर बैसाख । सातैं सोमवार सित पाख ॥
तब साझेका लेखा किया । सब असबाब बांटिकै लिया ॥ ४८९

२ अ पढ़े रामदिन एकसौ । ३ अ गामी, —

दोहरा

दोइ रोजनामैं किए, रहे दुहूके पास ।
चले नरोत्तम आगरे, रहे बनारसिदास ॥ ४९०

रहे बनारसि जौनपुर, निरखि सात बेहाल ।
जेठ अंधेरी पंचमी, दिन बितीत निसिकाल ॥ ४९१

खरगसेन पहुचे सुरग, कहवति लोग विख्यात ।
कहां गए किस जोनिमैं, कहै केवली बात ॥ ४९२

कियौ सोक बानारसी, दियौ नैन भरि रोइ ।
हियौ कठिन कीनौ सदा, जियौ न जगमैं कोइ ४९३

चौपई

मास एक बीत्यौ जब और । तब फिरि करी बनजकी दौर ॥
हुंडी लिखी, रजत से पच । लिए, करन लागे पट संच ॥ ४९४
पट खरीदि कीनौं एकत्र । आयौ बहुरि साहुकौ पत्र ।
लिखा सिंघवी चीठीमाहिं । तुम बिनु लेखा चूकै नाहिं ४९५
तातैं तु भी आउ सिताब । मैं तुझसौं सो देहि जुबाब ॥
बानारसी सुनत बिरतंत । तजि कपरा उठि चले तुरंत ॥ ४९६
बांमन एक नाम सिवराम । सौंप्यौ ताहि बसनका काम ।
मास असाढमांहि दिन भले । बानारसी आगरै चले ॥ ४९७

दोहरा

एक तुरंगम नौ नफर, लीनैं साथि बनाइ ।
नांठ पैसुवा गांठमैं, बसे प्रथम दिन आइ ॥ ४९८

तब दोऊ खुसहाल है, मिले होइ इक चित्त ।
तिस दिनसौं बानारसी, नित्त सराहै मित्त ॥ ४८४

रीझि नरोत्तमदासकौ, कीनौ एक कवित्त ।
पढ़ै रैन दिन भाटसौ, घर बजार जित कित्त ॥ ४८५

छनैया इकतीसा

नरोत्तमदासस्तुति—

नवपद ध्यान गुन गान भगवंतजीकौ,
करत सुजान दिढ़ग्यान जग मानियै ॥
रोम रोम अभिराम धर्मलीन आठौ जाम,
रूप-धन-धाम काम-मूरति बखानियै ॥
तनकौ न अभिमान सात खेत देत दान,
महिमान जाके जसकौ वितान तानियै ।
महिमानिधान प्रान प्रीतम बनारसीकौ,
चहुपद आदि अच्छरन्ह नाम जानियै ॥ ४८६

चौपई

बानारसि चिंतै मनमांहि । ऐसो मित्र जगतमैं नांहि ॥
इस ही बीच पत्नकौ साज । दोऊ सौंसी करहिं इलाज ॥ ४८७
खरगसेनकी अहमति परं । भाइ असाधि वैदनैं करे ॥
बानारसी नरोत्तमदास । ठाहनि करइ कराइ तास ॥ ४८८
संवत तिहत्तरे वैसाख । सातैं सोमवार सित पाख ॥
तब साझेका लेखा किया । सब असबाब बांटिकै लिया ॥ ४८९

२ ब पढ़े रातदिन एकसौं । ३ ब साथी, ब साथी ।

दोहरा

दोइ रोजनामैं किए, रहे दुहूके पास ।
चले नरोत्तम आगरै, रहे बनारसिदास ॥ ४९०
रहे बनारसि जौनपुर, निरखि तात बेहाल ।
जेठ अंधेरी पंचमी, दिन वितीत निसिकाल ॥ ४९१
खरगसेन पहुचे सुरग, कहवति लोग विख्यात ।
कहां गए किस जोनिमैं, कहै केवली बात ॥ ४९२
कियौ सोक बानारसी, दियौ नैन भरि रोइ ।
हियौ कठिन कीनौ सदा, जियौ न जगमैं कोइ ४९३

चौपई

मास एक बीत्यौ जब और । तब फिरि करी बनजकी दौर ॥
हुंडी लिखी, रवत से पंच । लिए, करन लागे पट संच ॥ ४९४
पट खरीदि कीनौं एकत्र । आयौ बहुरि साहुकौ पत्र ।
लिखा खिपबी चीठीमाहिं । तुम बिनु लेखा चूकै नाहिं ४९५
तातैं तु भी आउ सिताब । मैं बूझौं सो देहि जुवाब ॥
बानारसी सुनत विरतंत । तजि बमरा उठि चले तुरंत ॥ ४९६
बांभन एक नाम सिवराम । सौंप्यौ ताहि बसनका काम ।
मास असाढ़माहिं दिन भले । बानारसी आगरै चले ॥ ४९७

दोहरा

एक तुरंगम नौ नफर, लीनें साथि बनाइ ।
नांउ पैसुभा गांउमैं, बसे प्रथम दिन आइ ॥ ४९८

तब दोऊ सुसहाल हैं, मिले होइ इक चित्त ।
तिस दिनसौं बानारसी, नित्त सराहै मित्त ॥ ४८४

रीझि नरोत्तमदासकौ, कीनौ एक कवित्त ।
पढ़ै रैन दिन भाटसौ, घर बजार वित कित्त ॥ ४८५

सवैया इकतीसा

नरोत्तमदासस्तुति—

नवपद ध्यान गुन गान भगवंतजीकौ,
करत सुजान दिढ़ग्यान जग मानिये ॥
रोम रोम अभिराम धर्मलीन आठौ जाम,
रूप-धन-धाम काम-मूरति बखानिये ॥
तनकौ न अभिमान सात खेत देत दान,
महिमान याके जसकौ वितान तानियें ।
महिमानिधान प्रान प्रीतम बनारसीकौ,
चहुपद आदि अच्छरनके नाम जानियें ॥ ४८६

चौपई

बानारसि चिंतै मनमांहि । ऐसो मित्त जगतमैं नांहि ॥
इस ही बीच चल्नकौ साज । दोऊ सौंझी करहिं इलाज ॥ ४८७
खरगसेनकी जदपति पेरे । भाइ असारिप पेदर्न करे ॥
बानारसी नरोत्तमदास । साहनि करइ कराई सास ॥ ४८८
संवत तिहत्तर बैसाख । सातैं सोमवार सित पाख ॥
तब साझका लेखा किया । सुख समाधान कारिकै लिया ॥ ४८९

१ अ पढ़े रातदिन एकमों । २ अ नामी, व नामी ।

माहि एक सराफकी, भाइ गयौ इस बीच ।
मुख मीठी बातें करै, चित कपटी नर नीच ॥ ५०८
तिन बामनके मल सब, टेकठ्योहे करि रीस ।
रूखे रुपैया गोठिमैं, गिनि देखे पचीस ॥ ५०९
सबके आगे फिरि कहै, गैरसाल सब दर्व ।
कोतवालपै आइकै, नबरि गुजारौ सर्व ॥ ५१०
विप्र जुगल मिसु करि परे, मृतकरूप धरि मौन ।
बनिया सबनि दिखाइ लै, गयौ गांठि निज भौन ॥ ५११
खरे दाम घरमैं धरे, खोटे ल्यायौ जोरि ।
मिद्दी कोथैलीमांहि भरि, दीनी गांठि मरोरि ॥ ५१२ ॥
लेइ कोथली हाथमैं, कोतवालपै आइ ।
खोटे दाम दिखाइकै, कही बात समुझाइ ॥ ५१३ ॥

चौपई

साहिबकी ठग आये बनें । कैठे फिरहिं जाहि नहिं गनें ॥
संध्यासमै होंहि इक ठौर । है असवार करहु तब दौर ॥ ५१४ ॥
यह कहि बनिक निरोलो भयौ । कोतवाल हाकिमपै गयौ ॥
कही बात हाकिमके कान । हाकिम साथ दियौ दीवान ॥ ५१५ ॥
कोतवाल दीवान समेत । सांझ समै आए ज्यौं प्रेत ।
पुरजन लोक साथि सै चारि । जनु सराइमैं आई धारि ॥ ५१६ ॥
कैठे दोऊ खाट बिछाइ । बामन दोऊ लिए बुलाइ ।
पूछै मुगल कहहु तुम कौन । कहै विप्र मथुरा मम भौन ॥ ५१७ ॥

१ म एकवोंदे । २ ब ई कोथरी । ३ ब निरुलो ।

ताही दिन आयौ तहां, और एक असवार।
कोठीवाल महेसुरी, वसै आगरे पार॥ ४९९

चौपई

ए सेवक इक साहिब सोइ। मथुरावासी बांमन दोइ॥
नर उनीसकी जुरी जमाति। पूरा साथ मिल्या इस भांति॥ ५००
फिरै कोस उतरहिं इकठौर। कोऊ कहूं न उतरै और॥
चले प्रभात साथ करि गोल। खेलहिं हंसहिं करहिं कलोल॥५०१

दोहरा

गांउ नगर उलंघि बहु, चलि आए तिस ठांउ।
जहां पाटमपुरके निकट, वसै कोररौ[1] गांउ॥ ५०२
उतरे आइ सराइमैं, करि अहार विश्राम।
मथुरावासी विप्र है, गए अहीरी-धाम॥ ५०३
दुहुमैं बांमन एक उठि, गयौ हाटमैं जाइ।
एक रुपैया काढ़ि तिनि, पैसा लिए भनाई[2]॥ ५०४
आयौ भोजन साज ले, गयौ अहीरी-गेह।
फिरि सराफ आयौ तहां, कहै रुपैया एह॥ ५०५
गैरसाल है बदलि दे, कहै विप्र मम नांहि।
तेरा मेरा यौं कहत, भई कलह दुहुमांहि॥ ५०६
मथुरावासी विप्रनैं मारयौ बहुत सराफ।
बहुत लोग विनती करी, तऊ करै नहिं माफ॥ ५०७

१ ब कोरड़ा। २ ब भुनाय। ३ ब कयौ।

फिरि महेसुरी लियौ बुलाय । कहु तू आहि कहांसौं आइ ॥
तब सो कहै जौनपुर गांउ । कोठीवाल आगरे जाउं ॥ ५१८ ॥
फिरि बनारसी बोले बोल । मैं जौहरी करौं मनिमोल ।
कोठी हुती बनारसमांहि । अब हम बहुरि आगरे जांहि ॥ ५१९ ॥

दोहरा

साखी नैमा साहुके, लस्कर जौनपुर भौन ।
ब्यौपारी जगमैं प्रकट, ठगके लच्छन कौन ॥ ५२० ॥

चौपई

कही बात जब बानारसी । तब वे कहन लगे पारसी ॥
एक कहै ए ठग तहकीक । एक कहै ब्यौपारी ठीक ॥ ५२१ ॥
कोतवाल तब कहै पुकारि । बांधहु बेग करहु क्या रारि ॥
बोलै हाकिमकौ दीवान । अहमक कोतवाल नादान ॥ ५२२ ॥
रोवि सभै सुभ नहिं कोइ । चोर साहुकी निरखै न होइ ॥
कछु जिन कहौ रातिकी राति । प्रात निकसि आवैगी जाति ॥ ५२३ ॥
कोतवाल तब कहै बखानि । तुम कछु अपनी पहिचानि ॥
कोरा पाटमपुर अरु करी । तीनि गांउकी सरियति करी ॥ ५२४ ॥
और गांउ हम मानहिं नांहि । तुम यह फिकिर करहु हम जांहि ।
चले मुगल बादा करि भोर । चौकी बैठाई चहुंओर ॥ ५२५ ॥

दोहरा

सिरीमाल बानारसी अरु महेसुरीजाति ।
करहिं मंत्र दोऊ जनै भई छमासी राति ॥ ५२६ ॥

१ ब रच्छा सभै न कछु है भोर । २ ब निरत । ३ ब जुरत ।

चौपई

पहर राति जब पिछली रही । तब महेसुरी ऐसी कही ॥
मेरो ठकुरा भाई हरी । नांउ सु तौ ब्याहा है परी ॥ ५२७ ॥
हम आए ये इहां बरात । भली यादि आई यह बात ।
बानारसी कहै रे मूढ़ । ऐसी बात कैरी क्यौं गूढ़ ॥ ५२८ ॥

दोहरा

तब महेसुरी यौं कहै, भयसौं भूली मोहि ।
अब मोकौं सुमिरन भई, तु निचिंत मन होहि ॥ ५२९ ॥

चौपई

तब बनारसी हरषित भयौ । कछु इक सोच रह्यौ कछु गयौ ॥
कबहू चितकी चिंता भगै । कबहू बात झूठली लगै ॥ ५३० ॥
यौं चिंतवत भयौ परभात । आइ पियादे लागे घात ॥
सूली दे मजरके सीस । कोतवाल भेजी उनईस ॥ ५३१ ॥
ते सराईमें हारी आनि । प्रगट पियादे कहैं बखानि ।
तुम उनीस प्रानी ठग लोग । ए उनीस सूली तुम जोग ॥५३२॥

दोहरा

घरी एक बीते बहुरि, कोतवाल दीवान ।
आए पुरजन साथ सब, लागे करन निदान ॥ ५३३ ॥

चौपई

तब बनारसी बोलै बानि । परीमांहि निकसी पहचानि ॥
तब दीवान कहै स्याबास । यह तो बात कही तुम रास ॥ ५३४

१ अ कही । २ ब मई ।

मेरे साथ चलो तुम घरी । जो किछु उहां होइ सो खरी ॥
महेसुरी हूओ असवार । अरु दीवान चला तिस वार ॥ ५३५
दोऊ बनै बरीमैं गए । समधी मिले साहु तब भए ॥
साहु साहुघर कियौ निवास । आयौ मुगल बनारसी पास ॥ ५३६
आइ कह्यौ तुम सांचे साहु । करहु माफ यह मया गुनाहु ॥
तब बनारसी कहै सुभाउ । तुम साहिब हाकिम उमराउ ॥ ५३७
जो हम कर्म पुरातन कियौ । सो सब आइ उदै रस दियौ ॥
भावी अमिट हमारा मता । इसमैं क्या गुनाह क्या खता ॥ ५३८
दोऊ मुगल गए निज धाम । तहं बनारसी कियौ मुकाम ।
दोऊ बांमन ठाढ़े भए । बोलहिं दाम हमारे गए ॥ ५३९

दोहरा

पहर एक दिन जब चढ्यौ, तब बनारसीदास ।
सेर ७ सात फुलेल ले, गए मुगलके पास ॥ ५४०
हाकिमकौं दीवानकौं, कोतवालके गेह ।
यथाजोग सबकौं दियौ, कीनौं सबसन नेह ॥ ५४१
तब बनारसी यौं कहै, भाइ सराफ ठगाइ ।
गुनहगार कीजै उसहि, दीजै दाम मंगाइ ॥ ५४२
कहै मुगल तुम बिनु कहैं, मैं कीन्हौ उस खोज ।
वह निज सबै ही साथ लै भागा उस ही रोज ॥ ५४३

सोरठा

मिला न किस ही ठौर, तुम निज डेरे जाइ करि ।
सिरिनी बांटहु और, इन दामनिकी क्या चली ॥ ५४४

१ ब चढ्यौ वासि ।

चौपई

तब बनारसी चिंते आम । बिना चोर नहिं आवहि दाम ।
इहां हमारा किछु न बसाय । तातैं बैठि रहै घर जाय ॥ ५४५

दोहरा

यह विचार करि कीनी दुवा । कही जु होना था सो हुवा ॥
आए अपने डेरेमांहि । कही खिप्रसौं दमिका (?) नाहिं ॥ ५४६
भोजन कीनौ सबनि मिलि, हूऔ संध्याकाल ।
आयौ साहु महेसुरी, रहे राति खुसहाल ॥ ५४७

चौपई

फिरि प्रभात उठि मारग लगे । मनहु कालके मुखसौं भगे ॥
दूजै दिन मारगके बीच । सुनी नरोत्तम हितकी मीच ॥ ५४८

दोहरा

चीठी बैनीदासकी, दीनी काहू आनि ।
बांचेत ही मुरछा भई, कहूं पांउ कहुं पानि ॥ ५४९
बहुत भांति बानारसी, कियौ पंथमैं सोग ।
समुझाये मानै नहीं, घिरे आइ बहु लोग ॥ ५५०
लोभ मूल सब पापकौ, दुखकौ मूल सनेह ।
मूल अजीरन व्याधिकौ, मरन मूल यह देह ॥ ५५१
ज्यौं त्यौं कर समुझे बहुरि, चले होहि असवार ।
मम मम आए आगरे, निकट नदीके पार ॥ ५५२
तहां खिप्र न्याऊ भए, मांडे मागग बीच ।
कहहिं हमारे दाम बिनु भइ हमारी मीच ॥ ५५३

१ अ म देस्ना । २ अ नव ।

चौपई

कही सुनी बहुतेरी बात। दोऊ बिप्र करैं अपघात ॥
तब बनारसी सोचि बिचारि। दीनैं दोमनि मेटी रारि ॥ ५५४

दोहरा

बारह दिए महेसुरी, तेरह दीनैं आप।
बांभन गए असीस दै, भए बनिक निष्पाप ॥ ५५५
अपने अपने गेह सब, आए भए निचींत।
रोऐ बहुत बनारसी हाइ मीत हा मीत ॥ ५५६
घरी चारि रोए बहुरि, लगे आपने काम।
भोजन करि संध्या समय, गए साहुके धाम ॥ ५५७

चौपई

जांचहिं जांहि साहुके भौन। लेखा कागद देखैं कौन ॥
बैठे साहु चिमौ-मदमाति। गावहिं गीत कलावत-पांति ॥ ५५८
धुरै पखावज बाजैं तांति। सभा साहिजादेकी भांति ॥
दीजहिं दान अखंडित नित्त। कवि बंदीजन पढ़हिं कवित्त ॥ ५५९
कही न आइ साहिबी सोइ। देखत चकित होइ सब कोइ ॥
बानारसी कहै मनमाहि। लेखा आइ बना किस पाहि ॥ ५६०
सेवा करी मास द्वै चारि। कैसा वनज कहांकी रारि ॥
अब कहिए लेखेकी बात। साहु जबाब देहि परभात ॥ ५६१
भाखी भरी अमासी जाम। दिन कैसा यह जानै राम ॥
सूरज उदै अस्त है कहां। विभ्रमी विभव-मगन है जहां ॥ ५६२

१ स ई दाम ड। २ ब भीनो रुदन बनारसी। ३ अ लुक। ४ इस पंक्तिसे लेकर ५६७ तककी पंक्तियाँ ब प्रतिमें नहीं हैं। ५ ब कसी अपनी कथा।

एहि विधि बीते बहुत दिन, एक दिवस इस राह ।
बाबा बेनीदासके, आए मंगासाह ॥ ५६२
मंगा चंगा आदमी, सज्जन और विचित्र ।
सो बहनेऊ सिंघका, बानारसिका मित्र ॥ ५६३
तासौं कही बनारसी, निज लेखेकी बात ।
भैया, हम बहुते दुखी, दुखी नरोत्तम तात ॥ ५६४
तातैं तुम समुझाइके, लेखा डारहु पारि ।
अगिली फारेकती लिखौ, पिछिलो कागद फारि ॥ ५६६

चौपई

तब तिस ही दिन मंगलदास । आए सबलसिंघके पास ॥
लेखा कागद लिए मंगाइ । साझा बाता दिया चुकाइ ॥ ५६७
फारेकती लिखि दीनी दोइ । बहुरौ सुंखुन करै नहिं कोइ ॥
मता लिखाइ हुहूपै लिया । कागद हाथ दुहूका दिया ॥ ५६८
न्यारे न्यारे दोऊ भए । आप आपने घरै उठि गए ॥
सोलह सै तिहत्तरे साल । अगहन कृष्णपक्ष हिमकाल ॥ ५६९
लिया बनारसि डेरा जुदा । आया पुन्य कैरमका उदा ॥
जो कपरा था बाभन हाथ । सो उनि भेज्या आछे साथ ॥ ५७०
भाइ जौनपुरीकी गांठि । धरि लीनी लेखमौं साठि ॥
नित उठि प्रात नखासे जांहि । बचि मिलावहिं पूंजीमांहि ॥ ५७१
इस ही समय ईति विस्तरी । परी आगरे पहिली मरी ॥
जहां तहां सब भागे लोग । परगट भया गांठिका रोग ॥ ५७२

१-२ ब फारकती । ३ ब सुखन । ४ अ घरकौं । ५ अ करमका ।

निकसे गाँठि मरै छिनमाहि । काहूकी बसाइ किछु नाहिं ॥
चूहे मरहिं वैद मरि जाहिं । भयसौं लोग अंन नहिं खाहिं ॥ ५७३

नगर निकट बांम्हनका गाउ । सुखकारी अजीजपुर नाउ ॥
तहां गए बानारसिदास । डेरा लिया साहुके पास ॥ ५७४

रहहिं अकेले डेरेमाहि । गर्भित बात कहनकी नांहि ॥
कुमति एक उपजी तिस थान । पूरबकर्मउदै परवांन ॥ ५७५

मरी निवर्त्त भई विधि जोग । तब घर घर आए सब लोग ।
आए दिन केतिक इक भए । बानारसी अमरसर गए ॥ ५७६

उहां निहालचंदकौ व्याह । भयौ बहुरि फिरि पकरी राह ।
आए नगर आगरेमाहि । सबलसिंघके आवहिं जांहि ॥ ५७७

दोहरा

कुती जु माता जौनपुर, सो आई सुत पास ।
खैराबाद विवाहकौं, चले बनारसिदास ॥ ५७८ ॥

चौपई

करि विवाह आए घरमाहि । मनसा भई जातकौं जांहि ॥
बरधमान कुंअरजी दलाल । चल्यौ संघ इक तिन्हके नाल ॥ ५७९

अहिछत्ता-हथनापुर-जात । चले बनारसि उठि परभात ॥
माता और भारजा संग । रथ बैठे धरि भाउ अभंग ॥ ५८ ॥

पंचहत्तरे पोह सुभ घरी । अहिछत्तेकी पूजा करी ॥
फिरि आए हथनापुर जहां । सांति कुंथु अर पूजे तहां ॥ ५८१

१ ब दलाल ।

दोहरा

सांति-कुंथ-अरनाथकौ, कीनौ एक कवित्त ।
ताकौं पढ़ै बनारसी, भाव भगतिसौं नित्त ॥ ५८२

छप्पै

श्री बिससेन नरेस, सूर नृप राइ सुदस्सनै ।
अचिरा सिरिआ देवि, करहिं जिस देव प्रसंसन ॥
तसु नंदन सारंग, छाग नंद्यावत लछ्छन ।
चालिस पैंतिस तीस, चाप काया छवि कंचन ॥
सुखरासि बनारसिदास भनि, निरखत मन आंनदई ॥
हथिनापुर, गजपुर, नागपुर, सांति कुंथ अर वंदई ॥ ५८३

चौपई

करी जात मन भयौ उछाह । फिरयौ संघ दिलीकी राह ॥
आई मेरठि पंथ विचाल । तहां बनारसीकी ननसाल ॥ ५८४ ॥
उतरा संघ कोटके तले । तब कुटुंब जात्रा करि चले ॥
चले चले आए मग कोल । पूजा करी कियौ यौं कौल ॥ ५८५
नगर आगरै पहुचे आइ । संघ निज निज घर बैठे जाइ ॥
बानारसी गयौ पौसालै । सुनी जती श्रावककी चाल ॥ ५८६
बारह व्रतके किए कवित्त । अंगीकार किए धरि चित्त ॥
चौदह नेम सभालै नित्त । लागै दोष करै प्राछित्त ॥ ५८७
नित संध्या पड़िकौना करै । दिन दिन व्रत विशेषता धरै ॥
गह जैन मिथ्यामत बमै । पुत्र एक हूवा इस समै ॥ ५८८

[1] ब सुनंदन । २ ब ई आनंदमय । ३ ब ड़ वंदिवर । ४ ब पोसाल ।
५

निकसै गांठि मरै छिनमांहि । काहूकी बसाइ किछु नांहि ॥
चूहे मरहिं वैद मरि जांहि । भयसौं लोग अंन नहिं खांहि ॥ ५७३

नगर निकट बांमनका गांउ । सुखकारी अजीजपुर नांउ ॥
तहां गए बानारसिदास । डेरा लिया साहुके पास ॥ ५७४

रहहिं अकेले डेरेमांहि । गर्भित बात कहनकी नांहि ॥
कुमति एक उपजी तिस थान । पूरबकर्मउदै परवांन ॥ ५७५

मरी निवर्त भई बिधि जोग । तब घर घर आए सब लोग ।
आए दिन केतिक इक भए । बानारसी अमरसर गए ॥ ५७६

उहां निहालचंदको ब्याह । भयौ बहुरि फिरि पकरी राह ।
आए नगर आगरेमांहि । सबलसिंघके आवहिं जांहि ॥ ५७७

दोहरा

हुती जु माता जौनपुर, सो आई सुत पास ।
खैराबाद बिवाहकौं, चले बनारसिदास ॥ ५७८ ॥

चौपई

करि बिवाह आए घरमांहि । मनसा भई जातकौं जांहि ॥
बरधमान कुंअरजी दलाल । चल्यौ संघ इक तिन्हके नाल ॥ ५७९

अहिछत्ता-हथनापुर-जात । चले बनारसि उठि परभात ॥
माता और भारजा संग । रथ बैठे धरि भाउ अभंग ॥ ५८० ॥

पचहत्तरे पोह सुभ घरी । अहिछत्तकी पूजा करी ॥
फिरि आए हथनापुर जहां । सांति कुंथु अर पूजे तहां ॥ ५८१

१ ब दमाक ।

ऐसी दसा भई एकंत । कहौं कहां लौं सो बिरतंत ॥
बिनु आधार भई मति नीच । सांगानेर चले इस बीच ॥ ५९९
बानारसी बराती भए । तिपुरदासकौं ब्याहन गए ॥
ब्याहि ताहि आए घरमांहि । देवचढ़ाया नेवज खांहि ६००
कुमती चारि मिले मन मेल । खेला पैजारहुका खेल ॥
सिरकी पाग लेंहि सब छीनि । एक एककौं मारहिं तीनि ॥ ६०१

दोहरा

चन्द्रभान बानारसी, उदैकरन अरु थान ।
चारौं खेलहिं खेल फिरि, करहिं अध्यातम ग्यान ॥ ६०२
नगन होंहि चारौं जनें, फिरहिं कोठरीमांहि ।
कहहिं भए मुनिराज हम, कछू परिग्रह नांहि ॥ ६०३
गनि गनि मारहिं हाथसौं, मुखसौं करहिं पुकार ।
जो गुमान हम करतेहे ताके सिर पैजार ॥ ६०४
गीत सुनैं बातैं सुनैं, ताकी बिंग बनाइ ।
कहैं अध्यातममैं अरथ, रहैं मृषा लौं लाइ ॥ ६०५

चौपई

पूरब कर्म उदै संजोग । आयौ उदय असाता भोग ।
तातैं कुमत भई उतपात । कोउ कहै न मानै बात ॥ ६०६
जब लौं रही कर्मबासना । तब लौं कौन बिथा नासना ॥
असुभ उदय जब पूरा भया । सहजहि खेल छूटि तब गया ॥ ६०७
कहहिं लोग श्रावक अरु जती । बानारसी खोसरामती ॥
तीनि पुरुषकी चलै न बात । यह पंडित तातैं बिख्यात ॥ ६०८

१ ब इ करमचंद । २ अ गुनमान । ३ अ बर ९८, इ कान्त है । ४ ब सम ।
५ इ गुनरामसी, ब गुनरामसी इ गुनरामसी ।

छिहत्तरे संमत आसाढ़ । जनम्यौ पुत्र धरमरुचि बाढ़ ॥
बरस एक बीत्यौ जब और । माता मरन भयौ तिस ठौर ॥ ५८९
सतहत्तरे समै मा मरी । जथासकति कछु लाहनि करी ॥
उनासिए सुत अरु तिय मुई । तीजी और सगाई हुई ॥ ५९०
बेगा साहु कूकड़ी गोत । खैराबाद तीसरी पोत ।
समय अस्सिए ब्याहन गए । आए घर गृहस्थ फिरि भए ॥५९१॥
तब तहाँ मिले अरथमल ढोर । करैं अध्यातम बातैं जोर ।
तिनि बनारसीसौं हित कियौ । समैसार नाटक लिखि दियौ ५९२
राजमल्लनैं टीका करी । सो पोथी तिनि आगै धरी ॥
कहै बनारसिसौं तू बांचु । तेरे मन आवैगा सांचु ॥ ५९३ ॥
तब बनारसि बांचै नित्त । भाषा अरथ बिचारै चित्त ॥
पावै नहीं अध्यातम पेच । मानै बाहिज किरिया हेच ॥ ५९४ ॥

दोहरा

करनीकौ रस मिटि गयौ, भयौ न आतमस्वाद ।
भई बनारसिकी दसा, जथा ऊंटकौ पाद ॥ ५९५ ॥

चौपई

बहुरौं चमत्कार चित भयौ । कछु वैराग भाव परिनयौ ॥
ग्यान-पचीसी कीनी सार । 'ध्यान बतीसी' ध्यान बिचारै ५९६
कीनें 'अध्यातमके गीत' । बहुत कथन बिवहार-अतीत ॥
सिवमंदिर इत्यादिक और । कवित अनेक किए तिस ठौर ५९७
जप तप सामायिक पडिकौन । सब करनी करि डारी बौन ।
हरी बिरति लीनी थी जोइ । सोउ मिटी न परमिति कोइ ॥ ५९८

१ म उदार । २ ब और ।

दोहरा

सौलह से चौरासिए, तखत आगरे थान ।
बैठ्यौ नाम धराय प्रभु, साहिब साहि किरान ॥ ६१७
फिरि सम्वत पचासिए, बहुरि दूसरी बार ।
भयौ बनारसिके सदन, दुतिय पुत्र अवतार ॥ ६१८

चौपई

बरस एक है अंतर काल । बैया शेष हुओ सो बाल ।
अलप आउ है आवहिं जाहि । फिर सतासिए सम्वतमाहि ॥ ६१९
बानारसीदास आवास । त्रितिय पुत्र हुओ परगास ॥
उनासिए पुत्री अवतरी । तिन आउसा पूरी करी ॥ ६२०
सब सुत सुता मरनपद गहा । एक पुत्र कोऊ दिन रहा ॥
सो भी अल्प आर्ड जानिए । तातैं मृतकरूप मानिए ॥ ६२१
सम सम बीस्यौ इक्यानवा । आयौ सोल्हसे बानवा ॥
सब साई धरि पहिली दसा । बानारसी रह्यौ इकरसा ॥ ६२२

दोहरा

आदि असिमा बानवा, अंत बीचकी बात ।
कछु औरौं बाकी रही, सो अब कहौं विख्यात ॥ ६२३
बठ बरात बनारसी, गए बाटसू गांउ ।
बम्भा-सुनती ब्याहके, फिरि आए निज ठांउ ॥ ६२४
अरु इस बीचि कबीसुरी कीनी बहुरि अनेक ।
नाम ' सुक्तिमुक्तावली, ' किए कवित सौ एक ॥ ६२५

१ ड स विख्यातिए । २ इ बपामार । ३ ई म औरें । ४ ड बापु ।
५ ग इ बहु ।

निंदा थुति जैसी जिस होइ। तैसी तासु कहै सब कोइ॥
पुरजन बिना कहे नहि रहै। जैसी देखै तैसी कहै॥ ६०९

दोहरा

सुनी कहै देखी कहै, कलपित कहै बनाइ।
दुराराधि ए जगत जन, इन्हसौं कछु न बसाइ॥ ६१०

चौपई

अब यह धूमधाम मिटि गई। तब कछु और अवस्था भई॥
जिनप्रतिमा निंदै मनमांहि। मुखसौं कहै जो कहनी नांहि। ६११
करै बरत गुरु सनमुख आइ। फिरि मानहि अपने घर आइ॥
खाहि रात दिन पसुकी भांति। रहै एकंत मृषामदमाति॥ ६१२

दोहरा

यह बनारसीकी दसा, भई दिनहु दिन गाढ़।
तब संवत चौरासिया, आयौ मास असाढ़॥ ६१३
भयौ तीसरी नारिकै, प्रथम पुत्र अवतार।
दिवस कैकु रहि उठि गयौ, अलपआयु संसार॥ ६१४

चौपई

छत्रपति जहांगीर दिलीस। कीनौ राज बरस बाईस॥
कासमीरके मारग बीच। आवत हुई अचानक मीच॥ ६१५
मासि चारि अंतर परधान। आयौ साहिजिहां सुलतान।
बैठ्यौ तख्त छत्र सिर तानि। चहु चक्कमैं फेरी आनि॥ ६१६

१ ब आन।

दोहरा

सोलह सै चौरासिए, तखत आगरे थान।
बैठौ नाम धराय प्रभु, साहिब साहि किरान ॥ ६१७
फिरि संवत पचासिऐ, बहुरि दुसरी बार।
भयौ बनारसिके सदन, दुतिय पुत्र अवतार ॥ ६१८

चौपई

बरस एक द्वै अंतर काल। कैया शेष हूऔ सो बाल।
अलप आउ द्वै आवहिं जाहि। फिर सतासिए संवतमांहि ॥ ६१९
बानारसीदास आवास। त्रितिय पुत्र हूऔ परगास ॥
उनासिए पुत्री अवतरी। तिन आऊखा पूरी करी ॥ ६२०
सब सुत सुता मरनपद गहा। एक पुत्र कोऊ दिन रहा ॥
सो भी अलप आउ जानिए। तात सृतकल्प मानिए ॥ ६२१
सम सम बीत्यौ इक्यानवा। आयौ सोलहसे बानवा ॥
तब ताई धरि पहिली दसा। बानारसी रह्यौ इकरसा ॥ ६२२

दोहरा

आदि असिमा बानवा, अंत बीचकी बात।
कछु औरौ बाकी रही, सो अब कहौं विख्यात ॥ ६२३
पठ बरात बनारसी गए बाठ्य गांठ।
बच्छा-सुतको ब्याहके, फिरि आए निज ठांउ ॥ ६२४
अरु इम बीचि कवीसुरी कीनी बहुरि अनेक।
नाम 'सुक्तिमुक्तावली' किए कवित सौ एक ॥ ६२५

१ इ ग विख्यातिर। २ इ बयासिर। ३ ई ग बैठे। ४ इ अनु। ५ प इ बरा।

' अध्यातम बतीसिका, ' ' पैड़ी ' ' फागु धमाल ' ।
कीनी ' सिंधुचतुर्दसी, ' फुटक कवित रसाल ॥ ६२६
' शिवपचीसी ' भावना, ' सहस अठोत्तर नाम ।'
' करमछत्तीसी ' ' झूलना ', अंतर रावन राम ॥ ६२७
बरनी ' आंखैं दोइ विधि, ' करी ' बचनिका ' दोइ ।
' अष्टक ' ' गीत ' बहुत किए, कहौं कहा लौं सोइ ॥ ६२८
सोलह से बानवै लौं, कियौ नियत-रस-पान ।
पै कवीसुरी सब भई, स्यादवाद-परवांन ॥ ६२९
अनायास इस ही समय, नगर आगरे थान ।
रूपचंद पंडित गुनी, आयौ आगम-जान ॥ ६३०

चौपई

तिहुंना साहु देहुरा किया । तहां आइ तिनि डेरा लिया ॥
सब अध्यातमी कियौ विचार । ग्रंथ बंचायौ गोमटसार ॥ ६३१
तामैं गुनथानक परवांन । कह्यौ ग्यान अरु क्रिया विधान ।
जो जिय जिस गुन-थानक होइ । तैसी क्रिया करै सब कोइ ॥ ६३२
भिन्न भिन्न बिबरन बिस्तार । अंतर नियत बहिर बिवहार ॥
सबकी कथा सबै विधि कही । सुनिकै संसै कछुव न रही ॥ ६३३
तब बनारसी औरै भयौ । स्यादवाद परिनति परिनयौ ॥
पांडे रूपचंद गुर पास । सुन्यौ ग्रंथ मन भयौ हुलास ॥ ६३४
फिरि तिस समै बरस द्वै बीच । रूपचंदकौं आई मीच ॥
सुनि सुनि रूपचंदके बैन । बानारसी भयौ दिढ़ जैन ॥ ६३५

१ अ तिहिना साह । २ ड स भिन ।

दोहरा

तब फिरि और कबीसुरी, करी अध्यातममांहि
यह वह कथनी एकसी, कहूं विरोध किछु नांहि ॥ ६३६
हृदयमांहि कछु कालिमा, हुती सरदहन बीच ।
सोऊ मिटि समता भई, रही न ऊच न नीच ६३७

चौपई

अब सम्यक दरसन उनमान । प्रगट रूप जाने भगवान ॥
सोलहसै तिरानवे वर्ष । समसार नाटक धरि हर्ष ॥ ६३८
भाषा कियौ भानके सीम । कवित सातसै सत्ताईस
मनकांत परनति परिनयौ । संवत आइ छानवा भयौ ७३९
तब बनारसीके घर बीच । त्रितिये पुत्रकी आई मीच
बनारसी बहुत दुख किया । भयो सोकसौं ब्याकुल हिया ६४०
जगमें मोह महा बलवान । करै एक सम मूरख ग्यान ।
बरस दोइ बीते इस भांति । तऊ न मोह होइ उपसांति ६४१

दोहरा

कैही पयायन परम लौं बानारसिकी बात ।
तीनि बिवाही भारजा, सुता दोइ सुत सात ॥ ६४२ ॥
नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नर दोइ ।
ज्यौं तरवर पतझार ह्वै रहैं ठूंठसे होइ ॥ ६४३ ॥
तत्वदृष्टि जो देखिए, सत्यारथकी भांति ।
ज्यौं जाको परिगह घटै, त्यौं ताकौं उपसांति ॥ ६४४ ॥

संसारी जानै नहीं, सत्यारथकी बात।
परिगहसौं मानै विभौ, परिगह बिन उतपात ॥ ६४५ ॥
अब बनारसीके कहौं, वरतमान गुन दोष।
विदमान पुर आगरे, सुखसौं रहै सजोष ॥ ६४६ ॥

चौपई

भाषाकवित अध्यातममांहि। पढ़ै और दूसरौ नांहि ॥
छमावंत संतोषी भला। भली कवित पढ़िबेकी कला ॥ ६४७ ॥
पढ़ै संसकृत प्राकृत सुद्ध। विविध-देसभाषा-प्रतिबुद्ध ॥
जानै सबद अरथकौ भेद। ठानै नहीं जगतकौ खेद ॥ ६४८ ॥
मिठबोला सबहीसौं प्रीति। जैन धरमकी दिढ़ परतीति ॥
सहनसील नहिं कहै कुबोल। सुथिरचित्त नहिं डावांडोल ॥ ६४९ ॥
कहै सबनिसौं हित उपदेस। हृदै सुष्ट न दुष्टता लेस ॥
पररमनीकौ त्यागी सोइ। कुविसन और न ठानै कोई ॥ ६५० ॥
हृदै सुद्ध समकितकी टेक। इत्यादिक गुन और अनेक ॥
अलप जघन्न कहे गुन जोइ। नहि उतकिष्ट न निर्मल कोइ ॥ ६५१ ॥

अथ दोषकथन

कहे बनारसिके गुन जथा। दोषकथा अब बरनौं तथा।
क्रोध मान माया जलरेख। पै लछिमीकौ लोभ विसेख ॥ ६५२ ॥
पोतै हास कर्मका उदा। घरसौं हुवा न चाहै जुदा ॥
करै न जप तप संजम रीति। नहीं दान-पूजासौं प्रीति ॥ ६५३ ॥

१ पढ़िबे। २ ब हिय। ३ अ और। ४ अ कर्म का।

थोरे लाभ हरख बहु धरै । अलप हानि बहु चिंता करै ॥
मुख अवद्य भाषत न लजाइ । सीखै भंडकला मनं लाइ ॥ ६५४ ॥
भाखै अकथकथा विरतंत । ठानै नृत्य पाइ एकंत ॥
अनदेखी अनसुनी बनाइ । कुकथा कहै सभामंहि आइ ॥ ६५५ ॥
होइ निमग्न हास रस पाइ । मृषावाद बिनु रहा न जाइ ॥
अकस्मात भय व्यापै घनी । ऐसी दसा आइ करि बनी ॥ ६५६ ॥
कबहूं दोप कबहूं गुन कोइ । जाको उदौ सो परगट होइ ॥
यह बनारसीजीकी बात । कही थूल जो हुती विख्यात ॥ ६५७ ॥
और जो सूक्ष्म दसा अनंत । ताकी गति जानै भगवंत ॥
जे जे बातें सुमिरन भई । ते ते वचनरूप परिनई ॥ ६५८ ॥
जे बूझी प्रमाद इह मांहि । ते काहूपै कही न जांहि ॥
अलप थूल भी कहै न कोइ । भाषै सो जु केवली होइ ६५९

दोहरा

एक जीवकी एक दिन दसा होहि जेतीक ।
सो कहि सकै न केवली, जानै जद्यपि ठीक । ६६० ।
मनपरजेधर अवधिधर, करहिं अलप चिंतौन ।
हमसे कीट पतंगकी बात चलावै कौन । ६६१ ।
तातैं कहत बनारसी, जीकी दसा सरीर ।
कछु थूलमें थूलसी, कही बहिर विवहार । ६६२
परम पंच पंचास लौं भाख्या निज विरतंत ।
आगैं भावी जो कथा सो जानै भगवंत । ६६३

१ भ पन । २ इ ब मूर । ३ भ रम्य ।

बरस पचावन ए कहे, बरस पचावन और।
बाकी मानुष आउमैं, यह उतकिष्टी दौर। ६६४

बरस एक सौ दस अधिक, परमित मानुष आउ।
सोलहसै अट्ठानवै, समै बीच यह भाउ॥ ६६५

तीनि भांतिके मनुष सब, मनुष्यलोकके बीच।
बरतहिं तीनौं कालमैं, उत्तम, मध्यम, नीच॥ ६६६

अथ उत्तम नर यथा—

जे परदोष छिपाइकै, परगुन कहैं विसेष।
गुन तजि निज दूषन कहैं, ते नर उत्तम भेष॥ ६६७

अथ मध्यम नर यथा—

जे भाखहिं पर-दोष-गुन, अरु गुन-दोष सुकीउ।
कहहिं सहज ते जगतमैं, हमसे मध्यम जीउ॥ ६६८

अथ अधम नर यथा—

जे परदोष कहैं सदा, गुन गोपहिं उर बीच
दोष लोपि निज गुन कहैं, ते जगमैं नर नीच ६६९

सौलह सै अट्ठानवै, संवत अगहनमास
सोमवार तिथि पंचमी सुकल पक्ष परगास ६७०

नगर आगरेमैं बसै जैनधर्म श्रीमाल।
बानारसी बिहोलिया, अध्यातमी रसाल ६७१

१ ड कहै। २ म अट्ठावना, ड अट्ठामणा।

चौपई

ताके मन भाई यह बात । अपनौ चरित कह्यौ बिख्यात ।
तब तिनि बरस पच पंचास । परमित दसा कही मुख भास ६७२
आगै जु कछु होइगी और । तैसी समुझैंगे तिस ठौर ।
बरतमान नर-आउ बखान । बरस एक सौ दस परवांन ६७३

दोहरा

तातैं अरध कथान यह, बानारसी चरित्र ।
दुष्ट जीव सुनि हसहिंगे, कहहिं सुनहिंगे मित्र ॥ ६७४
सब दोहा अरु चौपई, छसै पिचैत्तरि मान ।
कहहिं सुनहिं बाचहिं पढ़हिं, तिन सबकौं कल्यान ॥ ६७५

इति श्रीअर्द्धकथानक अधिकार । सम्पूर्ण । शुभमस्तु ।

संवत् १८४९ भाद्रमासे कृष्णपक्षे चतुर्दशी १४ सोमवासर लिखितं मगवानदास मिश्रेण । राम ।

---

१ अ घर । २ अ [illegible] बान । ३ ब इतिश्री बनारसी अरध्या संपूर्णम् । मिती [illegible] कृष्ण ७ संवत् १९ २ । श्री । स इती बनारसी अरध्या संपूर्णम । ड इति श्री अर्द्धकथानक अधिकार सम्पूर्ण । श्री बनारसीदासजी-कृतिरियं । श्लोकसंख्या एक १ । श्री[illegible] कल्याणं भवतु । ई इती बनारसी अरध्या सम्पूर्णम ।

बरस पचावन ए कहे, बरस पचावन और ।
बाकी मानुष आउमैं, यह उतकिष्टी दौर । ६६४

बरस एक सौ दस अधिक, परमित मानुष आउ ।
सोल्हसे अट्ठानवै, समै बीच यह भाउ ॥ ६६५

तीनि भांतिके मनुष सब, मनुजलोकके बीच ।
बरतहिं तीनों कालमैं, उत्तम, मध्यम, नीच ॥ ६६६

अथ उत्तम नर यथा—

जे परदोष छिपाइकै, परगुन कहैं विशेष ।
गुन तजि निज दूषन कहैं, ते नर उत्तम भेष ॥ ६६७

अथ मध्यम नर यथा—

जे भाषहिं पर-दोष-गुन, अरु गुन-दोष सुकीउ ।
कहहिं सहज ते जगतमैं, हमसे मध्यम जीउ ॥ ६६८

अथ अधम नर यथा—

जे परदोष कहैं[1] सदा, गुन गोपहिं उर बीच
दोष लोपि निज गुन कहैं, ते जगमैं नर नीच ६६९

सोल्ह से अट्ठानवै[2], संवत अगहनमास
सोमवार तिथि पंचमी, सुकल पक्ष परगास ६७०

नगर आगरमैं बसे, जैनधर्म श्रीमाल ।
बानारसी बिहोलिआ, अध्यातमी रसाल ६७१

१ ब करैं । २ म अट्ठासना, ड अट्ठावना ।

नाम-सूची

नाम-सूची

सारनगर साहिबादपुर भाषा । देखौ श्रावक गुरु मन भाषा ॥

समाधीरूढ नगरी विशाल । ॥

सुरहरपुर यह शायद जौनपुरका ही दूसरा नाम है। जौनपुरके तीसरे बादशाह पठानबादशाहोंका दूसरा नाम मलिक सरवर था जिसे बनारसीदासजीने सुरहर सुलतान लिखा है। संभव है, इसी नामसे जौनपुर सुरहरपुर भी कहलाता हो। राजुल्मीके समयमें मुहम्मद तुगलकका ही दूसरा नाम जौनाशाह था और उसीके नामसे जौनपुर बसाया गया।

हथिनापुर=हस्तिनापुर। मेरठसे २ मील। जैनोंका प्रसिद्ध तीर्थस्थान।

समेदसिखर=सम्मेद शिखर, हजारीबाग जिलेका 'पारसनाथ हिल' प्रसिद्ध जैन तीर्थ।

पाटम्मपुर—कुर्रा चित्तरपुरके पास है, जिला कानपुर।

पैंसुआ गाँव—कौनपुरसे आगरे जानेके रास्तेमें एक मंजिलपर।

बारास्—जयपुर रियासतमें इसी नामसे प्रसिद्ध स्थान।

दिल्ली—वर्तमान देहली या दिल्ली।

नरवर—नलपुर, नरवर, ग्वालियर राज्यका एक प्राचीन स्थान। [illegible] सं० १२९४ की लिखी हुई एक प्रतिकी लेखनप्रशस्तिमें नगर इसे ही 'नलपुरी' लिखा है।

पटना—बिहारकी राजधानी।

फलवर्धक कटरा—आगरेमें इस समय इस नामका कोई कटरा नहीं है। पहले रहा होगा।

फिरोजाबाद—फीरोजाबाद जिला आगरा।

फतेहपुर—[illegible]से दस कोस।

बीड़ोली—बाबू ब्रजसेनकी खोजके अनुसार यह गाँव करनाल जिलेमें पानीपतसे कुछ दूर यमुनाके किनारे है। देहलीसे १५ मीलके फासलेपर।

बरौली—मेरठ, शाहपुरके नजदीक गाँव।

पाटलीपुर—पाटलिपुत्र या पटना (?)

मेरठि, मेरठिपुर—मेरठ, यू. पी. का प्रसिद्ध शहर।

रोहतगपुर—रोहतक (पूर्वीय पंजाबका जिला)।

रौनाही—नौराई (रत्नपुरी)। धर्मनाथ तीर्थंकरका जन्मस्थान। अयोध्याके पास सोहावल स्टेशनसे एक मील। यहाँ अब दो श्वेताम्बर और तीन दिगम्बर सम्प्रदायके जैन मन्दिर हैं।

सकरौठ—फतेहपुरके पास दो मीलकी दूरीपर।

सलिमनपुर—कुछ वर्षोंसे ईस्टर्न रेलवेकी इलाहाबाद रायबरेली लाइनमें [illegible] नामका स्टेशन ही सलिमनपुर है।

सांगानेर—जयपुरके समीप ७ मीलपर।

सादिजादपुर—जहानाबाद जिलेमें गंगाके किनारे, हसनगरके पास। श्रीसौभाग्यविजयरचित तीर्थमालामें भी इसका उल्लेख है। वे वहाँपर गये थे—

चन्द्रसे बहुत पहले हुए हैं। बृहत् खरतर गच्छके इन अभयधर्म उपाध्यायका स्वर्गवास १६९२ के लगभग हुआ है।

स्व० पूरनचन्द्र नाहरके लेखसंग्रह (नं० १७१ और २११) में संवत् १६८१ और १६८८ की प्रतिष्ठा की हुई चरणपादुकायें हैं, जो संभवतः भानुचन्द्रके गुरु अभयधर्मकी ही हैं।

अर्धकथानकमें अभयधर्म उपाध्यायका अपने दो शिष्यों—भानुचन्द्र और रामचन्द्र—के साथ जौनपुरमें आनेका उल्लेख है जिनमें भानुचन्द्रको विशेष चतुर कहा गया है। इन्हींके पास १६५० में बनारसीदासजीने विद्या पढ़ना शुरू किया था। इसके आगे कहींपर उनके साथ साक्षात् होनेका ज़िक्र नहीं है परन्तु अपनी रचनाओंमें वे बराबर उनका उल्लेख करते रहे हैं। संवत् १६९३ में नाटकसमयसारकी भाषा करनेके प्रसंगमें भी उन्होंने अपनेको 'भानके सीस' कहा है। भानुचन्द्रके सम्बन्धमें इससे अधिक और कुछ पता न लगा, उनकी या उनके गुरुकी कोई रचना भी नहीं मिली।

नाममाला, बनारसीविलास और अर्धकथानकमें भी बनारसीदासजीने अपने गुरुका भक्तिपूर्वक उल्लेख किया है।

पांडे राजमल्ल

बनारसीदासजीने समयसार नाटकमें लिखा है—

पांडे राजमल्ल जिनधर्मी, समयसार नाटकके मरमी।
तिन गिरंथकी टीका कीनी बालबोध सुगम कर दीनी॥ २१॥

इसी बालबोध टीकाका उल्लेख अर्धकथानकमें भी किया है (५९२-९४) कि वि० सं० १६८४ में अध्यात्म-चर्चाके प्रेमी अरथमल ढोर मिले और उन्होंने समयसार नाटककी राजमल्लकृत टीका दी और कहा कि तुम इसे पढ़ो,

---

१—खरतर अभैधरम उवझाइ, दोइ सिष्यजुत प्रगटे आइ॥ १७३
भानचंद मुनि चतुरविसेष रामचंद बालक गृहभेष॥ १७४
भानचंदसौं भयो सनेह दिन पोसाल रहै निसि गेह॥ १७५
भानचंदपै विद्या सिखै

२—सोलहसै तिरानवे बर्ष समैसार नाटक धरि हर्ष॥ ३१८
भाषा कियो भानके सीस, कवित सातसै सत्ताईस॥

३—सम्बन्धित व्यक्तियोंका परिचय

मुनि भानुचन्द्र

इनका बनारसीदासजीने भान, भानु, भानु-सुगुरु रविचन्द्र और भानुचन्द्र नामसे अनेक स्थानोंमें उल्लेख किया है। ये श्वेताम्बर खरतरगच्छके जिनप्रभसूरिके अन्वयमें हुए हैं। इनके गुरुका नाम अभयधर्म उपाध्याय था।

अभयधर्म नामके एक और भी मुनि इसी खरतर गच्छमें हो गये हैं जिनके शिष्य कुशललाभ थे। कुशललाभने वि. सं. १६२४ में खम्भात (गुजरात) में रहते समय तेजसार रास की रचना की थी। इनका विहार मारवाड़में अधिक होता रहा है और ये निश्चय ही बनारसीदासजीके गुरु भानु-

१—गौतम-गणधर-पद नमौं, सुमरि सुगुरु 'रविचंद'।
सरसुति देवि प्रणाम करि, गाऊं अजित जिनिंद ॥—बनारसीविलास १११
'भानु' उदय दिनके समै, चंद्र उदय निसि होत,
दोऊ जाके नाममें सो गुरु सदा उदोत ॥ —ब. वि. १४१
इति प्रश्नोत्तर मालिका, उदय-धरि-संवाद।
भाषा कहत बनारसी भानुसुगुरु परसाद ॥ —ब. वि. पृ. १८८
ऐसौ बारहमासिनि भो गुरु भान।
प्रभु महिमा परमारथ करौ बखान ॥ —ब. वि. पृ. २१८
ओंकार परनाम करि, भानु सुगुरु धरि चित्त।
रचौं सुगम नाममाला, एक त्रिलोकनिमित्त ॥ १
जे नर राखैं कंठ निज, होय सुमति परगास।
'भानु' सुगुरु परसादतैं, परमानन्द विलास ॥—नाममाला

२—खरतरगच्छ शाखा: जिनप्रभसूरिखरतरगच्छ शाखा।
—युक्तिप्रबोध टि. स्वोपज्ञ टीका

३—श्रीमत्खरतराधिप जयि गुरुराज गुरुश्रीअभयधर्मउवझाय।
तेहतणे पउशीशिमसार श्रीखेमपुर नयरमझार ॥ २
भणियरई जिनपूजाअधिकार वाचक कुशललाभ इमि सार।
—आनन्दकाव्यमहोदधि सप्तममौक्तिक भूमिका पृ. १६६

अलंकार आदिसे सुसज्जित अध्यात्मशास्त्रकी अति सुन्दर रचना करके जैन वाङ्मयके गौरवको वृद्धिगत किया है।[१]

अथात् राजमल्ल अमृतचन्द्रके नाटकसमयसारके मर्मज्ञ थे और इस लिए वे ही इस कलशटीकाके कर्ता मालूम होते हैं। बहुत संभव है कि अध्यात्म-कमलमार्तण्डके रचनाकाल १६४४ के लगभग ही उक्त टीका लिखी गई हो।

वि. सं. १६८० में अरथमल ढोरने इस टीकाकी पोथी बनारसीदासजीको दी थी, और यह समय राजमल्लजीके ग्रन्थोंके रचनाकाल १६१२, १६४१ और १६४४ के साथ बेमेल नहीं जान पड़ता।

भारमल्लजी संघपा गोत्रके श्रीमाल वणिक थे जिनको प्रसन्न करनेके लिए राजमल्लजीने छन्दोविद्याकी रचना की और बनारसीदासजी तथा अरथमलजी भी श्रीमाल थे। इनके सिवाय आगरा, वैराट आदिमें राजमल्लजीका आना जाना रहता था।

वे एक काष्ठासंघी भट्टारकके शिष्य थे। एक एक भट्टारकके अनेकों शिष्य होते थे जो अपनी आम्नायके श्रावकोंको धर्म-बोध देनेके लिए भ्रमण करते रहते थे। ये पंडित कहलाते थे और इन्हींमेंसे गद्दीके उत्तराधिकारी चुने जाते थे। राजमल्ल इसी तरहके पंडित जान पड़ते हैं।

इनके ग्रन्थोंमें भट्टारकोंकी और उनके अनुयायी धनी श्रावकोंकी लम्बी-लम्बी प्रशस्तियाँ हैं परन्तु इन्होंने स्वयं अपना कोई परिचय नहीं दिया कि किस जाति या कुलके थे, सिर्फ इतना लिखा है कि काष्ठासंघके भट्टारक हेमचन्द्रकी आम्नायके थे। भट्टारकोंके शिष्य हो जानेपर कुल जाति बतलानेकी कोई जरूरत ही नहीं रहती। इनके ग्रन्थोंसे यह परिचय अवश्य मिलता है कि ये बहुत बड़े विद्वान् कवि और

१—ब्र. शीतलप्रसादजीने सन् १९११ में इस टीकाको भाषा समयसार नाटक पद्य और अपना भावार्थ देकर प्रकाशित कराया था। इसमें ग्रन्थकर्ताकी कोई प्रशस्ति नहीं है और न रचनाकाल ही दिया है। जयपुरके भंडारोंमें इसकी कई प्रतियाँ हैं, उनमेंसे एक सं. १७४३ की और दूसरी सं. १७०८ की लिखी है। परंतु किसी प्रतिमें प्रशस्ति या रचना-काल नहीं दिया है। श्री अगरचन्दजी नाहटाने मुझे बताया कि उन्होंने एक प्रति सं. १६९० की लिखी देखी थी।

इससे सब भया है जो तुम्हारी समझमें आ जायगा। इनकी समझमें ये राजमल्ल वही हैं, जो जम्बूस्वामीचरित, लाटी-संहिता, अध्यात्मकमलमार्तण्ड, छन्दोविद्या (पिंगल) और पञ्चाध्यायी (अपूर्ण) के कर्ता हैं। छन्दोविद्याको छोड़कर इनके शेष सब ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

जम्बूस्वामीचरितका रचनाकाल १६३२, लाटीसंहिताका १६४१ और अध्यात्मकमलमार्तण्डका १६४४ है। छन्दोविद्याका रचनाकाल मालूम नहीं हुआ पर यह अकबरके समयमें नागौरके महान् धनी राजा भारमल्ल श्रीमालको प्रसन्न करनेके लिए लिखा गया था। पञ्चाध्यायी चूँकि उनकी अपूर्ण रचना है, अतएव यह उनकी अन्तिम रचना जान पड़ती है। अरथमलने नाटक समयसारकी बालबोध टीका (भाषा) सं० १६८ में बनारसीदासजीको दी थी। अतएव यह पंचाध्यायीसे कुछ पहले ही बन गई होगी।

जम्बूस्वामीचरितकी रचना अग्रवालवंशी साहु टोडरकी प्रार्थनापर मथुरा या आगरेमें, लाटीसंहिता साहु फामनके लिए वैराट नगरमें और छन्दोविद्या महान् धनी राजा भारमल्ल श्रीमालके लिए शायद नागौरमें हुई। अध्यात्मकमलमार्तण्ड और पंचाध्यायी ये दो ग्रन्थ किसीके लिए नहीं, आत्मरुचिके लिए लिखे जान पड़ते हैं।

अध्यात्मकमलमार्तण्ड १९ पद्योंका छोटासा ग्रन्थ है जिसके पहले परिच्छेदमें मोक्ष और मोक्षमार्गका लक्षण, दूसरेमें द्रव्यसामान्य, तीसरेमें द्रव्यविशेष और चौथेमें सात तत्त्व नव पदार्थोंका वर्णन है और इसके पठनसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होना बतलाया है। डा० जगदीशचन्द्रजीने जम्बूस्वामीचरितकी प्रस्तावनामें लिखा है कि "अमृतचन्द्रसूरिके आत्मख्याति-समयसारकी तरह इसके आदिमें भी चिदात्मभावको नमस्कार करके लेखक तत्त्वकी प्राप्तिके लिए कविने अपने ही मोहनीय कर्मके नाशके लिए इस ग्रन्थकी रचना की है और उसमें कुन्दकुन्द आचार्य और अमृतचन्द्रको स्मरण किया है। कविने इस छोटेसे ग्रन्थमें आत्मख्यातिके ढंगपर अनेक छन्द

१-२-३—माणिकचन्द्र-जैनग्रन्थमाला, बम्बई द्वारा प्रकाशित।
४—सेठ नाथारंगजी गाँधी कोल्हापुर द्वारा प्रकाशित।
५—देखो, अनेकान्त वर्ष ४ अंक २-४ में राजमल्लका पिंगल।

पाण्डे रूपचन्द और प० रूपचन्द

बनारसीदासने अपने नाटक समयसारमें उन पाँच साथियोंका उल्लेख किया है जिनके साथ बैठकर वे परमार्थकी चर्चा किया करते थे — पंडित रूपचंद, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुँवरपाल और धर्मदास। इनमें सबसे पहले पंडित रूपचंद हैं।

अर्धकथानकमें एक और रूपचन्द गुनीका उल्लेख है जो संवत् १६९२ के लगभग आगरेमें तिहुना साहुके मन्दिरमें आकर ठहरे थे और सब अध्यात्मियोंने जिनसे गोम्मटसार ग्रन्थ बँचाया। ये पूर्वोक्त पाँच साथियोंमेंके पं० रूपचन्दसे पृथक् हैं और इन्हें 'पाण्डे' तथा 'गुनी' कहा है।

इन रूपचन्दकी पाण्डे पदवीसे अनुमान होता है कि ये भी किसी भट्टारकके शिष्य थे। गोम्मटसार सिद्धान्तके सिवाय अध्यात्मके भी वे मर्मज्ञ होंगे और इसीलिए उनके उपदेशसे बनारसीदासकी डाँवाडोल अवस्थामें सुस्थिरता आई थी। इनकी कोई रचना अब तक नहीं मिली। पाण्डे हेमराजने पंचास्तिकायकी बालावबोधिकाके अन्तमें एक रूपचन्दका गुरु रूपसे स्मरण किया है — "यह (ग्रन्थ) श्री रूपचन्द गुरुके प्रसादसे पाण्डे हेमराजने अपनी बुद्धि माफिक लिखत कीना।" इस टीकाका रचनाकाल सं० १७२१ है।

नाटक समयसारकी समाप्ति सं० १६९३ की आश्विन सुदी १३ रविवारको हुई है जिसमें पं० रूपचन्द आदि पाँच साथियोंकी परमार्थचर्चाका उल्लेख है जब कि पाण्डे रूपचन्दका स्वर्गवास इससे पहले ही हो चुका था। इसलिए दोनों रूपचन्द भिन्न भिन्न व्यक्ति थे, इसमें कोई सन्देह न रहना चाहिए।

साथी रूपचन्द भी बनारसीदास जैसे ही अध्यात्मरसिक सुकवि थे। श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा भेजे हुए पुराने दो गुटकोंमें रूपचन्दकी 'दोहा शतक

१—देखो, नाटक समयसारके अन्तिम अध्यायके पद्य २६-१

२—अर्धकथानक पद्य ६३०–३५।

३—यह गुटका बनारसीदासके एकनिष्ठ मित्र कुँवरपालके हाथका सं० १६८४-८५ का लिखा हुआ है। इसमें अध्यात्मकी और दूसरी कई पुरानी रचनाएँ संग्रह की गई हैं।

मर्मज्ञ थे। उनकी गुरुपरम्परामें भी शायद उनकी जोड़का कोई विद्वान् नहीं था। अध्यात्म-रसनके प्रभावसे उनमें उदार मतसहिष्णुता भी थी। भारमलजी नागौरी तपागच्छके भट्टारक अनुयायी थे फिर भी इन्होंने कुछ शब्दोंमें उनकी प्रशंसा की है।

स्व. ब्र. शीतलप्रसादजीने समयसारके कलशोंकी राजमल्लीय टीकाकी प्रस्तावनामें अनेक प्रमाण देकर बतलाया है कि पंचाध्यायीके कर्ता और समयसार टीकाके कर्ता एक ही हैं। पंचाध्यायीमें कहा है—

स्पर्शरसगन्धवर्णा लक्षणभिन्ना यथा रसाद्यन्ते।
कथमपि हि पृथक्कर्तुं न तथा शक्यास्त्वखण्डदेशत्वात्॥ ८१॥

और कलशोंकी टीकामें यही बात यों कही है—

"—यथा एक आम्रफल स्पर्श रस गन्ध वर्ण विराजमान पुद्गलको पिंड छे तिहितैं स्पर्शमात्रके विचारतां स्पर्शमात्र छे, रसमात्रके विचारतां रसमात्र है, गंधमात्रके विचारतां गंधमात्र छे, वर्णमात्रके विचारतां वर्णमात्र छे, तथा एक जीववस्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विराजमानि छे तिहितैं द्रव्यरूप विचारतां द्रव्यमात्र छे, क्षेत्ररूप विचारतां क्षेत्रमात्र छे, भावरूप विचारतां भावमात्र छे, तिहितैं इसो कह्यो जो वस्तु सो अखंडित है। अखंडित शब्दको इसो अर्थ छे।"

पाण्डे राजमल्लजीने अपनेको काष्ठासंघके भट्टारक हेमचन्द्रकी आम्नायका बतलाया है और उनके समयमें क्षेमकीर्ति भट्टारक विद्यमान थे जिनकी प्रशंसा लाटीसंहिताकी प्रशस्तिमें की गई है और शायद ये उन्हींके शिष्योंमेंसे एक थे और इसीसे पाण्डे कहलाते थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ आगरा, वैराट और नागौर आदि नगरोंमें रहते हुए रचे हैं।

समयसारकलशोंकी राजमल्लीय टीका उस समयकी जयपुर आगरा आदिकी गद्य भाषाका नमूना है। 'बनारसीविलास' के परिशिष्टमें हमने उसके कुछ अंश दे दिये हैं।

---

१ तस्योऽस्त्यधुना तत्पदनिरतः श्रीक्षेमकीर्तिर्मुनिः,
हिंसादेषविचारचारमहसे भट्टारकोऽप्यग्रिमाम्।
यस्य भोरणपारणादिकमये पादौरभिमूर्च्छते—
बालाग्रेण विपाति मौनमहसा नाम्नाम्यपूर्वां स्वयम्॥ —लाटीसंहिता

बहुत ही सुन्दर गीत हैं।' उनकी 'अध्यात्म सवैया' नामक रचनाका परिचय अभी हाल ही पं० परमानन्द शास्त्री एम० ए० ने अनेकान्तमें दिया है²। इसमें सब मिलाकर १०१ इकतीसा तेईसा सवैया हैं, अर्थात् यह भी एक शतक है। नमूनेके तौरपर इसका एक पद्य दिया जाता है—

अनुभौ अभ्यासमैं निवास सुध चेतनकौ,
अनुभौसरूप सुध बोधको प्रकास है।
अनुभौ अनूप उपरहत अनन्त ग्यान,
अनुभौ अनीत त्याग ग्यान सुखरास है॥
अनुभौ अपार सार आपहीको आप जानै,
आपहीमैं व्याप्त दीस जामैं जड़ नास है।
अनुभौ अरूप है सरूप चिदानन्द चन्द
अनुभौ अतीत आठकर्मसौं अकास है॥

इनके सिवाय मंगलगीतप्रबन्ध (पंचमंगल) कर्मोपदेशगीत और नेमिनाथरासा नामकी तीन रचनायें और भी रूपचन्द्रकी मिलती हैं। इनमेंसे नेमिनाथ रासा और पंचमंगलका छन्दसाम्य और उपमासाम्य दोनोंको एक ही कर्त्ताकी रचना माननेका संकेत देते हैं और कर्तृत्वना गीतकी भी दो पंक्तियाँ पंचमंगलकी पंक्तियोंसे मिलती जुलती हैं—

सोरठ देस सुहावनो, पुहुमी पुर परसिद्ध।
रस गोरस परिपूरनु, धन-जन-कनकसमिद्ध॥
रूपचन्द जन वीनवै हौं चरननिकौ दासु।
मैं इहलोक सुहावना, विरच्यौ किंचित रासु॥

१—इनके दश गीत जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय द्वारा 'परमार्थ जकडी-संग्रह' में प्रकाशित किये गये थे। बृहज्जिनवाणीसंग्रहमें भी इनके १ गीत संग्रह किये गये हैं।

२—देखो, अनेकान्त वर्ष १४, अंक १ में 'हिन्दीके नये साहित्यकी खोज' शीर्षक लेख।

३—यह पंचमंगल नामसे घर घर पढ़ा जाता है।

४-५—पं० परमानन्दजी शास्त्रीने जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रहमें इन रचनाओंकी सूचना दी है।

आदि रचनामें संग्रहीत हैं। दूसरे गुटकेके दोहरा शतकके अन्तमें लिखा है—

" रूपचंद सद्गुरुनिकी जन बलिहारी जाइ ॥
आपुन पै सिवपुर गए, भव्यनि पंथ दिखाइ ॥
इतिश्री रूपचन्द्रयोगीकृत दोहरा शतक समाप्त।"

इनका चौथी पद रूपचन्दके अध्यात्मी होनेका प्रमाण है। यह शतक कहीं कहीं परमार्थी दोहाशतक के नामसे मिलता है। इस सुन्दर रचनाके तीन दोहे देखिए—

चेतन चित-परिचय बिना, जप तप सबै निरत्थ।
कन बिन तुस जिमि फटकतैं, आवै किछू न हत्थ॥
चेतनसौं परचै नहीं कहा भए ब्रतधारि।
सालि बिहूने खेतकी वृथा बनावति बारि॥
बिना तत्त्व परचै बिना, अपर भाव अभिराम।
ताम और रस रुचत है, अमृत न चाख्यौ जाम॥

श्री अगरचन्दजी नाहटाके भेजे हुए पहले गुटकेमें जो कैंरपालके हाथका लिखा हुआ है रूपचन्दका एक सुन्दर पद दिया हुआ है—

प्रभु तेरी परम विचित्र मनोहर मूरति रूप बनी।
अंग अंगकी अनुपम सोभा, बरनि न सकत फनी॥
सकल विकार रहित बिनु अंबर, सुंदर सुभ करनी।
निराभरन भासुर छबि सोहत कोटि तरुन तरनी॥
बसुरसरहित सांत रस राजत, खलि इहि साधुपनी।
जातिविरोधि जंतु जिहि देखत तजत प्रकृति अपनी॥
दरिसनु दुरित हरै चिर संचित्त, सुर-नर-फनि मुहनी।
रूपचन्द कहा कहौं महिमा, त्रिभुवन-मुकुट-मनी॥

रूपचन्दजी एक रचना 'गीत परमार्थी' है जिसमें परमार्थ या अध्यात्मके

१—यह गुटका स्वयं कैंरपालका लिखा हुआ तो नहीं है, पर उनके पढ़नेके लिए लिखा गया था, सं० १७०४ के आसपास।

२—इसे हम जैनहितैषी भाग ६ अंक ५–६ में बहुत समय पहले प्रकाशित कर चुके हैं।

बहुत ही सुन्दर गीत हैं ।[1] उनकी 'अध्यात्म सवैया' नामक रचनाका परिचय अभी हाल ही पं. कस्तूरचन्द शास्त्री एम. ए. ने अनेकान्तमें दिया है[2] । इसमें कुल मिलाकर १०१ इकतीसा तेईसा सवैया हैं; अर्थात् यह भी एक शतक है। नमूनेके तौरपर उसमेंका एक पद्य दिया जाता है —

अनुभौ अभ्यासमें निवास सुध चेतनको
  अनुभौस्वरूप सुध बोधको प्रकास है ।
अनुभौ अनूप उपरहत अनंत ग्यान,
  अनुभौ अनीत त्याग ग्यान सुखरास है ॥
अनुभौ अपार सार आपहीको आप जाने,
  आपहीमें व्याप्त दीसे जामें जड़ नास है ।
अनुभौ अरूप है सरूप चिदानंद चंद
  अनुभौ अतीत आठकर्मसौं अकास है ॥

इनके सिवाय मंगलगीतप्रबन्ध (पंचमंगल)[3] खटोलनागीत और नेमिनाथरासा नामकी तीन रचनाएँ और भी रूपचन्दकी मिलती हैं । इनमेंसे नेमिनाथ रासा और पंचमंगलका छन्दसाम्य और उपमासाम्य दोनोंको एक ही कर्त्ताकी रचना माननेका संकेत देते हैं और खटोलना गीतकी भी दो पंक्तियाँ पंचमंगलकी पंक्तियोंसे मिलती जुलती हैं—

सोरठ देस सुहावनो पुहुमी पुर परसिद्ध ।
रस गोरस परिपूरनु, धन-जन-कनकसमिद्ध ॥
रूपचन्द जन कीनवे हौं चरननिको दासु ।
मैं इकठोर सुहावनो, विरच्यौ किंचित रासु ॥

१—इनके छह गीत जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय द्वारा परमार्थ जकड़ी-संग्रह में प्रकाशित किये गये थे। बृहज्जिनवाणीसंग्रहमें भी इनके १ गीत संग्रह किये गये हैं ।

२—देखो, अनेकान्त वर्ष १४ अंक १ में 'हिन्दीके नये साहित्यकी खोज' शीर्षक लेख ।

३—यह पंचमङ्गल नामसे घर घर पढ़ा जाता है ।

४-५—पं. परमानंदजी शास्त्रीने जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रहमें इन रचनाओंकी सूचना दी है ।

जो यह सुरपद गावहिं चित दै सुनहिं सु कान।
मनवांछित फल पावहीं ते नर नारि सुजान ॥ ५

पंचमंगल

१—पणविवि पंच परमगुरु जो जिनसासन—आदि
२—जो नर सुनहिं बखानहिं सुर नर गावहीं,
मनवांछित फल सो नर निहचै पावहीं। आदि
३—मयनरहित मूषोदर-अंबर जारिसो
किमपि हीन निज तनुतें भयो प्रभु तारिसो ॥

नेमिनाथ रासा

पणविवि पंच परम गुरु, मनवचकाय तिसुद्धि।
नेमिनाथ गुन गावउ, उपजै निर्मल बुद्धि ॥

खटोलना गीत

सिद्ध सदा जहाँ निवसहीं, चरम शरीर प्रमान।
किंचिदून मयनोज्झित, मूस गगन समान ॥

इस तरह ये तीनों रचनाएँ एक ही कविकी मालूम होती हैं।

एक और प० रूपचन्द

इस नामके एक और विद्वान् उसी समय हुए हैं जिनके समवसरणपाठ या केवलज्ञान-कल्याणार्चा नामक संस्कृत ग्रंथकी प्रशस्ति 'जैनग्रंथप्रशस्ति-संग्रह' (नं० १०७) में प्रकाशित हुई है। उससे मालूम होता है कि कुरु देशके सलेमपुरमें गर्गगोत्री अग्रवाल मामटके पुत्र भगवानदासके पाँच पुत्रोंमेंसे सबसे छोटे रूपचन्द थे जो निरालस थे, जैनसिद्धान्तवेत्ता थे। उसी समय भट्टारक जगद्भूषणकी आम्नायमें गोलापूरब वंशके संघपति भगवानदास हुए जिन्होंने जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायी और उन्हींकी प्रेरणासे रूपचन्दने उक्त समवसरणपाठकी रचना की।[१] संघपति भगवानदासकी उन्होंने निस्सीम प्रशंसा की

१—यह प्रशस्ति बहुत ही अशुद्ध और अस्पष्ट है। जगह जगह प्रश्नांक दिये हैं, जिनके कारण पूरा अर्थ स्पष्ट नहीं होता। इसकी मूल प्रति कहाँ किस भंडारमें है और प्रति लिपिका समय क्या है सो भी नहीं बतलाया गया।

है। उन्हें भरतेश्वर, मेघाच्छ राजा, छत्र, आदि न जाने क्या क्या बना दिया है। वे रूपचन्द्र ज्योतिषविधानअभ्यासके लिए वाराणसी गये थे और वहाँ पाणिनि व्याकरण, षड्दर्शन आदि पढ़कर वहाँसे दरियापुर आ गये थे। शायद सेठ भगवानदासकी सहायतासे ही वे बनारस गये थे। शाहजहाँके राज्यमें संवत् १६९२ में समवसरणपाठकी रचना हुई।

पं० परमानंदजीने इस पाठके कर्ताको ही बनारसीदासका गुरु और दोहरा-शतक आदि हिन्दी कविताओंका कर्ता बतलानेका प्रयत्न किया है। परन्तु समवसरणपाठ सं० १६९२ में रचा गया है और रूपचन्द्र पंडितकी मृत्यु इसके दो वर्ष बाद १६९४ के लगभग हो चुकी थी। सम्भावनाओंके सिवाय और कोई प्रमाण दोनोंकी एकता सिद्ध करनेके लिए नहीं दिया गया। वे हिन्दीके भी कवि थे इसका कोई सबूत नहीं मिलता। इस ग्रन्थके सिवाय और भी कोई रचना उनकी है, यह अभीतक नहीं मालूम हुआ। उनके आगरे आनेका भी कोई उल्लेख नहीं है। इसके सिवाय वे पांडे भी नहीं थे।

मुनि रूपचन्द्र

बनारसीदासकृत नाटक समयसारकी भाषाटीकाके कर्ताका भी नाम रूपचन्द है परन्तु ये न तो वे रूपचन्द्र हैं जिन्हें अर्धकथानकमें 'गुरु' और 'पाण्डे' कहा है और न परमार्थी दोहाशतक आदिके कर्ता रूपचन्द्र, जो बनारसीदासके साथी पंच पुरुषोंमेंसे एक थे। इन्होंने अपनी उक्त भाषाटीका नाटक समयसारकी रचनाके कोई सौ वर्ष बाद संवत् १७७२ में बनाकर समाप्त की थी इसलिए केवल नाम-साम्यके कारण कोई इन्हें बनारसीदासका गुरु या साथी समझनेके भ्रममें नहीं पड़ सकता।

१—ब्र० नन्दलाल दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला भिण्ड (ग्वालियर) द्वारा प्रकाशित।

२—इस टीकाकी प्रस्तावना प्रोफेसर पं० हम्मनलाल शास्त्रीजीने लिखी है और उसमें उन्होंने रूपचन्द्रको बनारसीदासका गुरु बतलाया है। (अर्थात् गुरुने शिष्यके ग्रन्थपर टीका लिखी!) टीकाके अन्तमें छपी हुई प्रशस्ति आदि देखनेका कष्ट न तो शास्त्रीजीने उठाया और न ब्र० नन्दलालजीने। और भी कुछ लेखकोंने इन रूपचन्द्रको बनारसीदासका गुरु बतलानेमें ही अधिक लाभ समझा है।

जब (१९४१ में) 'अर्धकथानक' का पहला संस्करण प्रकाशित हुआ था, तब तक हमें यह टीका प्राप्त नहीं हुई थी। सन् १८७६ में स० भीमसी माणिकने इस टीकाके आधारसे नाटक समयसारकी जो गुजराती टीका प्रकाशित की थी, उसके प्रारम्भमें लिखा है कि इस ग्रन्थकी व्याख्या रूपचन्द नामक किसी पंडितने की है जो हिन्दुस्थानी भाषामें होनेसे सबकी समझमें नहीं आ सकती। इसलिए उसका आश्रय लेकर हमने गुजरातीमें व्याख्या की है। इस गुजराती व्याख्याको हमने देखा था परन्तु उससे हम टीकाकारके सम्बन्धमें विशेष कुछ न जान सके थे, इसलिए हमने अनुमान किया था कि यह टीका बनारसीदासके साथी रूपचन्दकी होगी। परन्तु अब यह टीका प्रकाशित हो चुकी है[1] और उससे बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि इसके कर्ता रूपचन्द्र खरतरगच्छकी क्षेम शाखाके श्वेताम्बर साधु थे।

इसकी प्रशस्तिमें उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—मुनि शान्तिहर्ष-जिनहर्ष-सुखवर्धन-दयासिंह और दयासिंहके शिष्य मुनि रूपचन्द्र। इनका जन्म ओसवालिया गोत्रके ओसवाल वंशमें पाली (मारवाड़) में संवत् १७४४ में हुआ और स्वर्गवास संवत् १८३४ में। इस तरह उन्होंने ९० वर्षका दीर्घजीवन प्राप्त किया। उनकी पहली रचना (समुद्रबद्ध कवित्त) संवत् १७६७की और अन्तिम १८२१ की है। संस्कृत और राजस्थानीमें भी अगरचन्दजी नाहटाको इनके लगभग ४ ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। उनमें ज्योतिष वैद्यक काव्य, कोषग्रन्थोंकी राजस्थानी और हिन्दी टीकायें आदि हैं।

रूपचन्दजीकी यह टीका वि सं १७९२ आश्विन वदी १ सोमवारको सोनगिरिपुरमें समाप्त हुई और गणधरगोत्रीय मोदी जगजीवनजीके समझानेके लिए इसका निर्माण किया गया। सोनगिरिपुरके राजाने मोदीजीका पद देकर फतेहचन्दजीका सम्मान बढ़ाया था और जगजीवन इन्हीं फतेहचंदके पुत्र थे।

१—श्रीक्षेमशाखागुरुवंशपरम्परा मतो च, श्री ओसवंशाधम् [illegible]। श्रीपाठकोत्तमसुखेवर्धनगणि प्रशिष्याः दयसिंहपुरवरे मममरूपसे च। [illegible] च पदके पट्टवरे च, शिष्यत्वमेव च समये गुरु-रूपचन्द्राः। आराधनां च [illegible] विधाय, भाष्ये कृतं नयविर्मलमिव च सुरूपः॥

२—पृथ्वीपति विक्रमके राज मरजाद लीनैं, सत्रहसै बीतेपर बानुआ वरषमैं।

अठारहवीं शताब्दिके उपाध्याय क्षमाकल्याणका एक ग्रन्थ मिलता है जिसकी प्रति बीकानेरके श्वेताम्बर मन्दिरमें है। उसके अनुसार रूपचन्दका जन्म ओसवाल वंशके आंचलिया गोत्रमें मारवाड़के पाली नगरमें हुआ था और स्वर्गवास संवत् १८३४ में ९   वर्षकी अवस्थामें। इस हिसाबसे उनका जन्म १७४४ में हुआ होगा।×

दतिया राज्यके सोनागिरिके कुछ लोगोंने नाटक समयसार टीकाका रचना-स्थान बतलाया है, वो ठीक नहीं है। पाओर खरतरगच्छके साधुओंका केन्द्र रहा है।

इनका 'गौतमीय काव्य' नामका एक संस्कृत काव्य है जो देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्डकी ओरसे प्रकाशित हो चुका है। इससे मालूम होता है कि इनका दूसरा नाम रामविजय था और जोधपुरके राजा अभयसिंह द्वारा वे सम्मानित थे।● जिनलाभसूरिने सं० १८१७ में इन्हें उपाध्यायपद दिया था।

इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि नाटकसमयसारके टीकाकर्त्ता रूपचन्द न तो बनारसीदासजीके गुरु थे न साथी और न समकालिक। वे श्वेताम्बर सम्प्रदायके थे और इस टीकाको ध्यानसे देखनेसे इसकी प्रतीति स्वयं ही हो जाती है। + वे जगह जगह लिखते हैं 'यह कथन दिगम्बर सम्प्रदायका है।" "यह प्ररूपणा दिगम्बर सम्प्रदायकी है।" "ये अठारह दूषण दिगम्बर सम्प्रदायके हैं। अन्य सम्प्रदायमें १८ दोष न्यारे कहे हैं।" ऊपर जो टीकाकी प्रशस्ति दी गई है, *उससे भी स्पष्ट है कि वे श्वेताम्बर खरतरगच्छके साधु थे।*

चतुर्भुज

पंच पुरुषोंमें दूसरा नाम चतुर्भुजका है जो बनारसीकी अध्यात्ममण्डलीके एक सदस्य थे। इनके विषयमें बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी हम और कुछ नहीं जान सके।

× देखो पृष्ठ ९ की पहली टिप्पणी।

● तच्छिष्योऽभयसिंहनामनृपतेः सम्मानितोऽयमहा-
गम्भीरार्थविचारसारनिपुणोऽसौ रूपचन्द्राह्वयः।
प्रख्यातापरनामरामविजयो गच्छाधिपाज्ञापरः
काव्यं कार्यमिमं कवित्वकलया श्रीगौतमीये मुदा॥

भगवतीदास

पंच पुरुषोंमें ये तीसरे हैं। अर्धकथानकके अनुसार ये अध्यात्मज्ञानी बासूशाह ओसवालके पुत्र थे और बनारसीदास उनके यहाँ अपने कुटुम्बसहित कोई छह महीनेतक ठहरे थे। यह संवत् १६५५ की बात है। अभी तक इनकी भी कोई रचना नहीं मिली और न इनके विषयमें और कुछ ज्ञात हुआ। पं. हीरानन्दजीने अवश्य ही अपने पद्यबद्ध पंचास्तिकाय (वि. सं. १७११) एक 'भगौतीदास भाया'का उल्लेख किया है और उक्त पंचपुरुषोंमेंके भगवतीदास ही पं. हीरानन्दके अभिप्रेत मालूम होते हैं। ब्रह्मविलासके कर्ता भैया भगवतीदास भी आगरेके रहनेवाले कटारियागोत्रके ओसवाल थे। परन्तु ये कोई और ही मालूम होते हैं। क्योंकि ब्रह्मविलासमें उनकी जितनी रचनायें संग्रहीत हैं वे संवत् १७११ से १७५५ तक की हैं और नाटक समयसारकी रचना सं. १६९३ में हुई है जिसमें बनारसीदासके साथ परमार्थकी चर्चा करनेवाले भगवतीदासका नाम गिनाया है। उस समय उनकी उम्र ५५-६० से कम न होगी। क्योंकि बनारसीदास उनके घर सं. १६५५ में जाकर ठहरे थे। ब्रह्मविलासकी रचनायें सं. १७२५ तक की हैं, अतएव तब तक बासूशाहके पुत्र भगवतीदासके जीवित रहनेकी बात असम्भवसी होगी।

कुँअरपाल

अभी तक हम इतना ही जानते थे कि सोमप्रभकी सूक्तिमुक्तावलीका पद्यानुवाद बनारसीदासने कुँअरपालके साथ मिलकर किया था और बनारसीविलासमें संग्रहीत ज्ञान-बावनीमें भी कुँअरपालका उल्लेख है। बनारसीदासने इन्हें अपना परम मित्र बतलाया है और महोपाध्याय मेघविजयने युक्तिप्रबोधमें लिखा है कि बनारसीदासके परलोकगत होनेपर कुँअरपालने उनके

१—तहाँ भगौतीदास है भाया पनमल और मुरारि विराम।

२—बासूसाह अध्यातमवान। ताके पुत्र तिनकी संतान।
बड़ पुत्र भगौतीदास, तिन दीनों मिलवौं थान।
तिन हितसौं दीनो थान, सहित कुटुंब बनारसिदास ॥ [illegible]

मतको धारण किया और वे उनके अनुयायियोंमें गुरुके समान सर्वमान्य हो गये।

पर इधर उनके विषयमें कुछ और प्रकाश पड़ा है। एक तो पाण्डे हेमराजने अपनी दो रचनाओंमें कुँअरपाल ज्ञाताका उल्लेख किया है। 'सितपट चौरासी बोल' में लिखा है—

> नगर आगरेमें बसै, कौंरपाल सग्यान।
> तिस निमित्त कवि हेमनें, कियउ कवित्त परवान॥

और प्रवचनसारकी बालबोध-टीकामें लिखा है—

> बालबोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुणहु कहूँ मैं तैसे।
> नगर आगरेमें हितकारी कौंरपाल ज्ञाता अविकारी॥ ४॥
> तिनि विचारि जियमें यह कीनी जो भाषा यह होइ नवीनी।
> अलपबुधी भी अरथ बखानै अगम अगोचर पद पहिचानै॥ ५॥
> यह विचार मनमें तिनि राखी, पांडे हेमराजसौं भाखी।
> आगै राजमल्लनें कीनी समयसार भाषारसलीनी॥ ६॥
> अब जो प्रवचनकी है भाषा, सो जिनधर्म बढ़ै सो साखा।
> सत्रहसै नव ओतरे, माघ मास सितपाख।
> पंचमि आदितवारकौं, पूरन कीनी भाख॥

इससे मालूम होता है कि सं० १७०९ में कुँअरपाल आगरेमें अविकारी ज्ञाता समझे जाते थे और उन्होंने राजमल्लजीकी बालबोधिनी टीकाके ढंगकी प्रवचनसारकी भी टीका लिखानेका यह प्रयत्न किया था।

श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा भेजे हुए दो पुराने गुटकोंमेंसे एक गुटका सं० १६८४-८५ में स्वयं कुँअरपालके हाथका लिखा हुआ है और उसमें स्वयं

१— चौरासी बोल में रचनाका समय नहीं दिया है, परन्तु मेरी एक नोट-पोथीमें संवत् १७०७ दिया हुआ है।

२—आनन्दघनके पद, सुन्दरदास मतार्थीका, कुण्डल सवैया, और बहुतसी रचनाओंके बाद लिखा है—"सं० १६८४ आषाढ़ सु० ८ कौरा अमरसीका पोरवाल श्री आगरामध्ये स्वयं पठनार्थं।" तत्त्वार्थके अन्तमें लिखा है—"सं० १६८५ सावन सुदि ८ लि० कौरा।" योगसारके अन्तमें सं० १६८५ आसोज वदी ११ लिखे। लि० कंवरा स्वयं पठनार्थं।"

उनकी भी कई रचनायें हैं। दूसरा गुटका उनके लिए अन्य लेखकों द्वारा लिखा हुआ है और उसकी कई रचनाओंके नीचे लिखा है—" श्री जैसलमेरमध्ये पुण्य प्रभावक सा कुंअरजी पठनार्थं " " लिखितं श्री जैसलमेरनगरे शुभावक सा कुंअरजी धर्मात्मानः चिरंजीयादिति श्रेयः।" इस गुटकेमें कुँअरपालकी भी 'समकितबत्तीसी' आदि कई रचनाएँ हैं।

समकितबत्तीसीमें ३३ पद्य हैं। क से ज्ञानकर ह तकके एक एक अक्षरसे प्रारंभ होनेवाले प्रत्येक पद्यकी अन्तिम पंक्तिमें 'कँवरपाल' नाम आया है। ३१-३३ वें पद्योंमें कविने अपना परिचय और रचनाकाल दिया है—

सिरिमालि ओसवाल अति उत्तम चोरडिया बिरद बहु धीवर।
घोघीदास वंस गरवत्तन अमरसीह तसु नंद कवीवर॥
पुरि-पुरि कवरपाल जस प्रगट्यो बहु बिध तास धरम करबिवर।
परमदास बरकंवर तथा पनि, बढसागा जिनवर जिम बीवर॥ ३१
गुरु एक आगह एक उत्तिम, भट कम मेवन बख आगर।
तथा गुरु मई वा धहगुनि सोबतीत उमाकल्प नागर॥
तप रवर नखत्र धीरचतम, गुनि हर ध्यान जिके सुखसागर।
ए छत्रम् धारक अति सुन्दर, कवरपाल समझइ नर नागर॥ ३२
हुओ उमाह गुरुस आतम गुनि, उत्तम जिके परम रस भिन्ने।
ध्यांउ सुरती तिम चरति धूप दुद, ध्याता सेरड मन गुन भिन्ने॥
निजबुधि सार विचारि अध्यातम, कविन बतीस भेद कवि किन्ने।
कवरपाल अमरेसतनूभव, अतिहितचित आदर कर लिन्ने॥ ३३

इससे मालूम होता है कि ओसवाल वंशके चोरडिया गोत्रीय घोघीदासके दो पुत्र थे, बड़े अमरसिंह या अमरसी और छोटे बच्चू। बच्चूके पुत्र धरमदास या धरमसी थे और अमरसीके कँवरपाल। कँवरपालका नगर नगरमें यश फैल गया और इन्होंने संवत् १६८० में उक्त समकितबत्तीसीकी रचना की[1]।

अर्धकथानकमें लिखा है कि बच्चू और अमरसी सगे-भाई थे और छोटे भाईके पुत्र (लघुभ्रातृपुत्र) धरमदासके साथमें बनारसीदासने व्यापारका साझा किया था[2]।

१—श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा पदमें संवत् १६८१ अर्थ करते हैं, १६८० संवत् नहीं।

२—देखो, अर्धकथानक पद्य १९ ५। ४।

कुँवरपालके हाथके लिखे हुए गुटकेकी कई रचनाओंके नीचे उनके लिखनेका संवत् १६८४ और ८५ दिया हुआ है और पांडे हेमराजजीने प्रवचनसार टीका सं १७ में उनकी प्रेरणासे ही बनाई थी। उसके बाद वे और कब तक जीवित रहे, इसका पता नहीं।

पहले गुटकेमें चौबीस ठाणाके लिख चुकनेके बाद उन्होंने अपनी दो कविता और दी हैं जिनमें अपना उपनाम 'चेतन कुंवर' दिया है—

करौ जिनप्रतिमा गुणवरणी।
आरंभ उदौ देख मति भूले ए निज मुखकी घरणी॥ करौ॥
वीतरागपदकी दरसावत मुक्ति पंथकी करणी।
सम्यग्दिष्टी नित प्रति ध्यावत, मिथ्यामतकी हरणी॥ १॥
गुणभेदी जे बड़ी पंकज आतम अमरित झरणी।
तिनको कारण मूरख काननिंद, तिनकू मानकी बरणी॥ २॥
रतनागर पउवीसी आरिहत, गुणनिधि गुण अप भरणी।
चेतन कुवर कहै जिन प्रमी, कुमति मई जब भरणी॥ इति॥
बाणी बानै मेघ वीतराग पदकौ कही।
मूढ़ न मानै भेद विमलता करै नहीं॥ १॥
जिनप्रतिमा जिनसम लेखीयइ,
ताकी निमित्त पाय उर अंतर, राग दोष नहि देखीयइ। जिन म ॥ १॥
सम्यगदिष्टी होइ जीव जे, तिण मन ए मति रेखीयइ।
बहु वरतन बाई न तुरमइ, मिथ्यामत सखीयइ। जि० ॥ २॥
जिनवत जिन चेतना आतुर नर नयन मेघ म मेखीयइ
उपशम इया छपवी अनुपम, कर्म कल्प ते लेखीयइ॥ ३॥
वीतराग कारण जिन मानत, उनका जिन ही मेखीयइ।
चेतन कुवर समै निज परिणति, पाप पुन्न हूए लेखीयइ॥

कुँवरपालकी अध्यात्मकी मित्रोंमें प्रधान थे और कवि भी। इससे आशा है, आगरा आदिके भण्डारोंमें उनकी और भी रचनायें मिलेंगी। संवत् १६८४-८५ में वे आगरेमें थे और १७ ९ में भी यह प्रवचनसारटीकाकी रचना हुई है। जान पड़ता है वैसलमेरमें भी वे रहे हैं। शायद वह उनका मूल स्थान होगा और वहाँ आते जाते रहते होंगे। जैसलमेरमें भी संवत् १७ ४ में एक कुण्डल यतिने उनके पढ़नेके लिए संग्रहिणीसूत्र लिखा था।

पीताम्बर

बनारसीविलासमें 'ज्ञान बावनी' नामकी एक कविता संग्रह की गई है, जिसमें ५२ इकतीसा सवैया हैं। इसके प्रत्येक सवैयामें 'बनारसीदास' नाम आया है और इसलिए उसे अन्तमें 'बनारसीनामांकित बावनी' लिखा है। इसके सिवाय प्रत्येक सवैयाका आदि अक्षर वर्णानुक्रमसे रक्खा है। प्रारंभके पाँच पद्योंके आदि अक्षर 'ओं न म सि धं' और आगेके 'अ आ इ ई' आदि हैं। कविता बहुत गूढ़ है और उसमें अध्यात्म शैलीसे बनारसीके गुणोंका कीर्तन किया गया है। इसके कर्ताका नाम पीताम्बर है और यह कुँआर सुदी र सं १६८६ को निर्मित हुई है। आगरेमें कपूरचन्द साहुके मंदिरमें सभा जुड़ी हुई थी जिसमें कँवरपाल आदि भी थे। उसी समय बनारसीदासजीके वचनोंकी चर्चा चली और तब उनके हुक्म से पीताम्बरने ज्ञानबावनी बनाई थी।

'ज्ञानबावनी' के सिवाय कविकी और कोई रचना नहीं मिली और न उनके विषयमें और कुछ ज्ञात हुआ। 'आगरे नगर ताहि भेंटे पुन पायो है' इससे ऐसा जान पड़ता है कि ये कहीं बाहरसे आये थे और आगरेमें बनारसीदाससे उनकी भेंट हुई थी। उस समय बनारसीदासजीकी बहुत ख्याति हो गई थी और सभी लोग उनका बखान करते थे।

सकलंकी सोबो सिरीमाल जिनदास सुन्यो
ताके वंस मूलदास बिरद बढ़ायो है।
ताके वंस लिछिमें प्रगट भयो खरगसेन
बनारसीदास ताके अवतार आयो है।
बीहोलिया गोत गरवत्त उदोत भयो
आगरे नगर ताहि भेंटे पुन पायो है।
बनारसी बनारसी रसक बखान करे
ताको वंस नाम ठाम ग्राम गुन गायो है। ४९
सुखी होउ मंदिर कपूरचन्द साहु बैठे,
बैठे कौरपाल सभा जुरी मनभावनी।

बनारसीदासजूके वचनकी बात यही,
याही कथा ऐसी ग्याताग्यातमनरमनी ॥
गुनवंत पुरुषके गुन कीरतन कीजे,
पीतांबर प्रीति करि सज्जन सुहावनी ।
नहीं अभिचार भायो ऊमते मिथ्या पायो,
कुमतमतंगनिमें मानो है ग्यानघमनी ॥ ५
सोलहसो निन्यानिए संवत कुंआरमास
पच्छ उजियारे चंद बढ़िको भाव है ।
तिथे दसौं दिन आयो सुभ परमान पायो
सगरा अनाद शुभफल भी दाय है ।
बनारसीदास गुनपीया है सुजस घना
पीरथ प्रमान सिरि करन कहाय है ।
एक तो अरथ सुभ सुहृद्य दरसाय,
दूसरे अरथ यामें दूजो दरसाय है ॥ ५१

जगजीवन

यद्यपि स्वयं पं० बनारसीदासजीने अपनी रचनाओंमें कहीं इनका उल्लेख नहीं किया है परन्तु ये भी उनके अनुयायी थे। वि० सं० १७०१ में इन्होंने बनारसीदासजीकी समस्त रचनाओंको एकत्र किया और उसे 'बनारसीविलास' नाम दिया। ये आगरेके रहनेवाले गर्गगोत्री अग्रवाल थे। इनके पिताका नाम संघवी अभयराज और माताका मोहन दे था। अवश्य ही ये बनारसीदासके साथियों और अनुयायियोंमें थे।

'सबै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयौ,
ग्यानिनकी मंडलीमें जिसको विकास है।'

पं० हीरानंदजीने अपने पंचास्तिकाय पद्यानुवादमें इनके पिता संघवी अभयराज और माता मोहनदेका उल्लेख करनेके पश्चात् कहा है कि जगजीवन जाफर खाँ नामक किसी उमरावके दीवान थे—

ताको पूत भयौ जगनामी जगजीवन जिनमारगगामी ।
जाफरखाँके काज सँवारे भया दिवान उजागर सारे ॥

पं हीरानन्दजीने उक्त जमजीवनजीके कहनेसे ही वि॰ सं॰ १७११ में पंचास्तिकायकी रचना की थी।

पांडे हेमराज

भैयरपासजीका परिचय देते हुए ऊपर लिखा जा चुका है कि उनकी प्रेरणासे हेमराजजीने 'सितपट चौरासी बोल' और प्रवचनसारकी बालबोधटीका लिखी थी, जिसका रचनाकाल १७०९ है। इसके बाद उन्होंने परमात्मप्रकाशकी भाषाटीका संवत् १७१६ में, गोमट्टसार कर्मकाण्डकी भाषा॰ संवत् १७१७ में, पंचास्तिकायकी १७२१ में और नयचक्रकी टीका संवत् १७२६ में लिखी है। मानतुंगके भक्तामर स्तोत्रका एक सुन्दर पद्यानुवाद भी इनका किया हुआ है। राजस्थानके जैनग्रन्थभण्डारोंकी सूचीपरसे हम यह नामावली दे रहे हैं, संभव है, इनके सिवाय और भी उनकी रचनायें हों। इससे मालूम होता है कि अपने समयके ये भी बड़े विद्वान् थे और कुँवरपाल आदि अध्यात्मियोंसे इनका विशेष सम्पर्क था। 'चौरासी बोल' से मालूम होता है कि इनकी कविता भी सुन्दर होती थी :—

> सुनयपोष हतदोष, मोखमुख सिवपददायक,
> गुनमनिकोष सुघोष, रोगहर सोकविनायक।
> एक अनन्त सरूप सन्तबंदित अभिनंदित,
> निज सुभाव पर भाव भावि भासेइ अमंदित।
> अविदित चरित्र विलसित अमित सर्व मिलित अविलित तन
> अविचलित कलित निजरस ललित जय जिन दलित (सु) कलित घन ॥१

१—पं॰ कस्तूरचन्दजी काशलीवाल लिखते हैं कि पं॰ हेमराजकी १२ रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। ऊपर लिखी छह रचनाओंके सिवाय नयचक्र भाषा, प्रवचनसार पद्यानुवाद, हितोपदेश बावनी, दोहाशतक, जैनशतक और हैं।

२—पं॰ परमानन्दजी शास्त्रीने देहलीसे चौरासी बोल मासकी एक और पुस्तकका आवश्यक अंश उद्धार कर भेजा है जिसके कवि जगरूप हैं और जिसे उन्होंने जयसिंहपुर (नई दिल्ली) में संवत् १८११ में प्रारंभ समाप्त किया था। इसमें भी श्वेताम्बर सम्प्रदायकी मान्यतारूप ८४ बातोंका खण्डन किया गया है।

नाम हिम भूधरतैं निकसि गनेश चित्त, भूपरि बिथारी सिरस्यागर (लौं) भई है।
परमतवाद मरजाद कूल उन्मूलि, अनुकूल मारग सुभाय ढरि आई है॥
बुध हंस सेवैं पापमलको विध्वंस करे, सरवंग सुमति विकासि वरदाई है।
सप्त भंगमय मैल उठैं हैं तरंग जामैं, ऐसी बानी गंग सरवंग अंग गाई है॥

ऊपर लिखा जा चुका है कि रूपचन्द इनके गुरु थे।

पं. कस्तूरचन्दजीने अभी हाल ही पाण्डे हेमराजके 'उपदेश दोहा-शतक' का परिचय दिया है जिसमें १०१ सुभाषित दोहे हैं और जिसकी रचना कार्तिक सुदी ५ सं. १७२५ को समाप्त हुई है। दोहा-शतकसे यह बात विशेष मालूम हुई कि उनका जन्म सांगानेरमें हुआ था और यह दोहा-शतक कामागढ़ (कामां भरतपुर) में कीर्तिसिंह नरेशके समयमें बनाया गया। इसके कुछ दोहे देखिए—

ठौर ठौर सोधत फिरत, काहे अंध अवेव।
तेरे ही घटमैं बसै, सदा निरंजन देव॥ २५॥
मिलैं लोग बाजा बजै, पान गुलाल फुलेल।
जनम मरन अरु ब्याहमैं है समान सो खेल॥ २६॥

पाण्डवपुराण (भारत भाषा सं. १७५४) के कर्ता कवि बुलाकीदासकी माता जैनुलदे या 'जैनी' बड़ी विदुषी थी और वे पं. हेमराजकी पुत्री थीं। बुलाकीदासके अनुसार हेमराज गर्गगोत्री अग्रवाल थे।

वर्द्धमान नवलखा

मुलतानके रहनेवाले पारिखराज साहुके पुत्र वर्द्धमान या वधूरचित 'वर्द्धमान-वचनिका' की प्रति श्री अगरचन्दजी नाहटाकी कृपासे प्राप्त हुई। ये ओसवाल थे और नवलखा इनका गोत्र था। माघ सुदी पंचमी सं. १७३९ को वर्द्धमान-वचनिकाकी रचना हुई और चैत्र बदी १ संवत् १७४० को विद्यानंदिशाखा गणिके शिष्य ज्ञानचन्द्र मुनिने मुलतानमें ही इसकी प्रतिलिपि की।

इसके पत्र २ में नीचे लिखे दोहे हैं—

१—अनेकान्त वर्ष १४ अंक १ में देखो 'हिन्दीके नये साहित्यकी खोज'।

२—हेमराज पण्डित बसै, तिसी आगरे ठाइ।
गरगगोत गुन आगरो सब पूजैं जिस पाइ॥

दयासागर मुनि चूंप करार्द । यहूके मन ताकी भाई ।
जिनंदरदेवके सबे चैन, दयासागर कहावे चैन ॥ २
दयासागर छाप्यो कवी, उनके निज नयसंध ।
अध्यातम भावे सदा, लग्यो धरमको रंग ॥ ७
पाहिराज ताहिको सुतन, नयनन योग उदार ।
आतमध्यानी दास है, वर्धमान सुखकार ॥ ८
धरमदास आतमधरम, ताको जामें दीठ ।
और धरम मरमी गिने आतम अध्यातम पीठ ॥ ९
मिठु मीठे जिनवचन और कछू लघु मान ।
उपादेय निज आतमा और हेय तू जान ॥ ११
सुखानंद शिवपद कह्यो, अविनाशी सुखकार ।
अनुभव जीवे परतयो, पुदगल लगी छार ॥ १२

मुलतान शहर अध्यात्मी या बनारसीदासजीके अनुयायियोंका मुख्य स्थान था । यहाँके ओसवाल श्रीमाल इसी मतके अनुयायी रहे हैं । वर्धमान वचनिकासे इस बातकी पुष्टि होती है । इसमें धरमदास मनसाराम मिठ्ठू सुखानन्द आदिका उल्लेख है । श्वेताम्बर साधु दयासागरको भी अध्यात्मी बताया है । इस वचनिकाके लिपिकर्ता पं. ज्ञानवर्धन मुनि भी श्वेताम्बर थे । श्री अगरचन्दजी नाहटाके अनुसार खरतर गच्छके जिनसमुद्रसूरिने सं. १७११ में गणधरचोपड़ीय नेमिदास श्रावकके आग्रहसे आत्म-करणीसंवाद ग्रन्थ रचा है । खरतरगच्छके सुमतिरंगने सं. १७२२ में मुलतानके श्रावक चाहडमल्ल, मनसुख वर्धमान आदिके आग्रहसे प्रबोधचिन्तामणि चौपाई और योगशास्त्र चौपाईकी रचना की है । जिनके ग्रन्थमें चाहड, धरमचन्द सेठमल ऋषभदास पृथ्वीराज शिवराजका उल्लेख किया है । ये सब अध्यात्मी थे—

जिनवाणी जगतारक नाम, चाहड ऋषभदास वर्धमान ।
समयसार श्रावक मुलतानी करई सदा मिल अध्यात्म कहानी ॥

दयाकुशलके शिष्य धर्म मन्दिरने १७४ में दयादीपिका चौपाई, १७४१ में प्रबोधचिन्तामणि मोहविवेकरास १७४२ में परमात्मप्रकाश चौपाई (योगीन्दुदेव)

---

१ यह ग्रन्थ जैसलमेरके डूंगरसी भंडारमें है ।

सम्मेद-शिखर चैत्यपरिपाटीमें भी किया है और श्री अगरचन्दजी नाहटाने उसे हाल ही प्रकाशित किया है।[1]

इसके अनुसार खरतर गच्छका आचार्यसंघ माघ सुदी ११ सं० १६६१ को आगरेसे चला था और शाहजादपुर होता हुआ प्रयाग पहुँचा था। तब हीरानन्द सलीमशाहको प्रसन्नकर उनकी आज्ञासे प्रयागसे बनारस आकर संघमें शामिल हुए थे जब कि अर्धकथानकके अनुसार चैत सुदी २ को हीरानन्दने प्रयागसे संघ निकाला था[2]। इस चैत्यपरिपाटीसे भी मालूम होता है कि हीरानन्द शाह सलीमके कृपापात्र थे और बहुत बड़े धनी थे। उनके साथ अनेक हाथी घोड़े पैदल और तुपकदार थे। उनकी ओरसे प्रतिदिन संघका भोज होता था और सबको सन्तुष्ट किया जाता था।

सलीमके गद्दीनशीन होनेपर इन्होंने संवत् १६६७ में उसे अपने घर आमंत्रित करके बहुत बड़ा नजराना दिया था जिसका आलंकारिक वर्णन 'जसन' नामक कविने किया है[3]।—

> संवत् सोलसइ सतसठे, साका अति कीया।
> मेहमानी पतिसाहकी करके जस लीया॥
> चुनि चुनि मोती चुनी, परम पुराने पन्ना
> कुन्दनके देमे करि अमर धन धनके।
> लाल लाल लाल लागे कुन्न (?) करलाया
> विविध वसन बने बहुत बनायके॥

१—अनेकान्त वर्ष १४, अंक १।

२—संघ निकालनेके समयमें यह अन्तर क्यों पड़ता है, कुछ समझमें नहीं आया।

३—यह कविता श्री मणिलाल बकोरभाई व्यासके 'श्रीमाळीओनो ज्ञातिभेद' नामक गुजराती पुस्तकमें दी है जो बहुत ही अशुद्ध है। यहाँ हमने उसके कुछ समझमें आने योग्य अंश ही शुद्ध करके उद्धृत किये हैं।

४—देश वहाँके लाल (रत्न) बहुत प्रसिद्ध हैं।

सम्मेद-शिखर चैत्यपरिपाटीमें भी किया है और श्री अगरचन्दजी नाहटाने उसे हाल ही प्रकाशित किया है।

इसके अनुसार खरतर गच्छका यात्रासंघ माघ सुदी ११ सं० १६६१ को आगरेसे चला था और शाहजादपुर होता हुआ प्रयाग पहुँचा था। तब हीरानन्द सलीमशाहको प्रसन्नकर उनकी आज्ञासे प्रयागसे बनारस आकर संघमें शामिल हुए थे, जब कि अर्धकथानकके अनुसार चैत्र सुदी २ को हीरानन्दने प्रयागसे संघ निकाला था। इस चैत्यपरिपाटीसे भी मालूम होता है कि हीरानन्द शाह सलीमके कृपापात्र थे और बहुत बड़े धनी थे। उनके साथ अनेक हाथी, घोड़े पैदल और सुखपाल थे। उनकी ओरसे प्रतिदिन संघका भोज होता था और सबको सन्तुष्ट किया जाता था।

सलीमके गद्दीनशीन होनेपर इन्होंने संवत् १६६७ में उसे अपने घर आमन्त्रित करके बहुत बड़ा नजराना दिया था जिसका आलंकारिक वर्णन 'वच्छन' नामक कविने किया है।—

संवत् सोलह सतसठे, सावन वदि चौथीया।
मेहमानी पतिसाहकी करके चित दीया॥
चुनि चुनि चोखी चुनी, परम पुराने पन्ना
कुन्दनकी देने करि आप घन ठमके।
लाल सब लाल आगे कुनव (?) लसन्ती
विविध बरन बने बहुत बनावके॥

१—अनेकान्त वर्ष १४ अंक १।

२—संघ निकालनेके समयमें यह अन्तर क्यों पड़ता है, कुछ समझमें नहीं आया।

३—यह कविता श्री मणिलाल बकोरभाई व्यासने 'श्रीमालीओनो ज्ञातिभेद' नामक गुजराती पुस्तकमें दी है, जो बहुत ही अशुद्ध है। यहाँ हमने उसके कुछ समझमें आने योग्य अंश ही शुद्ध करके उद्धृत किये हैं।

४—चौथ, क्योंकि लाल (रत्न) बहुत प्रसिद्ध है।

आनन्दघन

आनन्दघन घनानन्द, आनन्द नामके अनेक कवि हो गये हैं, उनमेंसे एक अध्यात्मी कवि बनारसीदासके समयमें हुए हैं। स्व. मोतीचन्दजी कापड़ियाने अनुमान किया है कि उनका जन्मकाल सं. १६६ और स्वर्गवास १७३ के लगभग होना चाहिये। क्यों कि उपाध्याय यशोविजयका देहोत्सर्ग वि. सं. १७४३ में डभोई (गुजरात) में हुआ था और उनका आनन्दघनसे साक्षात्कार हुआ था। परन्तु इस साक्षात्कारका अभी तक कोई स्पष्ट और विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिला है। उपाध्यायजीका लिखा हुआ एक अष्टक है जिसमें बार बार 'आनन्दघन' नाम प्रयुक्त हुआ है और उसी परसे उक्त साक्षात्कारकी कल्पना की गई है। उक्त अष्टकका पहला पद यह है—

मारग चलत चलत गात आनंदघन प्यारे।
ताको सरूप भूप तिहुं लोकथें न्यारो बरखत मुखपर नूर।
सुमति सखीके संग नित नित दोरत कबहु न होवहि दूर।
जस विजय कहै सुनो हो आनंदघन, हम तुम मिले हजूर॥ १॥

इसमें आनन्दघन शब्द स्पष्ट ही चिदानन्दघन निजात्माको लक्ष्य करके है जो सुमति या सम्यग्ज्ञानके साथ निरन्तर रहता है कभी दूर नहीं होता।

दूसरे पदमें सुमति सखी और नायक आनंदघन मिल रहे गंग तरंग भया है।

तीसरे पदमें कहा है—

आनंद कोउ न पावे जो पावे सोइ आनंदघन ध्यावे।
आनंद कौन रूप कौन आनंदघन आनंद गुन कौन लखावे।
सहज संतोष आनंद गुन प्रगटत, सब दुबिधा मिट जावे।
जस कहै सोइ आनंदघन पावत अंतर ज्योत जगावे।

१— श्रीआनन्दघनजीना पदो की गुजराती प्रस्तावना।—महावीर जैन विद्यालय प्रकाशन।

२—डभोईमें यशोविजयजीकी चरणपादुकायें सं. १७४३ में स्थापित की गई हैं।

सपस्त्याकार श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनरंगसूरिपट्टे श्रीजिनचन्द्रसूरिणा श्रीमकसू-
नगरे।" शाह निहालचन्द हीरानन्दके पुत्र थे।

जगतसेठके पूर्वज हीरानन्दके पौत्र और माणिकचन्दके पुत्र फतेहचन्दका बखान करनेवाले कुछ पद्य मुनि कान्तिसागरने अपने एक लेखमें प्रकाशित किये हैं जिनके रचयिता निहाल नामके एक यति थे जो बरसों एक साथ रहे थे और उन्होंने पौष वदी ११ सं० १७९८ को मकसूदाबादमें ये लिखे थे। इनके अनुसार राजा माणिकचन्दने मुर्शिदाबाद (बंगाल) में अपनी कोठी स्थापित की और फर्रुखसियर बादशाहने उन्हें सेठका पद दिया। उनके इनके समान पुत्र फतेह-चन्द दिल्ली गये और तब उन्हें दिल्लीपतिने जगतसेठका खिताब दिया।

१—अर्धकथानकके पिछले संस्करणमें हमने हीरानन्द मुकीमको सुप्रसिद्ध जगतसेठका वंशज लिखा था जो भूल थी। जगतसेठकी पदवी तो सेठ माणिकचन्दके पुत्र फतेहचन्दको दिल्लीके बादशाहने दी थी और वे हीरानन्दके बाद हुए हैं। इस तरह ये हीरानन्द जगतसेठके पूर्वज हीरानन्द नहीं, किन्तु एक दूसरे ही धनी सेठ थे।

२—देखो विशालभारत, मार्च १९४७

३ देस बंगालो उत्तम देस आए माणिकचन्द नरेस।
नाम नगर मकसूदाबाद करि कोठी कीनो आबाद ॥ ९
राजा प्रजा और उमराव, फौजदार सब नव्वाब।
सबको माने हुकुम प्रमान दिल्लीपति है अति सुल्तान ॥ १
पातस्याह श्री फर्रुखसाह सेठ पदस्थ दियो उच्छाह।
माणिकचंद सेठने माम, फिरी दुहाई ठामो ठाम ॥ ११
देस बंगालेरो धनी, दिन दिन संपति संपति घनी।
जाके पुत्र सुरिंद समान, प्रगटे फतेचंद गुनवान ॥ १२
दिल्ली जाइ दिल्लीपति भेट, नाम खिताब दियो जगसेठ।
जगतसेठ जगमें अवतार ॥ १३

नहीं होता कि यशोविजय उपाध्याय जैसे प्रतिष्ठाप्राप्त श्वेताम्बर साधु उनकी प्रशंसा करें या उनसे मिलें।

श्रीअगरचन्द नाहटाके पासके गुटकेमें आनन्दघनजीके ११ पद लिखे हुए हैं[1] और यह गुटका बनारसीदासजीके साथी कुँवरपाल चोरडियाने सं. १६८४-८५ में अपने पढ़नेके लिए लिखा था। इससे मालूम होता है कि उनकी रचना १६८४ से पहले ही पहले हो चुकी थी और उनकी प्रसिद्धि हो जानेपर ही अध्यात्मी कुँवरपालने उनकी प्रतिलिपि की होगी। इस लिए समय पर विचार करनेसे भी यशोविजयजीके साथ आनन्दघनके साक्षात्कार होनेकी बातमें सन्देह होता है।

यशोविजयजीके जन्म-समयका तो ठीक पता नहीं। परन्तु वह सं. १६८ के लगभग अनुमान किया जाता है और १६८८ में उन्हें दीक्षा दी गई थी। कान्तिविजय गणिकी 'सुजसवेलि भास'के अनुसार सं. १६९९ में अहमदाबादमें उन्होंने अष्टावधान किये थे और तभी उनकी योग्यता देखकर विद्याध्ययनके लिए किसी धनीके द्वारा बनारस भेजनेका विचार किया गया था। अर्थात् उनके जन्म-काल और दीक्षाकालके पहले ही आनन्दघनके पद रचे जा चुके थे।

मोतीचन्दजी और कुछ दूसरे लेखकोंने बतलाया है कि आनन्दघनका मूल नाम लाभानन्द था और वे खरतर गच्छके साधु थे। जैसा कि अन्यत्र बतलाया गया है खरतरगच्छके अनेक साधु अध्यात्मी हुए हैं।

कुँवरपालने अपने गुटकेमें अध्यात्मी कवियोंकी—बनारसीदास रूपचन्द, ज्ञानानन्द, कबीर, सूरदास आदिकी रचनायें संग्रह की हैं और उनकी इसी रुचिका परिचय आनन्दघनके पदोंसे मिलता है। श्री आनन्दघन बनारसीदासजीसे कुछ पहलेके अध्यात्मी ही जान पड़ते हैं।

१—इस गुटकेमें आनन्दघनके पदोंके बाद प्रवचनसार, नयचक्र आदि लिखे हुए हैं। नाहटाजी बतलाते हैं कि उन पदोंकी लिपि और आगेकी लिपिमें कुछ भिन्नता है। फिर भी वे बाद इस गुटकेके प्रारम्भमें ही लिखे हुए हैं। इतने पीछेके लिखे हुए नहीं जान पड़ते।

इसमें स्पष्ट कहा है कि जो आनन्दघन आत्माका ध्यान करता है वही आनन्द पाता है और स्वाभ संतोषसे आनन्द गुण प्रकट होता है। उसके प्रगट होते ही आनन्दघन आत्माकी प्राप्ति होती है और अलखज्योति जग जाती है।

पाँचवें पदमें कहा है " आनँद कोउ हमें दिखलावो। कहाँ ढूँढ़त तू मूरख पंथी आनँद हाट न बिकावे " अर्थात् यह आनन्द या आनन्दघन बाजारमें नहीं मिलता है, जो तू उसे ढूँढ़ता फिरता है।

अनेक भक्त कवियोंने आनन्दघन या घनआनन्द शब्दका व्यवहार अपने इष्टदेव श्रीकृष्णके लिए किया है। आनन्दघनने भी आनन्दघन आत्माके सिवाय कहीं कहीं अपने इष्ट परमात्माके लिए किया है और चिदानन्द आत्माके लिए तो प्रायः ही किया है —

' आनन्दघन प्रभु दास तिहारे, जनम जनमके सेन ॥" पद १७
" आनंदघन प्रभुके पधारे गहन करे गुणधामा ॥" पद २१
आनंदघन चेतनमय मूरति, सेवक जन बलि जाही ॥" २१
आनंदघन प्रभु चोरी लाखै, बाजी सबकी पावे ॥" ४८

सो पूर्वोक्त 'आनन्द' या 'आनन्दघनसे मिले' जैसे शब्दोंसे किसी आनन्दघन नामक महात्मासे मिलनेका अनुमान करना कष्ट-कल्पना ही मालूम होती है। यदि यशोविजयजी उनसे मिले होते तो इन शब्दोंके साथ कुछ और स्पष्ट संकेत दे सकते थे। यशोविजयजीके लिखे हुए सैकड़ों ग्रन्थ हैं उनमें भी तो वे कहीं न कहीं उल्लेख कर सकते थे।

आनन्दघनके पदोंसे और उनके सम्बन्धमें प्रचलित जनश्रुतियोंसे मालूम होता है कि वे अध्यात्मी सन्त थे और यशोविजयजीकी अध्यात्मियोंके प्रति सद्भावना नहीं थी। उन्होंने 'अध्यात्ममतपरीक्षा' और 'अध्यात्ममतखण्डन' नामके दो ग्रन्थ अध्यात्मियोंके विरोधमें ही लिखे हैं।

आनन्दघनकी बानी सन्त कवियों जैसी अगम-रूपेसे रहित है। यद्यपि वे श्वेताम्बर सम्प्रदायमें दीक्षित साधु थे परन्तु कहा जाता है कि वे लोकसंसर्ग छोड़कर निर्जन स्थानमें पड़े रहते थे और परम्परागत साम्प्रदायिकताकी कोई परवा न करते थे। साधु और श्रावकों द्वारा वे उपेक्षित थे। इससे भी इस मतपर विश्वास

नहीं होता कि यशोविजय उपाध्याय जैसे प्रतिष्ठाप्राप्त श्वेताम्बर साधु उनकी प्रशंसा करें या उनसे मिलें।

श्रीअगरचन्द नाहटाके पासके गुटकेमें आनन्दघनजीके ११ पद लिखे हुए हैं[1] और यह गुटका बनारसीदासजीके साथी कुँवरपाल चोरडियाने सं. १६८४-८५ में अपने पढ़नेके लिए लिखा था। इससे मालूम होता है कि उनकी रचना १६८४ से काफी पहले हो चुकी थी और उनकी प्रसिद्धि हो जानेपर ही अध्यात्मी कुँवरपालने उनकी प्रतिलिपि की होगी। इस लिए समय पर विचार करनेसे भी यशोविजयजीके साथ आनन्दघनके साक्षात्कार होनेकी बातमें सन्देह होता है।

यशोविजयजीके जन्म-कालका तो ठीक पता नहीं। परन्तु वह सं. १६८ के लगभग अनुमान किया जाता है और १६८८ में उन्हें दीक्षा दी गई थी। कान्तिविजय गणिकी सुजसवेलि भासके अनुसार सं. १६९९ में अहमदाबादमें उन्होंने अष्टावधान किये थे और तभी उनकी योग्यता देखकर विद्याध्ययनके लिए किसी धनीके द्वारा बनारस भेजनेका विचार किया गया था। अर्थात् उनके जन्म-काल और दीक्षाकालके पहले ही आनन्दघनके पद रचे जा चुके थे।

श्रीनाहटाजी और कुछ दूसरे लेखकोंने बतलाया है कि आनन्दघनका मूल नाम लाभानन्द था और वे खरतर गच्छके साधु थे। जैसा कि अन्यत्र बतलाया गया है खरतरगच्छके अनेक साधु अध्यात्मी हुए हैं।

कुँवरपालने अपने गुटकेमें अध्यात्मी कवियोंकी—बनारसीदास रूपचन्द लाभानन्द कबीर, सुन्दरदास आदिकी रचनायें संग्रह की हैं और उनकी इसी रुचिका परिचय आनन्दघनके पदोंसे मिलता है। तो आनन्दघन बनारसीदासजीसे कुछ पहलेके अध्यात्मी ही जान पड़ते हैं।

१—इस गुटकेमें आनन्दघनके पदोंके बाद द्रव्यसंग्रह नयचक्र आदि लिखे हुए हैं। नाहटाजी बतलाते हैं कि इन पदोंकी लिपि और आगेकी लिपिमें कुछ भिन्नता है। फिर भी ये पद इस गुटकेके प्रारम्भमें ही लिखे हुए हैं। इससे पीछेके लिखे हुए नहीं जान पड़ते।

४—श्रीमाल जाति

श्रीमाल जातिकी उत्पत्ति श्रीमाल नामक स्थानसे बतलाई जाती है। अहमदाबादसे अजमेर जानेवाली रेल्वे लाइनके पालनपुर और आबू रोड स्टेशनसे लगभग ५० मील गुजरात और मारवाड़की सरहदपर प्राचीन 'श्रीमाल'के खण्डहर पड़े हुए हैं और अब उक्त स्थान 'भिनमाल' कहलाता है। श्रीमाल-पुराणमें लिखा है कि सत्युगमें विष्णुजी लक्ष्मीदेवीने इसकी स्थापना की थी। सत्युगमें इसका नाम पुष्पमाल, त्रेतामें रत्नमाल, द्वापरमें श्रीमाल और कलियुगमें भिनमाल रहा। विमलप्रबन्ध और विमलचरित्रके अनुसार द्वापरयुगके अन्तमें श्रीमाल नगरमें श्रीमाल जातिकी स्थापना हुई और श्रीदेवी इस जातिकी कुलदेवी मानी गई। एक श्वेताम्बर जैनकथाके अनुसार श्रीमल राजाके नामसे उनके नगरका नाम श्रीमाल पड़ा था। इसी तरह एक और कथाके अनुसार गौतम स्वामीने उस राजाको जैन बनाकर उनके नामसे श्रीमाल कुल स्थापित किया। लक्ष्मी श्रीमल राजाकी पुत्री थी और वह आबूके परमार राजाको ब्याही गई थी। परन्तु ये सब पौराणिक कहानियाँ हैं, इनमें कुछ अधिक तत्व नहीं मालूम होता।

बनारसीदासजी इनमेंसे किसी भी कहानीकी कोई चर्चा नहीं करते और वे कहते हैं कि रोहतकके निकटके बिहोली गाँवके रघुवंशी राजपूत गुरुके उपदेशसे जैन हो गये और णमोकार मन्त्रकी माला पहिनकर श्रीमाल कहलाये और बिहोलीके राजाने उनका गोत्र बिहोलिया ठहराया। इससे इतना तो ठीक मालूम होता है कि बिहोली गाँवके कारण इनका गोत्र बिहोलिया हुआ। जैनोंके अधिकांश गोत्रोंके नाम स्थानोंके कारण ही रक्खे गये हैं परन्तु समग्र श्रीमाल जातिके उत्पत्तिस्थानके विषयमें वे कुछ नहीं कहते। अधिक संभव यही है कि भिनमाल या श्रीमालसे श्रीमाल जाति निकली हो। हुएनत्सांगके समयमें यह नगर गुर्जर देशकी राजधानी था।

श्रीमाल जातिकी जो गोत्रसूची मिलती है उसमें ११५ के करीब गोत्रोंके नाम हैं जिनमेंसे अर्धकथानकमें कुकड़ी सोमरा, जिनमनिया, वीर,

बरडिया, बिहोलिया, डोसी मोठिया, और सिंघड़ गोत्रके श्रीमालोंका उल्लेख किया गया है।

श्रीमाल धनी और सम्पन्न जाति है। गुजरात और बम्बई प्रान्तमें इसकी आबादी अधिक है। राजपूतानेमें श्रीमाल वैश्योंके अतिरिक्त श्रीमाल ब्राह्मण और श्रीमाल सुनार भी हैं। वैश्योंमें जैन और वैष्णव श्रीमाल दोनों हैं। जैनोंमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायी ही अधिक हैं। खानदेशके पारगाँव और पाचोरे मुल्तान आदि स्थानोंमें श्रीमालोंके कुछ घर दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी भी रहे हैं।

गुजरात और बम्बई प्रान्तके श्रीमालोंमें किसी भी गोत्रका अस्तित्व नहीं है। इस विषयमें एक कहावत प्रसिद्ध है कि ' गुजरातमें गोत्र नहीं, और मारवाड़में गोत (छूत) नहीं। " यहाँ ओसवाल पोरवाड़ आदि जातियोंमें भी गोत्र नहीं हैं। अपने अपने व्यवसायसे ही वे अपना परिचय देते हैं, जैसे घिया (घीवाले) दोसी (दूष्य या कपड़ेके व्यापारी) नाणावटी (नाणा या सिक्केके व्यापारी सराफ) झवेरी (जौहरी) आदि। परन्तु बनारसीदासजीने आगरा जौनपुर खैराबाद आदिके श्रीमालोंका उल्लेख गोत्रसहित किया है। जान पड़ता है ये लोग वहाँ पहलेसे बसे हुए होंगे और मारवाड़की ओरसे उस ओर गये होंगे जहाँ कि नामके साथ गोत्र आवश्यक रहता है।

जहाँ तक हम जानते हैं जैनोंकी वर्तमान जातियाँ दसवीं शताब्दिसे पहलेकी नहीं हैं। श्रीमाल जातिका भी कोई उल्लेख इससे पहलेका नहीं मिलता। सत्युग द्वापर या त्रेतामें जातियोंकी उत्पत्तिसम्बन्धी कथाओंमें कोई ऐतिहासिकता नहीं है।

बनारसीदासजीके कथा या वस्तुपाल जेठू या जेठमल्ल मूलदास पर्यंत ईसरदी मरुवाल आदि पूर्व पुरुषोंके नाम और खरगमल्ल, धनमल्ल, बानरसी बन्धा, बनारसी आदि रिश्तेदारोंके नामोंसे भी श्रीमाल वंशकी उत्पत्ति पंजाबमें नहीं भिनमालमें ही ठीक बैठती है। बादशाही दरबारों, नवाबोंके दरबारमें सहायक होनेसे यह जाति उत्तर भारत, बिहार, बंगाल तक फैल गई थी।

५—जौनपुरके बादशाह

बनारसीदासजीने अपने पुरखोंसे सुनसुनाकर जौनपुरके नौ बादशाहोंके नाम लिखे हैं[1]। महापण्डित राहुल सांकृत्यायनने लिखा है कि मुहम्मद तुगलक़का ही दूसरा नाम जौनाशाह था और उसीके नामसे यह शहर बसाया गया। हो सकता है कि गोमतीके किनारे पहले भी कोई नगर रहा हो जिसका नाम *मालूम नहीं। मुन्शी देवीप्रसादजीने फारसी तवारीखोंके आधारसे लिखा है*[2] कि मुहम्मद तुगलकके कोई बेटा नहीं था, इसलिए उसके चाचा रज्जबका बेटा फीरोज शाह नामक बादशाह हुआ। इसने ई० १३२९ में बंगालसे लौटते हुए गोमतीके तीरपर एक अच्छी समचौरस जमीन देखकर यह शहर बसाया और उसका नाम अपने चचेरे भाई मुहम्मद तुगलकके असली नाम जौनाके नामसे जौनपुर रक्खा, क्योंकि उसने स्वप्नमें मलिक जौनाको यह कहते हुए सुना था कि शहरका नाम मेरे नामपर रखना। दूसरे बादशाहका नाम बनारसीदासने बब्बर शाह लिखा है वह फिरोजशाह बारबक है। तीसरा जो सुरहर सुलतान लिखा है वह ख्वाजाजहाँ है जिसका नाम मलिक सरवर था। सरवर ही सुरहर हो गया है। चौथा जो शेख मुहम्मद लिखा है वह मुबारिक शाह है जिसका नाम करनफल था। शायद जौनपुरवाले उसे शेख मुहम्मद कहते थे। पाँचवाँ जिसको शाह निजाम लिखा है उसका पता मुबारक शाह और इब्राहीमके बीचमें कुछ नहीं लगता। छठा जो शाह बिराहिम लिखा है वह इब्राहीमके बेटे महमूद और पोते मुहम्मद शाहके पीछे हुआ था। बीचके दो बादशाहोंके नाम नहीं दिये। आठवाँ जो गाजी लिखा है वह सैयद बहलोल लोदी है। शाह हुसैनके पीछे यही जौनपुरका मालिक हुआ। नवाँ बक्खा सुलतान बहलोलका बेटा बारबक हो सकता है।

१—अर्धकथानक पद्य १२-१७।

२—देखो, मई १९१७ की सरस्वतीमें '[illegible]' लेख।

३—देखो, बनारसीविलास (प्रथम संस्करण सन् १९०५ पृ० २१, २८)

महापण्डित राहुल सांकृत्यायनने मई १९५७ की सरस्वतीमें 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' शीर्षक एक लेख लिखा है। उसमें जौनपुरके सम्बन्धमें कुछ विशेष जानने योग्य बातें लिखी हैं, जो यहां दी जाती हैं—

"जौनपुरकी बादशाहतमें हिन्दू-मुसलमान दोनोंका बराबरीका दर्जा था। उसने यहाँकी संस्कृतिको नहीं भुलाया जिसमें वह साँस ले रही थी। भारतीय संगीतको उसने प्रश्रय दिया। अपनी भाषा और साहित्यका समर्थन किया जिसका सुफल यह है कि अवधीके महाकवि मंझन कुतुबन और जायसी जौनपुर दरबारके ही थे जिन्होंने मुसलमान होते हुए भी देशकी भाषा और वेषको अपनाया।

जौनपुरका व्यापार

जौनपुरमें जो बनारसीदासजीने जवाहिरातका व्यापार होना लिखा है, सो सही है। क्यों कि जौनपुर आगरे और पटनेके बीचमें बड़ा भारी शहर था और जब वहाँ बादशाही थी, उस वक्त तो दूसरी दिल्ली बना हुआ था, और चार कोसमें बसता था।

इलाहाबाद बसनेके पीछे जौनपुर उसके नीचे कर दिया गया था।

आईने अकबरीमें जौनपुरके ११ मुहाल लिखे हैं, परंतु अब तो वह जौनपुर पाँच ही तहसीलोंका जिला रह गया है।

जौनपुरकी बस्ती अकबरके समयमें कितनी थी इसका पता जुगराफिया (भूगोल) जौनपुरसे मिलता है। उसमें लिखा है कि अकबर बादशाहने गरीबोंकी मैयतोंका इन्तजाम करनेके लिए एक हाकिमको भेजा था, जो गरीबोंका मुफ्त इन्तजाम करता था, और अमीरोंसे मोल लेकर दवा देता था। तो भी हजार पचास तो रुपए रोजकी उसकी आमदनी हो जाती थी। एक दिन उसके गुमाश्तोंने जब उससे कहा कि आज तो पाँचसौका ही मुरदा बिका है तब उसने एक लंबी आह भरी और कहा—हाय! जौनपुर वीरान (उजाड़) हो गया। फिर वह उसी दिन आगरेको चला गया।

६—चीन कुलीच खाँ

यह तूरानका रहनेवाला जानी कुरबानी खालिस तुर्क था। बादशाह अकबरने इसे ई॰ १६२१ में सूरतकी किलेदारी, ई॰ १६१५ में गुजरातकी सूबेदारी और फिर १६१७ में वजारत दी। १६४ में यह गुजरात भेजा गया और १६४९ में राजा तोडरमलके मरने पर उसे दीवान बना दिया गया जो १६५ तक रहा। इसी बीच १६५८ में जौनपुर भी उसकी जागीरमें दे दिया गया। ई॰ १६५३ में शाहजादा दानियाल इलाहाबादके सूबेमें भेजा गया, तो कुलीच खाँको उसका अतालीक (शिक्षक) बनाकर साथ रख दिया। उसकी बेटी शाहजादेको ब्याही थी।

ई॰ १६५६ में आगरेकी और १६५८ में लाहोर तथा काबुलकी सूबेदारी उसे दी गई। १६६२ में बादशाह जहाँगीरने उसे गुजरातमें बदल दिया और १६६४ में लाहोर भेज दिया। इसके बाद १६६९ में वह काबुल और अफगानिस्तानके सूबेदार पर मुकर्रर होकर गया और वहीं ई॰ १६७८ में मर गया।

एक तो ई॰ १६५५ में जौनपुर कुलीच खाँकी जागीरमें ही था और दूसरे ई॰ १६६१ में उसकी दीवानी भी इलाहाबादके सूबेमें हो गई थी जिसके नीचे जौनपुर था। जहाँगीरके समयके मोहसिन लेखि जेनोवा जो सार लिया है उससे मालूम होता है कि जौनपुरका सूबेदार मकान कुलीच खाँ प्रजापीडक था। उसकी शिकायत आने पर बादशाहने उसे वापिस बुलाया और यदि वह रास्तेमें ही न मर जाता तो उसे कड़ा दण्ड मिलता। अकबर और जहाँगीरके समय किसी अत्याचारीकी रियायत नहीं थी।

७—लालबेग और नूरम

युवक जहाँगीरकी भूमिकामें जो हमने जहाँगीर बादशाहकी पुरस्कारपत्रका लिखा है उसमें अपनेस्थानकमें लिखा हुए जौनपुरके लिये पत्र लग गया है।

संवत् १६५५ में अकबर बादशाह तो दक्खन फतह करनेको गये और अजमेरका सूबा शाह सलीमको जागीरमें देकर राणाको जेर करनेका हुक्म दे गये। शाह कुलीखां महरम और राजा मानसिंहकी नौकरी इनके पास बोली गई। बंगालेका सूबा जो राजाके पास था, उसे राजा अपने बड़े बेटे जगतसिंहको सौंपकर शाही खिदमतमें रहने लगे।

शाह सलीमने अजमेर आकर अपनी फौज राणाके ऊपर भेजी और कुछ दिनों पीछे आप भी शिकार खेलते हुए, उदयपुरको गये, जिसको राणा छोड़ गये थे और सिपाहियोंको पहाड़ोंमें भेजकर राणाके पकड़नेकी कोशिश करने लगे।

खुशामदी और स्वार्थी लोग इनके कान भरा करते थे कि बादशाह तो दक्खनके लेनेमें लगे हैं और वह मुल्क एकाएक हाथ आनेवाला नहीं है; और ये भी उसे मार लिये बगैर आनेके नहीं। इसलिए हजरत जो यहांसे लौटकर आगरेके परेके आबाद और उपजाऊ परगनोंको ले लें, तो बड़े फायदेकी बात हो। बंगालेका फिसाद भी जिसकी खबरें आ रही हैं और जो और गये राजा मानसिंहके निपटनेवाला नहीं है जल्द दूर हो जायगा। यह बात राजा मानसिंहके भी मतलबकी थी क्योंकि उन्होंने बंगालेकी रखवालीका जिम्मा ले रक्खा था, इस लिए उन्होंने भी हांमें हां मिलाकर फौज बढ़ानेकी सलाह दे दी।

शाह सलीम इन बातोंसे राणाकी मुहीम अधूरी छोड़कर इलाहाबादको चले। जब आगरेमें पहुंचे तो वहांके किलेदार कुलीजखां पेशवाईको आया। उस वक्त लोगोंने बहुत कहा कि इसको पकड़ लेनेसे आगरेका किला जो खजानेसे भरा हुआ है सहजहीमें हाथ आता है। मगर इन्होंने कबूल न करके उसको रुखसत कर दिया और जमुनासे उतरकर इलाहाबादका रास्ता लिया। इनकी दादी हरमेंसे बैठकर इनको इस इरादेसे मना करनेके लिए किलेसे उतरी ही थी कि ये नावमें बैठकर जल्दीसे चल दिये और वे नाराज होकर लौट आईं।

सावन सुदी १ संवत् १६५७ को शाह सलीम इलाहाबादके किलेमें पहुंचे और आगरेसे इधरके बहुतसे परगने लेकर उन्होंने अपने नौकरोंको जागीरमें दे दिये। बिहारका सूबा कुतबुद्दीनखांको दिया। जौनपुरकी सरकार लालबेगको और कालपीकी सरकार नसीम बहादुरको दी। पनहद दीवानने तीन लाख रुपएका

खजाना बिहारके खालिसेमेंसे तहसील करके जमा किया था, वह भी उससे ले लिया।

इससे जाना जाता है कि शाह सलीमने जो अफजलबेगको जौनपुर दिया था उसे मुरम सुलतान लेने नहीं देता होगा, जिसपर शाह सलीम शिकारका बहाना करके गया था, फिर मुरमबेगके हाजिर होनेपर अफजलबेगको यहाँ रख आया होगा।

८—गाँठका रोग या मरी (प्लेग)

सि॰ ई॰ १६७१ में आगरेमें गाँठका रोग फैलनेका अर्धकथानक (५०९-७१) में जिक्र किया गया है उसके सम्बन्धमें नीचे लिखे प्रमाण और मिले हैं—

१—जहाँगीरनामेमें बादशाह जहाँगीरने अपने चौदहवें वर्षके विवरणमें लिखा है, बैशाख बदी १ मंगलवार सं॰ १६७५ को हमने आगरासे अहमदाबादकी ओर बाग फेरी। गर्मीकी तेजी और हवाके बिगड़ जानेसे लोगोंमें बहुत कष्ट होने लगा था, इसलिए राजधानीको जानेका विचार छोड़कर अहमदाबादमें रहना स्थिर किया। क्योंकि गुजरातकी बरसातकी बहुत प्रशंसा सुनी थी। अहमदाबादकी भी बहुत बड़ाई होती थी। उसी समय यह भी खबर आई कि आगरेमें फिर मरी फैल गई है और बहुतसे आदमी मर रहे हैं। इससे आगरे न जानेका विचार और भी स्थिर हो गया।

ज्योतिषियोंने माघ सुदी २ सं॰ १६७५ को राजधानीमें प्रवेश करनेका मुहूर्त निश्चय था। परन्तु इन दिनों गुमाश्तोंने अनेक बार प्रार्थना की कि ताऊनका रोग आगरेमें फैला हुआ है। एक दिनमें न्यूनाधिक १ मनुष्य बगल तथा जाँघके जोड़ या गलेमें गिल्टी उठकर मरते हैं। यह तीसरा वर्ष है। जाड़ेमें यह रोग प्रबल हो जाता है और गर्मीमें जाता रहता है। अजब बात यह है कि इन तीन वर्षोंमें आगरेके सब गाँवों और कस्बोंमें तो फैल गया है परंतु फतहपुरमें बिलकुल नहीं पहुँचा। अमनाबादसे फतहपुर ढाई कोस है वहाँके मनुष्य मरीके डरसे घरबार छोड़कर दूसरे गाँवोंमें चले गये हैं। इस

फिर विचारपूर्वक यह बात ठहराई गई कि इस मुहूर्तपर फिर प्रवेश करें और जब प्लेग धीमा पड़ जावे तब दूसरा मुहूर्त निकलवाकर बाजारें खोलें।

मुग़ल बादशाहोंकी बेटीने जो शाहन आलमके बेटे अबुलहसनकी बरमें है, फरमानसे यह विचित्र चरित्र ताऊनके विषयमें कहा और उसके सत्य होनेपर पूरा जोर दिया। इससे बादशाहने यह घटना तुज़ुकमें लिख ली।

"उसने कहा था कि एक दिन घरके आँगनमें एक चूहा दिखाई दिया। वह मतवालोंकी भाँति गिरता पड़ता इधर उधर दौड़ रहा था। उसे कुछ सुधार न देख था। मैंने एक लौंडीसे इशारा किया। उसने उसकी पूँछ पकड़कर बिल्लीके आगे डाल दिया। पहले तो बिल्लीने बड़े चावसे उछलकर उसको मुँहमें पकड़ा किन्तु पीछे घिन करके तुरन्त छोड़ दिया। बिल्लीके चेहरेपर धीरे-धीरे मौतके चिह्न दिखाई देने लगे। दूसरे दिन वह मरण-प्राय हो गई। तब मेरे मनमें आया कि थोड़ा-सा तिरियाक-फारूक (विष उतारनेवाली एक औषध) इसको देना चाहिए। जब उसका मुँह खोला गया तो देखा कि उसकी जीभ और तालू काला पड़ गया था। तीन दिन बुरा हाल रहा। चौथे दिन उसे कुछ सुध आई। फिर लौंडीको ताऊनकी गाँठ निकली। उसकी जलन और पीड़ासे वह सुध भूल गई। रंग बदलकर पीला और काला हो गया। प्रचण्ड ज्वर चढ़ा। दूसरे दिन वह मर गई। इसी प्रकार सात-आठ मनुष्य उस घरमें मरे और रोगग्रस्त हुए। तब मैं उस स्थानसे निकलकर बागमें चली गई। वहाँ फिर किसीके गाँठ नहीं निकली पर जो पहले बीमार थे वे नहीं बचे। आठ-नौ दिनमें सत्रह मनुष्य मर गये। उसने यह भी कहा कि जिनके गाँठ निकली हुई थी वे यदि किसीसे पानी पीने या नहानेको माँगते थे तो उसको भी यह रोग लग जाता था। अन्तको ऐसा हुआ कि मारे डरके कोई उनके पास नहीं जाता था।"

१—बम्बईके भूतपूर्व कमिश्नर सर जेम्स कैम्बल ने अहमदाबाद गेजेटियर में कुछ दिन पहले इस विषयसम्बन्धी अनेक उल्लेख किये हैं। उन्होंने लिखा है कि ईस्वी सन् १६१८ अर्थात् वि० सं० १६७५ के लगभग अहमदाबादमें प्लेग फैल रहा था, जो कि आगरा-दिल्लीकी ओरसे आया था, और जिसका प्रारंभ ई० स० १६११ में पंजाबमें निश्चित होता है। जिस समय प्लेग आगरा और दिल्लीमें कहर मचा रहा था वहाँके तत्कालीन बादशाह

जहाँगीर उससे डरकर अहमदाबादमें कुछ दिनोंके लिए आ रहे थे। कहते हैं कि उनके आनेके पाँच ही दिन पीछे इस छुआछूतके रोगने अहमदाबादमें अपना डेरा आ जमाया था। सारांश यह कि अहमदाबादमें आगरा-दिल्लीसे और आगरा-दिल्लीमें पंजाबसे प्लेगका बीज आया था। उस समय प्लेगका वेग सात आठ वर्षके लगभग रहा था। वर्तमान प्लेगकी नाईं उस समय भी उसका चूहोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता था अर्थात् उस समय जहाँ जहाँ रोगका उद्भव होता था चूहोंकी संख्यामें वृद्धि होती थी।"

३—उस समय हिन्दुस्तानमें जो यूरोपियन रहते थे उन्हें भी प्लेगमें फँसना पड़ा था। यह काले और गोरोंके साथ समदर्शीकी नाईं एक-सा बर्ताव करता था। इस विषयमें मि॰ टेरी नामक ग्रंथकारने लिखा है "दो दिनके अरसेमें सात अँग्रेजोंकी मृत्यु हो गई। प्लेगमें फँसनेके बाद इन रोगियोंमेंसे कोई भी चौबीस घंटेसे अधिक जीता नहीं रहा बहुतोंने तो बारह घंटेमें ही रास्ता पकड़ लिया।" इतिहाससे पता लगता है कि सन् १६८४ में औरंगजेब बादशाहके लश्करमें भी प्लेगने गदर मचाया था।

४—बनारसीदासजीके नाटक समयसार ग्रंथमें भी प्लेगका उल्लेख मिलता है। उसमें ग्रंथकारके कथनमें बपलासी जीवोंके लिए कहा है—

> मरनकी सूली नाहिं उरत मरनमाहिं
> नाचि नाचि मर जाहिं मरी कैसे चूहे हैं। ४१"

उस समय प्लेगको मरी कहते थे। यद्यपि महामारी (हैजा) को भी मरी कहते हैं परन्तु चूहोंका मरना यह प्लेगका ही असाधारण लक्षण है हैजेका नहीं।

९—मृगावती और मधुमालती

जब बनारसीदासजी आगरेमें अपनी सब पूँजी खो चुके थे और बिल्कुल खाली हाथ थे तब समय काटनेके लिए वे मधुमालती और मृगावती नामक दो

पोथियोंको पढ़ा करते थे और उन्हें सुननेके लिए वहाँ दस बीस आदमी इकट्ठे हो जाते थे। ये दोनों ही प्रेम-काव्य हैं और दोनोंके ही कर्ता सूफी हैं।

मृगावती—इसके कर्ता कुतबन चिश्ती वंशके शेख बुरहानके शिष्य थे और जौनपुरके बादशाह हुसैन शाह (शेरशाहके पिता) के आश्रित थे। पद्मावतके कर्ता मलिक मुहम्मद जायसी इनके गुरुभाई थे। मृगावती चौपाई दोहामय है और हिजरी सन् ९०९ (वि० सं० १५५८) में लिखी गई थी। इसमें चन्द्रनगरके राजा गणपतिदेवके राजकुमार और कंचनपुरके राजा रूपमुरारिकी कन्या मृगावतीकी प्रेम-कथाका वर्णन है। इस कहानीके द्वारा कविने प्रेम-मार्गके त्याग और कष्टका निरूपण करके साधकके भगवत्प्रेमका स्वरूप दिखलाया है। बीच बीचमें सूफियोंकी शैलीपर बड़े सुन्दर रहस्यमय आध्यात्मिक आभास हैं[1]। इसकी एक सम्पूर्ण प्रति अभी हाल ही फतेहपुर जिलेके एकडला गाँवसे डा० रामकुमार वर्माको मिली है।

हाल ही मालूम हुआ है कि काशी नागरीप्रचारिणी सभाके कलाभवनमें मंझनकी मधुमालतीकी दो प्रतियाँ संग्रह की गई हैं जिनमें एक उर्दू लिपिमें है और दूसरी नागरीमें। सभा इसको शीघ्र ही प्रकाशित कर रही है।

मधुमालती—इसके कर्ता मंझन नामके कवि हैं परन्तु उनके सम्बन्धमें अभी तक और कुछ भी मालूम नहीं हुआ। स्व० पं० रामचन्द्र शुक्लने अपने हिन्दी साहित्यका इतिहास में लिखा है कि "मंझनकी रची मधुमालतीकी एक खण्डित प्रति मिलती है जिससे इनकी कोमल कल्पना और स्निग्ध सहृदयताका पता लगता है। मृगावतीके समान मधुमालतीमें भी पाँच चौपाइयों (अर्द्धालियों) के उपरान्त एक दोहेका क्रम रक्खा गया है। पर मृगावतीकी अपेक्षा इसकी कल्पना विशद है और वर्णन भी अधिक विस्तृत तथा हृदयग्राही। आध्यात्मिक प्रेमभावकी व्यंजनाके लिए प्रकृतिके भी अधिक सुन्दर दृश्योंका समावेश मंझनने किया है।"[2] जायसीने अपने पद्मावतमें अपने पूर्ववर्ती चार प्रेमकाव्योंका उल्लेख किया है जिनमें मधुमालती भी है—

१-२—देखो पं० रामचन्द्र शुक्लका हि० सा० का इतिहास पृ० ९९-१०० (१९९२ का संस्करण)

मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती। पद्मावतका रचनाकाल वि. सं. १५९९ है। उसमान कविकी चित्रावलीमें भी जो वि. सं. १६७० की रचना है—मधुमालतीका उल्लेख है[1]।

चतुर्भुजदास निगमकी बनाई हुई 'मधुमालती' नामकी एक पुस्तक और भी है जिसकी एक अशुद्ध प्रति अभी कुछ समय पहले मुझे जयपुरके मनस्थनाथजीके मन्दिरमें देखनेको मिली[2]। इसकी रचना ७९६ दोहा-चौपाइयोंमें हुई है। यह भी एक प्रेमकथा है परंतु इसमें राजनीतिकी चरचा अधिक है। इसकी प्रशंसामें कविने लिखा है।—

> वनसपतीमें अंब फल, रस मैं ... ऊख।
> कथामाहिं मधुमालती जे रितमाहिं वसंत ॥ ८१ ॥
> कथामाहिं पंनग फना, ... चनसार।
> कथामाहिं मधुमालती, आभूषनमैं हार ॥ ८२ ॥

निगमकी इस मधुमालतीकी प्रतिका लिपिकाल सं. १७९८ है।

१०—छत्तीस पौन और कुरी

अर्धकथानक (पद्य ११) में जौनपुरमें बसनेवाली जिन ११ जातियोंके नाम दिये हैं और जिन्हें छत्तीस पवनियाँ कहा है, वे प्रायः छोटी समझी जानेवाली पेशेवर जातियाँ हैं। पद्मावतमें जायसीने भी छत्तीस कुरी बतलाई हैं पर वे केवल छोटी ही जातियाँ नहीं हैं, उनमें ब्राह्मण, अगरवाल, वैश्य, चंदेले, चौहान आदि ऊँची जातियाँ हैं और कोरी, सुनार, कुम्हार, अगरहन, पटुवा, बढ़ई आदि छोटी जातियाँ भी—

> जे ब्रह्मान पदुमावति पढ़ी। छत्तीस कुरी जे जोहने चढ़ी ॥ १
> जे कोरी रंग पहिरि पटोरा। बाँभनि ठाउँ सहस जिय मोरा ॥ २
> अगरवारिनि सब गवन करेई। बैसिनि पान इक्मति देई ॥ ३
> चंदेलिनि ठमकहिं पगु धारा। चली चौहानी होइ झनकारा ॥ ४

१—डा. वासुदेवशरणने मधुमालतीका समय वि. सं. १५५५ बतलाया है।
२—इसका समय लेखमें नहीं है।

अब सुनि नगरराज आगरा, सकल सोभ अनुपम सागरा ।
साहजहाँ भूपति है जहाँ राज करै नयमारग तहाँ ॥ ७८ ॥
ताको जाफरखाँ उमराउ पंचहजारी प्रगट कराउ ।
ताको अगरवाल दीवान गरगगोत सब बिधि परधान ॥ ७९ ॥
संघही अभैराज जानिए सुखी अधिक सब करि मानिए ।
बनितागण नाना परकार तिनिमैं लघु मोहनदे सार ॥ ८० ॥
ताको पूत पूत-सिरमौर जगजीवन जीवनकी ठौर ।
सुंदर सुभगरूप अभिराम परम पुनीत धरम-धन-धाम ॥ ८१ ॥
काल-लबधि कारन रस पाइ, जग्यो जथारथ अनुभौ आइ ।
अहनिसि ग्यानमंडली चैन परत और सब दीसै फैन ॥ ८२ ॥
ग्यानमंडली कहिए कौन जामैं ग्यानी जन परवीन ।
हेमराज पंडित परवीन, रामचंद ग्याता गुनलीन ॥ ८३ ॥
संगही मथुरादास सुजान प्रगट भवालदास सुग्यान (?) ।
स्वपरप्रकास भगौतीदास इत्यादिक मिलि करैं बिलास ॥ ८४ ॥
स्यादवाद जिन आगम सुनै परम पदारथ अहनिसि गुनै ।
भेदग्यान करनत इक रोज, उपज्यो जिनमहिमागुन चोज ॥ ८५ ॥
तब ही पंडित हीरानंद सिष्य मोहरस-भागन सुछंद ।
देखि कह्यो अपनों उमाहीं क्या है जिन विभूति पा क्यौं ॥ ८६ ॥
तिनमैं कही साधु पै साधु, चहिए यहु सम्म आराधु ।
अरु न निकट मम आतमा ते लावत नित परमातमा ॥ ८७ ॥
जिनविभूतिमें जो अनुभौन, करैं सुजस जदपि है गौन ।
निहचै मारगकी इह चैन, मन निरमल है नापै सैन ॥ ८८ ॥
पर इनकी मति हममैं कहाँ विधि बरनैं बरनौंगी तहाँ ।
अब जो तुम बहातमैं कहै तो अपरस काऊ महि महै ॥ ८९ ॥
इनकी सुनि काजीभित भये आदिपुरान् मंगावा लये ।
इत देखि तुम कही भिनक, हम जाने होवै निकलंक ॥
इतना कारन लहि करि हीर मनमैं उदिम धरै गहीर ।
समोसरन इन रचनामेद, कथापुरान समस्त निवेद ॥ ९
एक अधिक सत्तरको समै, सावन सुदि सातमि बुध रमै ।
ता दिन सब संपूरन भया समवसरन कहन परिनया ॥ १

इसका पद 'राजुल पीनती' है जिसके अन्तमें कहा है—

राजमती सुरपुर गई प्रभु नेमि कियो शिववास।
मोतीहट जोगिनिपुरै प्रभु, भगत भगौतीदास॥ ७

इससे मालूम होता है कि यह योगिनीपुर या दिल्लीकी मोतीहाट्ममें रहते थे और कोई दूसरे ही भगवतीदास थे, अम्बालाके नहीं।

१२—रूपचन्दकृत पदसंग्रहमें आनन्दघन

अभी अभी मुझे अपने संग्रहमें स्व॰ गुरुजी (पन्नालालजी बाकलीवाल) के हाथका लिखा हुआ 'रूपचन्दकृत पदसंग्रह' मिला जो उन्होंने जयपुरसे (सन् १९११) भेजा था। इसमें राग आसावरी, बसन्त, टोडी, बिलावल, सिंधमल्हार, विहागड़ो गूजरी, केदारो, कल्याण, सारंग, नट, गौड़ी, जौनपुरी, भैरव, कानरो, मालव और सारंग इन रागोंके २२ गीत हैं और इनके बाद जकड़ीसंग्रह है। यह जकड़ीसंग्रह उसी समय 'परमार्थ-जकड़ीसंग्रह' नामसे छपा दिया गया था।

इनमेंके १७ गीतोंके अन्तिम चरणोंमें रूपचन्दका नाम है, पर शेष पाँचमें क्रमसे महमद, रामानन्द, राय, परमकीरति और आनन्दघनके नाम दिये हैं। इससे मालूम होता है कि ये पाँचों कवि उनके पूर्ववर्ती या समकालीन हैं और सभी अध्यात्मी हैं। इनका संग्रह स्वयं रूपचन्दजीने अपने पदोंके साथ कर लिया है।

इनमेंसे राय या रायचन्द्र और आनन्दघनके पद माइयजीके मन हुए गुटकोंमें भी रूपचन्दजीके पदोंके साथ लिखे हुए मिले हैं। रामानन्द वैष्णव सन्त मालूम होते हैं। परमकीर्ति कोई भट्टारक और काजी मुहम्मद कोई सूफी हैं।

आनन्दघनका पद यह है—

रे घरियारी बाउरे मत घरी बजावे।
नर सिर बाँधे पागरी तू क्या घरी बजावे॥ रे घ
केवल काल-कला कलै पै अकल न पावे।
अकल कला घटमें धरी मोहि सो घरी भावे॥ रे घ

आतम अनुभव रसभरी, तामें और न मावै ।
आनन्दघन सो जानिए, परमानंद गावै ॥ रे प

सं १६९२ में बनारसीदासने नाटक समयसारमें अपने पाँच साथियोंमेंसे रूपचन्दजीको एक बतलाया है अर्थात् उस समय वे जीवित थे परन्तु पं हीरानन्दने अपने समवसरणविधानमें आगरेके अध्यात्मियोंके जो नाम दिये हैं उनमें बनारसीदास, हेमराज जगजीवनके नाम तो हैं, परन्तु रूपचन्दका नाम नहीं है और यह विधान संवत् १७ १ में रचा गया है। इससे संभव है कि रूपचन्दजी उस समय नहीं रहे हों।

रूपचन्दजीने आनन्दघनका एक पद संग्रह किया है, इससे अनुमान किया जा सकता है कि वे उनके पूर्ववर्ती हैं और कैरपाल अपने पहले गुच्छेमें सं १६८४ के लगभग आनन्दघनके ६ पदोंका संग्रह कर सकते हैं।

यशोविजयजी और आनन्दघनका साक्षात्कार होनेकी बात इससे भी सन्देहास्पद हो जाती है।

राय या रायसमुद्र भी रूपचन्द्रके पूर्ववर्ती हैं। इनकी उपदेशबत्तीसी दूसरे गुच्छेमें शामिल है।

१३—भ० नरेन्द्रकीर्तिका समय

भूमिकाके पृष्ठ ४०–५१ में आमेरके भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिका जिक्र है जिनके समयमें तेरापंथकी उत्पत्ति हुई। बखतरामजीने संवत् १७०३ और चम्पावतीने संवत् १६७५ उत्पत्तिकाल बतलाया है। पर दोनोंमें ही अमरा भौंसाके पुत्र जोधराज गोदीकाको तमाम निकाल देनेकी बात लिखी है और जोधराज गोदीकाने अपने दो ग्रन्थ —सम्यक्त्वकौमुदी और प्रवचनसार—सं १७२४ और १७२६ में लिखे हैं साथ ही तेरापन्थका भी उल्लेख किया है इसलिए भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिका समय भी लगभग यही होना चाहिए।

अभी वीरवाणी वर्ष ० अंक १४–१५ में प्रकाशित हुए श्री कस्तूरचन्दजी कासलीवालके लेख (जयपुरके जैनमन्दिरोंके मूर्ति एवं यन्त्रलेख) पर मेरी दृष्टि पड़ी और उससे भ नरेन्द्रकीर्तिका समय निश्चित हो गया।

नं० ९ के सम्यक्चारित्र यंत्रपर लिखा है—" संवत् १७०९ फागुन वदी ७ मूलसं० भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिस्तदा आम्नायमध्ये सं० देवसाउदकरजायां गिरिनारे प्रतिष्ठापितं।

नं० १२ के हींकार यंत्रपर लिखा है—

संवत् १७१६ वर्षे चैत्रबदी ४ सोमे श्री मूलसंघे नन्द्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक १०८ श्रीनरेन्द्रकीर्तिस्तदाम्नाये अमरावत्यान्वये गगंगेने नगरामपुरसंघाधिपतिसिंगादिदेन अम्बावत्यां

इनके अनुसार सं० १७०९ और १७१६ में नरेन्द्रकीर्ति भट्टारकका अस्तित्व स्पष्ट होता है और 'अम्बावत्यां' से यह भी कि वे आमेरकी गद्दीके भट्टारक थे। आमेरका ही नाम अम्बावती है।

महाराजा जयसिंहके मुख्य मन्त्री मोहनदास भौंसाने जयपुरकी पुरानी राजधानी अम्बावती या आमेरमें संवत् १७१४ में एक विशाल जैनमन्दिर निर्माण कराया था और १७१६ में उसपर सुवर्णकलश चढ़वाया था। इसके दो शिलालेखोंके मिले हैं[1] उनमें उन्हें नरेन्द्रकीर्ति भट्टारककी आम्नायका लिखा है और यह भी कि भट्टारकश्रीनरेन्द्रकीर्त्युपदेशात् बनवाया।

पं० बखतरामजीने लिखा है कि अमरा भौंसाको राजाका एक मन्त्री लिख गया उसने एक नया मन्दिर भी बनवा दिया, और तेरापन्थको चढ़ाया सो शायद यही मन्त्री मोहनदास भौंसा होंगे।

---

१ ये शिलालेख अब जयपुर-म्यूजियममें हैं और मन्दिर आमेरमें टूटी फूटी हालतमें पड़ा है। शिलालेख पं० भंवरलालजी न्यायतीर्थने वीरवाणी, वर्ष १ अंक ३ में प्रकाशित कर दिये हैं।

महिलाण मुत्तिगमणं कवलाहारो य केवलधरस्स ।
गिहिअन्नलिंगिणो वि हु सिद्धी नत्थि त्ति उद्दहइ ॥ २१ ॥
आयारंगप्पमुहं सुयमाणं किमवि नो पमाणेइ ।
सेयंबराण सासणसत्थाण तयंतरं बहुसं ॥ २२ ॥

टीका—नग्नाचार्यस्य आचारशीलः श्वेताम्बरशीलाचार्येभ्यो भ्रान्तानां कुन्दकोट्ट-
भवनस्य तत्कालनभश्चरनिर्गमस्य चतुरशीति वस्तान् (चौरासी बोल) वर्णयित्-
विरचीतकुरु, तच्चिन्तोऽपि कच्चिन्तरीत्या हेमराजपण्डितेन निरस्त ।

जइ गीयत्थसमेहिं आगममुत्तीहिं बोहिओ अहिय ।
तह वि तहेव य गच्छइ आयारसिओ मए तिसिमो ॥ २३ ॥
पायण कालदोसा भवंति दाणा परम्मुहा मणुआ ।
देवगुरूणममत्ता पमाइणो तेसिमित्थ गई ॥ २४ ॥

टीका—अवसर्पिणीकालप्रभावात् जनस्य न महती उत्पत्तिः तस्मात्कारं
केचिज्जनोऽपि कर्णेऽपि मतिवैकल्यात् कार्यस्य परवशतानात् स्वत एव निर्बन्धे
देवेषु गुरुषु वैयापृत्याहारदानादिना स्वयमवात्, अमनस्वा न मनागपि रागभावं
अतएव प्रमादिनो यथेष्टाहारविहारादिपराः तेषामत्र मते रुचिः भवा
स्यात् कारणं तु मतुष्यमिति गाथार्थः ।

इय जाणिऊण सुमणा आयारसियस्स मयविसयममिणं ।
जिणवरभासाएमिमा हवंतु सुहसिद्धिसंपमिमा ॥ २५ ॥

नफर = नफर (अरबी), नौकर, दास। ४१८

नाम-माला = महाकवि धनंजयका संस्कृत कोष। १६९

नाल = तोप। १५४

नाल = साथमें संगमें, साथ साथ पूर्वी पंजाबमें विशेष प्रचलित। १ १ १११, ४११, ७१

नाह = नाथ स्वामी। १४७

निचीत = निश्चिन्त, बेफिक्र। ५२१

निदान = कारणका पता लगाना जाँच। ५११

निरत = निर्णय जाँच। ५२१

नूरदी = नूरदीन अर्थात् नूर-अद्-दीन-धर्मकी शोभा। २५१

नेवज = नैवेद्य, देवताको चढ़ानेका द्रव्य। १

नोकारसहि या नोकारसी = प्रात: दो घड़ी दिन चढ़े तक भोजन न करनेकी प्रतिज्ञा लेना। ४१५

नोकरवाली = नमोकारमंत्र-जापकी माला। इसे ही दोहा १० में मंत्रकी माला कहा है। नोकरवाली

एक जाप = एक बार नमोकार मंत्रकी माला जपना। ४१५

नौतन गेह करनको नेम = नया घर बनाने या बसानेका नियम के लिया कि आगे न बनाऊँगा। ५१

न्यारी = जुदा अलग निराला। ७

प

पंचनवकार = पंचनमस्कार, जैनोंका प्रसिद्ध मंत्र जिसमें अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व-साधुओंको नमस्कार किया जाता है णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। १

पखाल = एक बाजा, मृदंग। ६

पछताप। ५५१

पटुनिका = पट या वस्त्र बुननेवाला। कोरी, जुलाहा। ९१

१—नोकरवाली शब्द एक प्राचीन दोहेमें भी आया है—“नवकारवाली मणिमाला लिहि अमलक विचारि। दानधारक जगडूतणी किती कलिहि मझारि।” (-पुरातनप्रबंधसंग्रह।) नवकारवाली मणिमाला = नमोकार मंत्र जपनेकी मणियोंकी माला। अमलक = अर्गला, ब्योंडा। विचारि = खोलकर (विचारना = खोलना)। अर्थात्—कलियुगमें जगडूशाहकी दानधर्मकी कीर्ति प्रसिद्ध है। वे अपनी मणियोंकी माला हाथमें लेकर उसकी अर्गला खोलते हैं अर्थात् हाथकी मणिमालाके हाथमें दानधर्मका आरम्भ होता है।

पोठ = पोटली, गठरी । ६९

पोठ = कच्चा, पुत्र । ३९४

पोठ = दफा बार । ७९१

पोतदार = पोत अर्थात् मालगुजारी, लगान । पोतदार (फारसी) लगानका रुपया जमा करनेवाला खजांची । ५

पोसह = प्रोषध । अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वतिथियोंमें करने योग्य जैन धर्मका एक व्रत । आहार आदिके त्यागपूर्वक किया हुआ अनुष्ठान । ५१

पौसाल = प्रोषधशाला उपाश्रय, उपासरा जैनसाधु जिसमें ठहरते हैं । १७५, १९१ २ २

पौन पौनिया पउनिया = ब्याह शादीके अवसरोंपर नेगके रूपमें कुछ पानेवाली विविध पेशोंवाली छुद्र जातियाँ । २९

प्रदेस = परदेश, अन्यत्र, दूसरी जगह । २१५

फ

फरंद = पुत्र लड़का । १ ४

फरि = फरफर गाता देखनेकी चाह पर । १९१

फलफली फारसी, जुगनी जैसाधी । ५१

[illegible] = [illegible] हुई थी । ११४

फैन = पानीके फेनके समान निस्सार बातें । १७२

फोक = व्यर्थ निस्सार । ८

ब

बन्द = कविताका पद (फारसी) १८९

बख्शाद = फारसी बख्शसे बना है । माफ कराके । १९५

बख्शीस = फारसी बख्शिश, भेंट, उपहार, इनाम । १

बनजे = वणिज व्यापार करता है । १९

बनज = वाणिज्य, व्यापार । ७४

बागे = अँगरखा जैसा पुराना लम्बा पहिनावा । ११४

बढ़ई = बढ़ई सुतार लकड़ीका काम करनेवाला । २१

बारी = पत्तल-दोने बनानेवाला । ११

बाल = बाला पत्नी । ४४

बिग = व्याघ्र । १ २

बिलखी सीम = धनकी सीमा या हद, बड़ा भारी धनी । २१४

बिसरी बिखीर्णे कर दी बाँट दी । २ ४

बिंधरा = मोती आदि बींधनेवाला, छेद करनेवाला । २१

बिसास = विश्वास, भरोसा । ५१

बिसारे = बिसारे । २५४

बीतभय = बीतक, बन-बन्ध बन । ४१४

बीतिक = बीतक, घटना बीती हुई बात । ११

बुगचा = बुकचा (फारसी), कपड़ोंकी गठरी । ११४

रखवार = रखवाला, रक्षक, ठाकुर, राजा। १
रद्दी = रद्दी (अरबी) निकम्मी, बेकार। २६७
रफीक = रफीक (अरबी) साथी, सहायक, मित्र। ३१
रमनीक = रमणीय सुन्दर। २६
राज = ईंट-पत्थर आदिसे घर बनानेवाला, मजदूर (सं राजपति)। २९
राती = रक्त लाल। ११
रास = रास्त, दुरुस्त, ठीक। ५१४
रासि = राशि, धन। ४७
रूंधी = बन्द कर दी मन्द कर दी। १५१
रेवपरेवी = छोटी-मोटी फुलकर चीजें। १२४
रैनि = रजनी रात। ७१
रोक = रोकड़ा नकद रोख (मराठी)। १४५

ल

लखेरा = लाखकी चूड़ियाँ वगैरह बनानेवाला। ९१
लगन = लग्नतिथि ११
लघु-कोक – छोटा काम-धाम कोस्काक पंक्तिआत्व १६९
ल्याकुत्य = ऊंचे कुत्ते, चौरिया फैपना। ल्य – पुण्य। कुत्य = छोटा टुकड़ा ११४
लहुरा = लघु छोटा। ५२७
लार = पीछे पीछे साथ। ५१५

सहानि = सहदान, साय, मादी, आदि चीजें जो बिरादरीमें बाँटी जाती हैं। ४८८, ५१
सग्रा = हिसाब, गणित। ९८

व

वसुधा-पुरहूत = पृथ्वीका इन्द्र, बादशाह अकबर। १११
वार = द्वार, फाटक। ४११

स

संतोखी = छोटा ढोल। २१९
संगतराश = संगतराश (फारसी) पत्थर काटकर उसकी चीजें बनानेवाला। २९
संघ चलावो = तीर्थयात्राके लिए बहुतसे साधर्मियोंको लेकर चलना। ५८
सजुरा = एक समय, एक साथ। ४४९
सकार = सकार सवेरे, जल्दी सकारे (बुन्देली) २११
सलोन = सोना या चाँदीके सहित, सलीन। १४९
स्नानविधि = स्नानविधि स्नान या अभिषेककी क्रिया। १७९
सपतखने = सात या सात खण्डके मकान। १
सरदहन = मसान, मिस्यास। ११७
सरिस्ता = पर्दे। ५२४
सरियति = शरीअत इस्लामी कानून को कहते हैं। शायद यहाँ कानून